अ. वोल्कोव

धरती और आकाश

धरती और आकाश

अ. वोल्कोव

अनुराग ट्रस्ट

ISBN 978-81-89719-01-2

मूल्य : 120 रुपये

पहला हिन्दी संस्करण : जनवरी, 2010

प्रकाशक

अनुराग ट्रस्ट

डी-68, निरालानगर

लखनऊ-226020

लेज़र टाइप सेटिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फ़ाउण्डेशन

मुद्रक : क्रिएटिव प्रिण्टर्स, 628/एस-28, शक्तिनगर, लखनऊ

भूमिका

जब आकाश में चाँद हँस रहा हो, चाँदनी खिली हो, किसी ऐसी रात में मैदान में तो जाओ, आकाश पर एक नज़र तो डालो।

देखो तो चाँदनी कैसी प्यारी लग रही है। चाँद की रेशमी रुपहली किरणें पृथ्वी का आँगन धो रही हैं। ये किरणें शीतल और प्यारी तो जरूर हैं पर उनकी शक्ति सूर्य की किरणों से कहीं कम है। पास की सभी वस्तुएँ दिखायी पड़ रही हैं, लेकिन दूर की वस्तुएँ जैसे कुहरे के धुँधलके में अदृश्य होती जा रही हैं।

धरती की नहीं चाँद की चाँदनी में भीगा आकाश भी चमक रहा है। चन्द्रमा के समीप के तारे धुँधले पड़ते जा रहे हैं, और दूर के तारे अँधेरी रात की अपेक्षा अधिक फीके नज़र आ रहे हैं।

स्वच्छ मौसम में रात्रि का आकाश प्रकृति के सुन्दर दृश्यों में से एक है। शीतल चाँद और आकाश में हीरे-मोतियों की तरह जगमग करते हज़ारों-लाखों सितारों को घण्टों तक अपलक एकटक देखा जा सकता है, आँखों की प्यास बुझायी जा सकती है।

लो, अब चन्द्रमा धीरे-धीरे नीचे उतरता आ रहा है। धीरे-धीरे वह क्षितिज के परे छिपता ही जा रहा है। आकाश अब अन्धकारमय होने लगा है। वहाँ पहले से कहीं अधिक तारे दिखायी देने लगे हैं। उनकी चमक-दमक भी अब पहले से अधिक बढ़ गयी है।

गर्मी की कोई उमस भरी रात है और नदी का किनारा है। मछली फँसाने वाली बंसी लेकर तुम किनारे पर बैठे हो। तुम्हारी आँखें जमी हैं आकाश पर! या फिर तुम मैदान में किसी अकेले टीले पर लेटे-लेटे आकाश की ओर ताक रहे हो! बहुत मज़ा आता है इस तरह आकाश ताकने में। गर्मी की छोटी रात जल्दी-जल्दी बीत रही है। पूरब में ऊषा की लाली दिखायी देने लगी है। एक-एक करके तारों की पलकें मुँदती जा रही हैं। सबसे अधिक उज्ज्वल, सबसे अधिक तेजवान ही बाक़ी रह गये हैं पर धीरे-धीरे उनकी भी आँखें लगती जा रही हैं।

बहुत ही दूर, क्षितिज पर, सूर्य का एक कोना तेजोमय हो उठा है। नयी सुबह आ गयी है।

प्राचीन काल में भी मनुष्य जब आकाश की ओर देखता था, तो उसके मन में बहुत-से प्रश्न उठते थे।

कुछ प्रकार के प्रश्न –

यह आकाश-मण्डल क्या है? क्या यह पारदर्शक बिल्लौरी शीशे की तरह किसी ठोस पदार्थ का बना हुआ है? इसका कोई ओर-छोर भी है? और क्या यह पृथ्वी पर टिका हुआ है?

वे अनगिनत, जगमगाते हुए तारे क्या हैं? क्या वे जैसे दिखायी देते हैं उतने ही छोटे हैं? क्या वे आकाश-मण्डल में अँगूठी के नग की तरह एक जगह जड़ दिये गये हैं या वे अन्तरिक्ष में स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करते हैं?

तारों के बीच चन्द्रमा इधर से उधर पहलक़दमी क्यों करता रहता है? आकाश-मंच पर वह हर दिन रूप बदलकर क्यों आता है – कभी वह गोल-मटोल हो जाता है, तो कभी खरबूजे की फाँक जैसा पतला-सा दिखायी देता है और फिर कभी आकाश-मण्डल से बिल्कुल ही ग़ायब हो जाता है। भला यह सब नाटक क्या है?

अब ज़रा सूरज को ले लो। गर्मियों में वह ठीक सिर के ऊपर और काफ़ी ऊँचा हो जाता है। जी भरकर धरती पर आग बरसाता है, उसे खूब तपाता है। जाड़े के ठण्डे दिनों में वह क्षितिज के ऊपर थोड़े ही समय के लिए दिखायी पड़ता है। बहुत जल्द ही अपने घर जाकर बिस्तर में दुबक जाता है। मानो बर्फ़ से ढँके मैदान और जमी हुई नदियाँ देखकर उसे भी कँपकँपी चढ़ जाती हो, वह घबराकर आँख मूँद लेना चाहता हो।

आकाश के प्रकाशग्रह सम्बन्धी विज्ञान का जन्म प्राचीन काल में ही हुआ। इस विज्ञान को खगोलविज्ञान की संज्ञा दी गयी।

हमारे पूर्वजों को आकाश और उसके नियमों को जानने की आवश्यकता क्यों पड़ी? उन्होंने तारों और अन्य प्रकाशग्रहों को संचालित करने वाले नियमों का ज्ञान आवश्यक क्यों समझा? क्या इन नियमों की जानकारी का कोई लाभ है?

इनकी जानकारी केवल लाभदायक ही नहीं, आवश्यक भी है। अनादिकाल से मनुष्य पशुपालन और खेतीबारी करता आ रहा है। खेतिहर तथा पशुपालक के लिए यह जानना आवश्यक है कि कब वसन्त ऋतु का आगमन होता है, वसन्त कब ग्रीष्म ऋतु में परिवर्तित होता है और फिर कब वर्षा तथा शरद ऋतु आती है। इसके लिए मनुष्य सूर्य पर अपनी दृष्टि रखता है : जैसे ही सूर्य आसमान में ऊपर चढ़ना प्रारम्भ करता है, जैसे ही धूप तेज़ होने लगती है वैसे ही जाड़े के अन्त और मधुमय वसन्त के आगमन का संकेत मिल जाता है।

मिस्र, चीन व भारत जैसे प्राचीन देशों के निवासियों के लिए सूर्य की गति का बहुत ध्यान से अध्ययन करना तो विशेषकर आवश्यक था। इन देशों में विशाल नदियाँ बहती हैं। इन नदियों में जब बाढ़ आती है तो वे ज़मीन को उपजाऊ मिट्टी से ढँक देती हैं।

नदी की घाटियों में रहने वालों के लिए इस समय की ठीक-ठीक जानकारी बहुत ज़रूरी थी। न केवल बोआई की तैयारी करने के लिए ही बल्कि तूफ़ानी नदी की लहरों से जान-माल की समय से रक्षा करने के लिए भी।

विज्ञान उन दिनों आम जनता की पहुँच के बाहर था। उसका अध्ययन केवल पुजारी – अर्थात् धर्म-सेवी – ही करते थे।

पहले ये पुजारी ही खगोलविज्ञानी होते थे। प्रकाशग्रहों की गति का अध्ययन करके वे केवल बाढ़ के ही आने की, बल्कि सूर्य व चन्द्र-ग्रहण की भविष्यवाणी भी करते थे। खगोलविज्ञान के ज्ञान के कारण ही इन पुजारियों को जनता पर बहुत बड़ा अधिकार प्राप्त था। इन पुजारियों का प्रभाव इतना अधिक था कि उस समय के शासक तक भी उनकी बात टालने की हिम्मत न करते थे।

आकाश-मण्डल का अध्ययन केवल खेतिहरों और पशुपालकों के लिए ही आवश्यक नहीं था। जल-थल के यात्रियों के लिए भी यह बहुत महत्त्वपूर्ण था। दिन को सूर्य और रात को तारे उन्हें राह दिखाते, इन्हीं के सहारे वे अपनी मंज़िल की ओर बढ़ते।

खगोलविज्ञान ने सदियों पुराने देशों के पहले मानचित्र बनाने में लोगों को मदद दी। आजकल भी खगोलविज्ञान के ज्ञान के बिना मानचित्र बनाना सम्भव नहीं है।

इससे स्पष्ट है कि 'आकाश-विज्ञान' का लोगों के जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

पहला भाग

पृथ्वी का आकार कैसा है?

तुम स्कूल में पढ़ते हो न? तब तो तुम यह ज़रूर ही जानते होगे कि पृथ्वी का आकार कैसा है। स्कूल में पढ़ने वाला बच्चा भली भाँति यह जानता है कि पृथ्वी गोले जैसी है। यह गोला विश्व के अन्तरिक्ष में घूमता रहता है।

पहले लोग यह समझते थे कि पृथ्वी चौरस है या कुछ इसे एक पुरानी ढाल की भाँति उभड़ा हुआ चक्र मानते थे और यह समझते थे कि यह चक्र किसी टेक के सहारे खड़ा है। उस टेक के विषय में अलग-अलग लोगों के अलग-अलग विचार थे।

प्राचीन हिन्दू सोचते थे कि पृथ्वी का गोलार्द्ध चार हाथियों पर टिका हुआ है और ये हाथी एक

विशालकाय कछुए पर खड़े हुए हैं। परन्तु उन्होंने इस प्रश्न पर विचार नहीं किया कि कछुआ किस पर खड़ा है।

पुराने ज़माने के रूस में दादा-पोते में अक्सर कुछ इस ढंग की बातचीत होती थी –

"दादा, बताओ न पृथ्वी किस पर टिकी है?" जिज्ञासु बालक बूढ़े दादा से पूछता।

"ह्वेल मछलियों पर, बेटे," बुड्ढा जवाब देता, "बहुत ही बड़ी ह्वेलों पर! ह्वेलें जब हिलती हैं, तब भूकम्प आता है. . ."

"और ह्वेलें किस पर टिकी हैं, दादा?"

"पानी पर, मुन्ने!"

"और पानी किस पर, दादा?"

"पृथ्वी पर, नन्हे!"

"और, दादा, पृथ्वी किस पर?"

"मुन्ने, तू तो बिल्कुल बुद्धू है! बेकार सिर खा रहा है। मैं तुझसे कह तो चुका हूँ कि पृथ्वी ह्वेलों पर टिकी है!..."

इस प्रकार की बातचीत बिना किसी अन्त के जारी रह सकती थी।

लोग काफ़ी समय तक पृथ्वी को मेज़ की सतह की तरह चौरस समझते रहे, तो इसमें तो कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं है, किन्तु आश्चर्य की बात यदि है तो यह कि आख़िर मनुष्य की बुद्धि पृथ्वी का वास्तविक आकार जानने में सफल हो ही गयीं यह सच है कि यह सफलता प्राप्त करने के लिए मनुष्य को हज़ारों बरस लग गये। इस कार्य में दूर-दूर की यात्राओं ने लोगों की बहुत सहायता की।

इन्सान तो जैसे अपने पैर में चक्कर लेकर ही पैदा हुआ है। दुनिया के शुरू होते ही वह इधर-उधर घूमने-फिरने और यात्रा करने लग गया था। कोई इतिहासकार यह ठीक-ठीक नहीं बता सकता कि किस समय लोगों ने सफ़र करना प्रारम्भ किया। जंगलों में भड़क उठने वाली आग की लपलपाती लपटें, नदियों की भयंकर बाढ़ें, भुखमरी, उत्तर से बहकर आने वाली बर्फ़ीली नदियाँ या मरुभूमि से आने वाले रेत के तूफ़ान और अन्धड़ लोगों को एक जगह से दूसरी जगह जाने के लिए बाध्य करते थे।

आदिम लोगों के बेटे बहुत धीरे-धीरे यात्राएँ करते थे – उनकी यात्राओं को जगह-तब्दील करने की संज्ञा देना

अधिक ठीक होगा। ख़ैर, जगह बदलने के इस क्रम में भी लोगों ने बहुत वर्षों में हज़ारों मील तय किये।

बाद में लोग व्यापार करने के लिए विदेशों में जाने लगे। वस्तुओं का विनिमय होने लगा। शिकारी

प्राचीन बाबुलवासियों के अनुसार पृथ्वी का रूप।

जानवरों की खालें देकर बदले में तलवारें, छूरियाँ और धातुओं के बने बरतन हासिल करते। किसान ग़ल्ला देते और बदले में सुन्दर चूड़ियाँ, कपड़े और गलहार लेते। यह बात साफ़ है कि दूसरे देशों से व्यापार करने के लिए पूरे का पूरा क़बीला नहीं चल देता था – यह काम सिर्फ़ व्यापारी ही करते थे।

पुराने समय के व्यापारी बड़े ही व्यवहार-कुशल और साहसी होते थे। वे प्रकृति से लोहा लेते, अपनी जान की रक्षा के लिए जंगली जानवरों से लड़ते और उन लुटेरों तथा दुश्मनों का मुक़ाबला भी करते जो उनका धन-माल लूटने आते।

ये व्यापारी दूर-दूर तक या तो छोटे-छोटे जहाज़ों में जल-यात्रा करते या फिर थल-यात्रा।

यह लगभग सात सौ बरस पहले की बात है। इतालवी व्यापारी मार्को पोलो इटली के वेनिस नगर से चीन के लिए रवाना हुआ। मार्को पोलो ऊँचे पहाड़ों तथा विशाल मरुभूमियों को पार करता हुआ थल-मार्ग से चीन पहुँचा। फिर वह दक्षिणी एशिया के किनारे-किनारे समुद्र-मार्ग द्वारा स्वदेश लौटा।

मार्को पोलो अपने जन्मस्थान से जब इस यात्रा के लिए रवाना हुआ तो वह जवान था। जब स्वदेश लौटा तो अधेड़ हो चुका था। इस पूरी यात्रा में उसे चौबीस वर्ष लगे। इनमें से सत्तरह वर्ष तो उसने चीन में बिताए और सात वर्ष इधर से उधर रास्ता तय करने में लगा दिए।

इटली लौटने के बाद मार्को पोलो फिर बहुत वर्षों तक ज़िन्दा रहा और उसने एक बड़ी किताब लिखी। इस किताब में उसने उस काल के चीन-निवासियों के जीवन का वर्णन किया है।

होमर के अनुसार पृथ्वी का मानचित्र।

मार्को पोलो की यात्रा के दो सौ वर्ष बाद त्वेर नगर का रूसी व्यापारी अफ़नासी निकीतिन पूरब के देशों में गया। अफ़नासी निकीतिन उत्तरी रूस से चला और ईरान होते हुए भारत पहुँचा। उसने अपनी यात्रा का वर्णन 'तीन समुद्र पार की यात्रा' नामक एक रोचक किताब में किया है। निकीतिन की इस यात्रा में छः वर्ष लग गये।

इस प्रकार पुराने ज़माने में लोग धीरे-धीरे एक जगह से दूसरी जगह जाते थे। आजकल जो यात्रा एक या दो सप्ताह में पूरी की जा सकती है, पुराने ज़माने में उसी में कई वर्ष लग जाते थे। परन्तु इसमें आश्चर्य

की बात भी क्या है? तब तेज़ हवाई जहाज़ तो दूर, रेलगाड़ी या भाप से चलने वाले जहाज़ तक भी नहीं थे। थल-मार्गों पर घोड़ों तथा ऊँटों के क़ाफ़िले और समुद्र में छोटे-छोटे पालों वाले जहाज़ चलते थे।

इस सब बातों के बावजूद, उन दिनों भी काफ़ी लोग यात्राएँ करते थे। यह सच है कि ये लोग कुछ अर्से बाद अपनी यात्राओं के बारे में भूल जाते थे। उनकी यात्राएँ भूली-बिसरी दास्तान बनकर रह जाती थीं। वे लोग मार्को पोलो या अफ़नासी निकीतिन की तरह उन्हें लिख जो न पाते थे।

दूर-दूर की इन यात्राओं से पृथ्वी की काफ़ी अच्छी जानकारी हासिल करने में बहुत मदद मिलती थी। पृथ्वी की सतह के मानचित्र भी बने। यह सही है कि उनमें बहुत-सी त्रुटियाँ भी थीं।

दो हज़ार वर्ष से भी कहीं पहले के प्राचीन भूगोलविज्ञानी द्वारा खींचे गये मानचित्र पर एक नज़र तो डालो।

इस मानचित्र में पृथ्वी एक समतल तश्तरी की भाँति दिखायी गयी है। यहाँ खुश्की दिखायी गयी है। खुश्की के किनारों को एक विश्व महासागर धोता है। ज़मीन के बीच में एक बड़ा समुद्र दिखाया गया है। इस समुद्र के बारे में बहुत पहले ही लोगों ने काफ़ी अच्छी जानकारी प्राप्त कर ली थी। यहाँ व्यापारी, सैनिक-योद्धा और समुद्री डाकुओं के जहाज़ चलते थे। इस समुद्र को लोगों ने भूमध्य-सागर का नाम दिया, क्योंकि वे सोचते थे कि यह समुद्र पृथ्वी के मध्य में स्थित है। अब तो सभी जानते हैं कि यह ठीक नहीं है, फिर भी समुद्र का नाम तो अब भी ज्यों का त्यों बना है।

अब तो हर एक मानचित्र में तुम देखते हो कि उस पर डिग्रियों का – समानान्तर व देशान्तर रेखाओं का – जाल-सा बिछा हुआ है। इस जाल से किसी भी स्थान की स्थिति का सही-सही पता लगाया जा सकता है।

डिग्रियों के इस जाल का आविष्कार आज से अठारह सदियों से भी अधिक पहले हुआ था। प्राचीन यूनानी खगोलविज्ञानी टोलेमी ने उस समय की भूगोल सम्बन्धी सारी जानकारी के आधार पर पृथ्वी का एक मानचित्र बनाया था। पृथ्वी की बनावट के सम्बन्ध में यूनान और उसके पड़ोसी देशों की उस समय जो धारणा थी यह मानचित्र उसी का प्रतिबिम्ब था।

इस मानचित्र में लगभग पूरा यूरोप (उत्तरी भाग को छोड़कर), उत्तरी अफ्रीका और एशिया का अधिकांश शामिल था।

टोलेमी ने पृथ्वी को ठीक ही एक ऐसा गोला समझा, जो सब तरफ़ से अन्तरिक्ष द्वारा घिरा हुआ है।

फिर सदियाँ बीत गयीं। प्राचीन यूनानी खगोलविज्ञानियों के कार्य भुला दिये गये। उनकी कृतियाँ खो गयीं। लोगों ने फिर से पृथ्वी को चौरस समझना शुरू कर दिया। धार्मिक भूगोलविज्ञानियों ने अपने मानचित्रों में स्वर्गीय महात्माओं के निवासस्थान – अर्थात् स्वर्ग को – भी स्थान दिया। इन स्थानों को उन्होंने एशिया माइनर में – दज़ला और फ़रात नदियों के समीप दिखलाया।

लोगों ने दूर-दूर की समुद्र-यात्राएँ पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में करनी शुरू कीं।

शुरू-शुरू में खुले महासागर में जाने का इरादा रखने वाले जहाज़ियों से कहा जाता था कि वे पागलपन कर रहे हैं, कि उनका सिर फिर गया है। उन्हें विश्वास दिलाया जाता कि पृथ्वी चौरस है ओर

उसके किनारे पर स्थित विश्व महासागर बहुत बड़े झरने की भाँति एक विशाल गड्ढे में जा गिरता है। इस तरह पृथ्वी के किनारे पर पहुँचने वाला जहाज़ इस विशाल गड्ढे में गिरकर नष्ट हो जायेगा।

पर उस ज़माने में भी कुछ ऐसे वैज्ञानिक थे, जो प्राचीन खगोलविज्ञानी टोलेमी की भाँति पृथ्वी को चौरस न मानकर गोलाकार मानते थे।

दूर-दराज़ की यात्राएँ करने का इरादा रखने वाले लोगों से इनके विरोधी कहते – "बहुत अच्छा! हम मान लेते हैं कि ज़मीन गोल है। परन्तु जहाज़ जब पृथ्वी के ऊपरी भाग से निचले भाग में पहुँचेगा, तब इसका फिर से ऊपर वापस आना पहाड़ की चोटी पर पहुँचने की तरह असम्भव होगा।"

जो लोग ऐसा सोचते थे, जानते हो उनकी मूल भूल क्या थी? उनकी भूल थी यह सोचना कि वे पृथ्वी के ऊपरी सिरे पर वैसे ही रहते हैं, जैसे कि किसी पहाड़ की चोटी पर।

अब इसी सिलसिले में एक छोटी-सी कहानी सुनो।

'पृथ्वी की चोटी' नामक गाँव में दो मित्र रहते थे। एक था घर-घुस्सू और दूसरा था घुमक्कड़। घर-घुस्सू तो आराम से घर में बैठा रहा और घुमक्कड़ दूर-दराज़ की यात्रा के लिए तैयार हुआ। वह पृथ्वी का पूरा चक्कर लगाना चाहता था। घर-घुस्सू ने अपने दोस्त को भयानक ख़तरे से आगाह किया –

"तुम यात्रा करते-करते पृथ्वी के निचले भाग में पहुँच जाओगे," घर-घुस्सू ने ठण्डी साँस लेकर कहा – "और वहाँ से आकाश में जा गिरोगे।"

लेकिन घुमक्कड़ बहादुर आदमी था।

"कुछ परवाह नहीं, मैं जाऊँगा और ज़रूर जाऊँगा," उसने अपने मित्र से कहा – "और यदि तीन बरस तक न लौटूँ, तो समझ लेना कि मैं दूसरी दुनिया में पहुँच गया हूँ।"

घुमक्कड़ संसार के भिन्न-भिन्न नगरों और देशों में गया। वह हर समय एक ही दिशा में यात्रा करता रहा। हर जगह उसके पैर के नीचे पृथ्वी और सिर के ऊपर आकाश रहा। हो सकता है कि पृथ्वी से आकाश में जा गिरने को उसका बहुत मन भी हुआ हो। जानते हो क्यों? ताकि वह जीते जी ईश्वर को देख सके (क्योंकि धार्मिक लोगों का यह विश्वास था कि ईश्वर आकाश में रहता है)। पर वह आकाश में गिरता तो कैसे? आकाश तो हर वक़्त ऊपर ही रहता है, नीचे तो कभी नहीं आता है।

घुमक्कड़ मन ही मन सोचने लगा – "कैसे पाजी हैं हम लोग! हमने अपने छोटे-से गाँव का नाम 'पृथ्वी की चोटी' रख छोड़ा है। जाहिर है कि पृथ्वी की चोटी तो हर जगह ही है! जब मैं अपने घर-घुस्सू दोस्त को यह बात बताऊँगा तो वह दंग ही रह जायेगा।"

इसी तरह डेढ़ वर्ष बीत गया। घुमक्कड़ ने अब अनुमान लगाया कि वह पृथ्वी के दूसरे छोर पर पहुँच गया है। घुमक्कड़ ने अचम्भे में आकर कहा –

"यह भी क्या अजीबोग़रीब बात है! मालूम देता है कि मेरे और घर-घुस्सू के पाँव एक-दूसरे की ओर हैं और सिर पीछे की ओर।" उसे बेहद ख़ुशी हो रही थी कि आख़िर वही बाज़ी मार ले गया है। आख़िर घर-घुस्सू की नहीं उसी की बात सच निकली है। इसी ख़ुशी में उसने इतनी जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ाये कि निश्चित समय से पूरे तीन महीने पहले ही वह घर लौट आया।

इस बीच घर-घुस्सू कई-कई घण्टे अपने घर के दरवाज़े पर उदास-उदास-सा बैठा रहा। उसकी आँखें उसी दिशा में लगी रहीं, जिधर उसका घुमक्कड़ दोस्त गया था। शुरू में तो वह हर वक़्त अपने मित्र की बड़े उत्साह से प्रतीक्षा करता रहा और सोचता रहा कि जाने वह लौटेगा या नहीं। पर जैसे-जैसे दिन बीतते गये वह निराश होता गया। आख़िर उसने यह समझ लिया कि वह अब कभी न लौटेगा।

"मैंने घुमक्कड़ से ठीक ही कहा था कि वह पृथ्वी के नीचे जा गिरेगा। वही हुआ भी।" घर-घुस्सू निराश भाव से रोज़-रोज़ यही कहता।

परन्तु घुमक्कड़ तो जीता-जागता, पहले से अधिक स्वस्थ और चहकता हुआ घर लौटा। जिस दिशा में वह गया था उसकी विपरीत दिशा से वापस आया।

अब तो घर-घुस्सू को भी यह विश्वास हो गया कि पृथ्वी गोल है। इस पर पाँव एक-दूसरे की ओर और सिर पीछे की ओर करके जीना सम्भव है। 'पृथ्वी की चोटी' उन्होंने अपने गाँव का यह नाम बदल दिया और उसे 'दूसरे गाँवों जैसा' नया नाम दिया।

इस कहानी में क्या सच है और क्या कोरी कल्पना है?

सच्चाई यह है कि पृथ्वी गोल है। यदि तुम उसके किसी एक स्थान से पूरब दिशा में चल दो और हर समय बिल्कुल सामने ही चलते जाओ, तो दूसरी ओर से – अर्थात् पश्चिम की ओर से – उसी स्थान पर लौट आओगे।

यह भी सच है कि पुराने ज़माने में बहुत-से लोग यह सोचते थे कि वे पृथ्वी के ऊपरी भाग में रहते हैं और नीचे की ओर यात्रा करने में सभी प्रकार के ख़तरे हैं।

लैकटैनटिअस नामक एक लेखक ने लिखा था –

"क्या आप किसी ऐसे शेख़चिल्ली या मन के लड्डू खाने वाले की कल्पना कर सकते हैं जो यह सोचे कि कहीं सिर नीचे और पाँव ऊपर करके चलने वाले लोग भी रहते हैं? जो यह समझे कि वे सभी चीज़ें जो हमारी पृथ्वी पर पड़ी हुई हैं, वहाँ उसके निचले भाग में लटकती हैं? जो यह माने कि कहीं ऐसी जगह भी है जहाँ घास तथा वृक्ष नीचे की ओर बाहर निकलते हैं और वर्षा व ओले नीचे से ऊपर की ओर गिरते हैं?"

अच्छा होता कि हमारी कहानी का घुमक्कड़ अपने सफ़री बैग में लैकटैनटिअस की किताब भी ले जाता। आराम करने के समय वह उसे पढ़ सकता था। पृथ्वी की दूसरी दिशा में पहुँचकर तो वह उस लेखक पर जी भरकर हँसता। उसने भी तो अनाड़ी लोगों की मूर्खतापूर्ण शंका में भाग लिया था। सम्भव

है, घुमक्कड़ ने यह कहा होता –

"लैकटैनटिअस ने अगर यात्रा की होती तो वह ऐसी बेसिर-पैर की बात कभी न सोचता। लो, इस समय मैं घर-घुस्सू की उलटी दिशा में हूँ और हम दोनों ही पैर नीचे और सिर ऊपर करके चलते हैं। यहाँ और वहाँ वृक्ष एक ही तरह से उगते हैं – जड़ें नीचे, पृथ्वी में और तना और डालें ऊपर की ओर, हवा में। वर्षा की बूँदें व ओले जैसे वहाँ वैसे यहाँ भी ऊपर घने बादलों से नीचे पृथ्वी पर गिरते हैं। और जब तुम अच्छी तरह सोचोगे, तो इस निष्कर्ष पर पहुँचोगे कि सब कुछ ऐसा ही होना भी चाहिए। यदि पृथ्वी गोल है, तो इसका अर्थ यह है कि लोग इस पर हर जगह एक ही प्रकार की स्थिति में हैं। ठीक वैसे ही जैसे कि किसी तरबूज पर चींटियाँ।"

और उपरोक्त कहानी में कोरी कल्पना क्या है?

इसमें कल्पना है पैदल यात्रा करने की बात। क्योंकि यथार्थ में लोगों ने पहला संसार-भ्रमण थल-मार्ग द्वारा नहीं जल-मार्ग द्वारा ही किया था। दूसरी बात यह कि कहानी से घुमक्कड़ की यात्रा बड़ी सरल और आसान लगती है लेकिन वास्तव में बात ऐसी नहीं है।

अब हम तुम्हें बतलायेंगे कि वस्तुतः लोगों ने किस प्रकार पहला संसार-भ्रमण किया। लेकिन थोड़ी देर और सब्र करना होगा। पहले हम इतिहास के पन्नों पर एक नज़र डालेंगे। इतिहास के इन पन्नों में ज्ञान और अज्ञान के भीषण द्वन्द्व की कहानी है। इस कहानी में खगोलविज्ञान के उन वीरों और शहीदों का वर्णन है जिन्होंने सत्य की खोज में और उसका प्रचार करने के लिए बड़ी से बड़ी क़ीमत अदा की, जान की बाज़ी तक लगायी, मगर अपनी मंज़िल की तरफ़ बढ़ते रहे।

फ़ेतोन की कथा

प्राचीन यूनानवासी सोचते थे कि संसार बहुत बड़ा नहीं है। वे समझते थे कि आकाश पृथ्वी के बिल्कुल निकट है।

प्राचीन यूनानियों में इसी आशय की एक कहानी प्रचलित थी।

यूनानी यह मानते थे कि संसार पर देवता राज्य करते हैं। वे ज्यूस को ही सब देवताओं का स्वामी तथा पिता समझते थे। यूनानियों के अनुसार ज्यू बिजली का देवता है। यूनानी हीलिअस को सूर्य का देवता समझते थे। वे सोचते थे कि हीलिअस हर रोज़ सबेरे ही पूरब की ओर से अपने अग्नि-रथ में, पृथ्वी के नीचे के रक्षागार से प्रस्थान करता है। इस रथ में सूर्य के तृप्त घोड़े जुते रहते हैं। ये घोड़े रात में पूर्ण विश्राम कर चुके हैं। हीलिअस हर रोज़ अपनी यह आकाश-यात्रा पूरी करता है और शाम के वक़्त पृथ्वी के नीचे चला जाता है – अपने थके हुए घोड़ों को आराम देने के लिए।

फ़ेतोन, हीलिअस का नवयुवक पुत्र था। वह बहुत दिनों से अपने पिता के रथ में आकाश की सैर करना चाहता था। उसका पिता बहुत दिनों तक टालता रहा। अन्त में वह नवयुवक पुत्र की इच्छा पूरी करने के लिए राज़ी हो गया। फ़ेतोन बहुत प्रसन्न हुआ। वह चमकते हुए रथ पर कोचवान की जगह जा बैठा। उसने लगाम हाथ में ली और आकाश पर विचित्र रूप से बिखरे हुए नक्षत्र-समूहों के पास से होते हुए अपने रास्ते पर चल पड़ा।

फ़ेतोन रास्ता तय करते हुए वृश्चिक राशि के समीप जा पहुँचा। इस विकटाकार जन्तु का रूप इतना भयानक था कि सूर्य के घोड़े बिदककर एक तरफ़ को फाँद गये। नवयुवक के कमज़ोर हाथ उन शक्तिशाली घोड़ों को क़ाबू में न रख सके और एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना घट गयी : सूर्य-रथ अपने अभ्यस्त
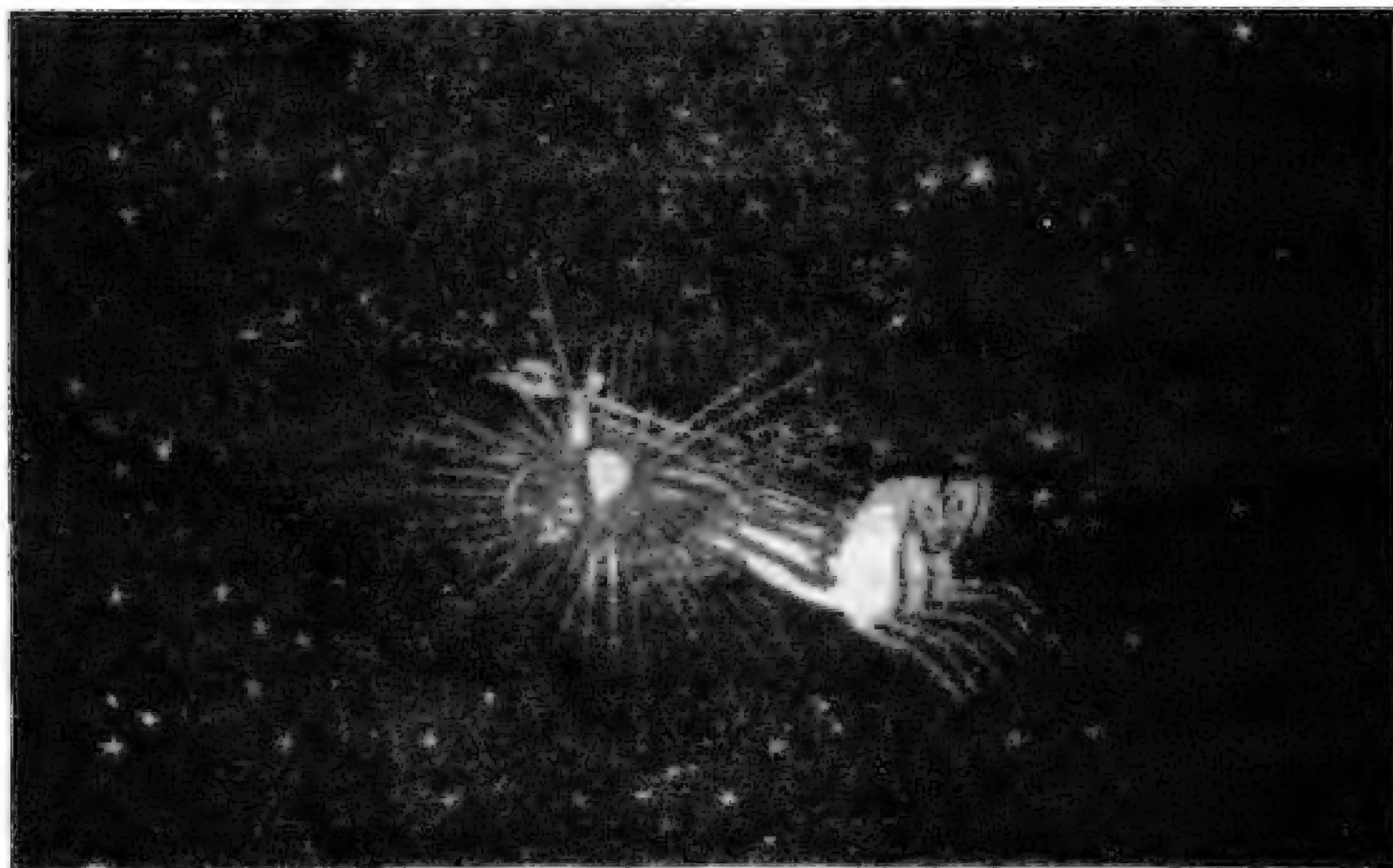
अधीर युवा फ़ेतोन सूर्य के रथ पर सैर कर रहा है। कई अजीबोग़रीब जन्तु – नक्षत्र – उसे घेरे हुए हैं।

रास्ते से भटक गया और पृथ्वी के बहुत ही समीप पहुँच गया। रथ की तेज़ किरणों से पृथ्वी पर स्थित सभी वस्तुएँ झुलसी जाने लगीं। शहरों और गाँवों, जंगलों, खेतों और घास के मैदानों आदि में आग लग गयी।

लोग आतंकित होकर जलते हुए घरों से बाहर भाग निकले और देवताओं के पिता ज्यूस से इस भयानक विपत्ति का अन्त करने की याचना करने लगे।

परन्तु अग्नि-रथ को कैसे रोका जाये? भला तेज़ सूर्य-घोड़ों का पीछा कौन करता?...

ज्यूस ने फ़ेतोन पर बिजली फेंकी और वह नवयुवक वहीं ढेर होकर रथ से नीचे गिर पड़ा। डरे हुए घोड़े रुक गये। हीलिअस दौड़ा-दौड़ा रथ के पास आया और उसे भूतपूर्व मार्ग पर लौटा ले गया। तभी पृथ्वी पर अग्निकाण्ड समाप्त हुआ।

भयभीत लोग जब होश में आये और उनकी दृष्टि आकाश पर पड़ी तो उन्होंने देखा कि सूर्य अपने
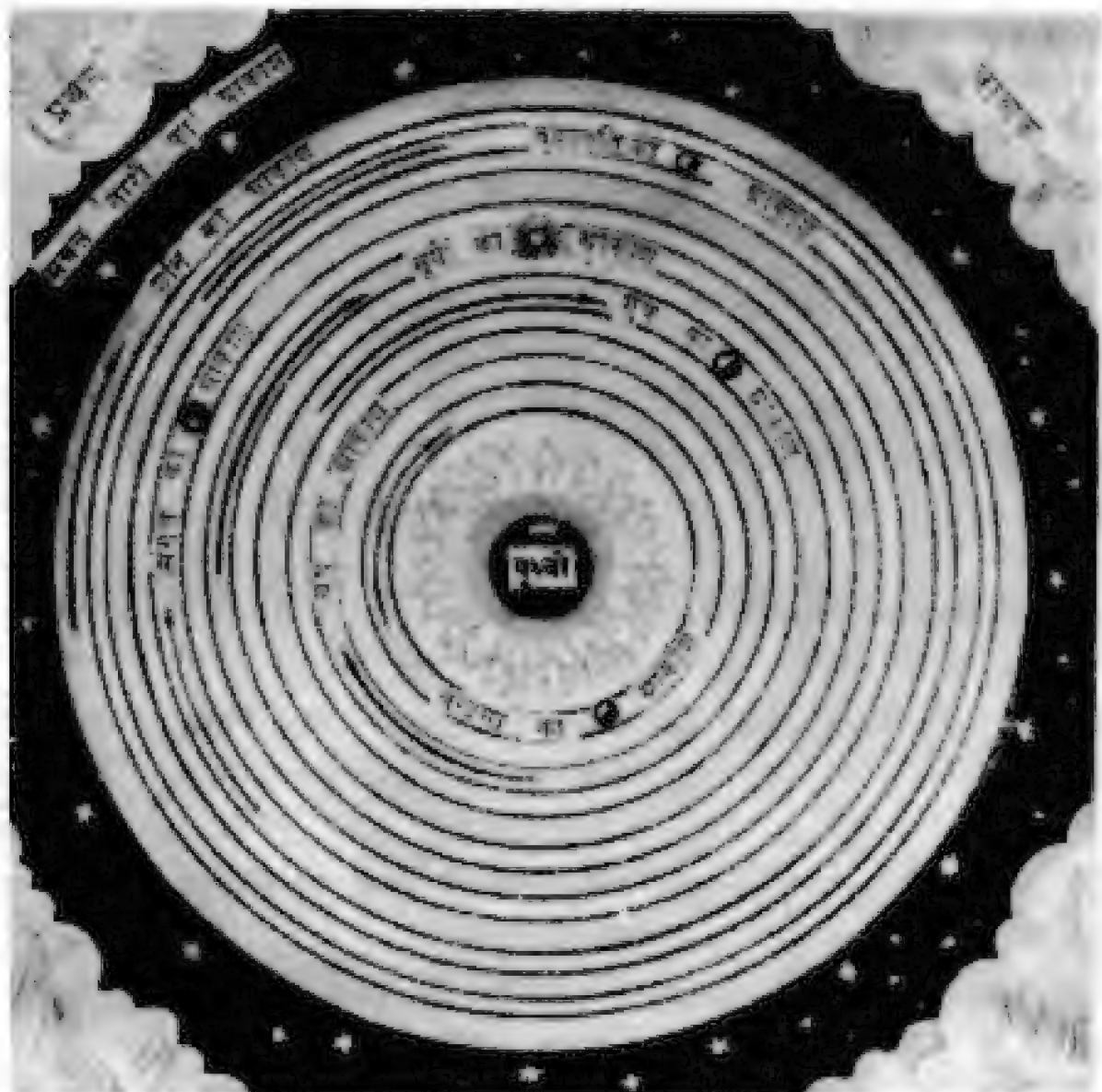
अरस्तु के अनुसार विश्व का रूप जिसमें ग्रह बिल्लौरी शीशे वाले आकाशों से जुड़े हुए हैं।

पहले ही स्थान पर है। ज्यूस ने उनके प्राणों की रक्षा की थी। इसलिए सभी ने उसे बलि चढ़ायी।

लेकिन उस प्राचीन काल में भी, सभी लोगों ने इस कथा पर विश्वास किया हो, ऐसी बात नहीं है।

हमारे समय से ढाई हज़ार वर्ष पहले एक वैज्ञानिक पाइथागोरस ने कहा था कि पृथ्वी गोल है और उसका न कोई ऊपरी और न नीचे का भाग है।

पाइथागोरस से दो सौ वर्ष बाद वैज्ञानिक अरस्तू ने चन्द्रमा, शुक्र, मंगल तथा अन्य ग्रहों की गति की व्याख्या करने का प्रयत्न किया। उन्होंने यह माना कि सूर्य, ग्रह तथा तारे पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं यानी पृथ्वी के चारों ओर घूमते हैं। लेकिन उन्हें चलाती कौन-सी शक्ति है? और अन्तरिक्ष में वे सहारा किसका लेते हैं?

अरस्तू ने इसका निर्णय इस प्रकार किया : पृथ्वी के ऊपर बिल्लौरी शीशे की तरह आठ पारदर्शक और ठोस आकाश हैं। सबसे समीप चन्द्रमा का आकाश है, जो पृथ्वी के चारों ओर चक्कर काटता है और चन्द्रमा इसके साथ अभिन्न रूप में जुड़ा हुआ है। आगे चलकर बुध ग्रह का और उसके आगे शुक्र का आकाश है। इसके बाद सूर्य, मंगल, बृहस्पति तथा शनि के आकाश आते हैं। सभी तारे आठवें आकाश के साथ अचल रूप में जुड़े हुए हैं।

ऐसे सिद्धान्तों की रचना करके अरस्तू ने सोचा कि इन आठ आकाशों का संचालन कैसे होता है? इस महान वैज्ञानिक के इस प्रश्न पर विचार करने का भी एक कारण था – उसे अनभिज्ञ पुजारियों की सूर्य के देवता हीलिअस और ओलिम्पस पर्वत पर रहने वाले अन्य देवताओं की मनगढ़न्त कथाओं पर विश्वास नहीं होता था।

पालों वाले जहाज़ों को आगे बढ़ाती है वायु की शक्ति; मनुष्य चलता है मांसपेशियों की शक्ति के सहारे; गाड़ी को खींचता है घोड़ा अपनी शक्ति ख़र्च करके। अतएव अरस्तू ने निर्णय किया कि एक नौवाँ आकाश भी है, जो दूसरे सब आकाशों को चलाता है और इस प्रकार मोटर का काम करता है। अरस्तू ने उसका नाम 'प्रथम चालक' रखा।

ज़रूर तुम्हें अरस्तू के सिद्धान्तों पर हँसी आ रही है। पर बच्चो, हँसो नहीं। अरस्तू ने संसार की रचना में देवताओं का हाथ न मानकर धार्मिक अन्धविश्वास पर भारी चोट की।

पुजारियों ने भी यह बात समझी और बस फिर क्या था – क्रोध से वे आगबबूला हो उठे। हाथ धोकर वे इस वैज्ञानिक के पीछे पड़ गये। उन्होंने कहा, "अरस्तू कहता है कि सूर्य, देवता हीलिअस का वाहक स्वर्ण-रथ नहीं है, कि इसे देवता के तेज़ घोड़े नहीं खींचते हैं, कि यह तो आकाश का एक प्रकाशग्रह है, और पृथ्वी के चारों ओर अपने आप घूमता है। अरस्तू घोर नास्तिक है, उसे अवश्य ही कड़ा दण्ड मिलना चाहिए!"

इन पुजारियों ने इस वैज्ञानिक को उसकी वृद्धावस्था में उसके जन्म-नगर से निर्वासित कर दिया। बेचारे वैज्ञानिक के जीवन का अन्त परदेश में हुआ।

टोलेमी तथा दुनिया के बारे में उसके सिद्धान्त

हाँ तो बच्चो, अब तुम्हें मालूम हो चुका है कि प्राचीन काल के लोग आकाश और ग्रहों के बारे में क्या सोचते-समझते थे। वे आकाश को ठोस बिल्लौरी शीशे के गुम्बद की तरह मानते थे। वे समझते थे कि सब तारे पृथ्वी के चारों ओर चक्कर काटते हैं और यह कि वे आकाश-मण्डल में ठोकी हुई चमकती कीलों के सिरों की तरह हैं। पुराने समय में लोग तारों को स्थिर समझते थे। यह ठीक नहीं था। आगे चलकर एक कहानी में इसी का ज़िक्र किया गया है।

फिर भी लोगों ने आकाश में ऐसे प्रकाशग्रह भी देखे जो कि तारों के बीच स्थानान्तरित होते रहते हैं – कुछ तेज़ी से और कुछ धीमी गति से। प्राचीन खगोलविज्ञानियों को एक बात बहुत अधिक परेशान करती थी – कि कुछ समय तक आकाश में एक ही दिशा में चलता हुआ प्रकाशग्रह अचानक पीछे की तरफ़ लौट पड़ता है और फिर उलटी दिशा में चलना प्रारम्भ कर देता है।
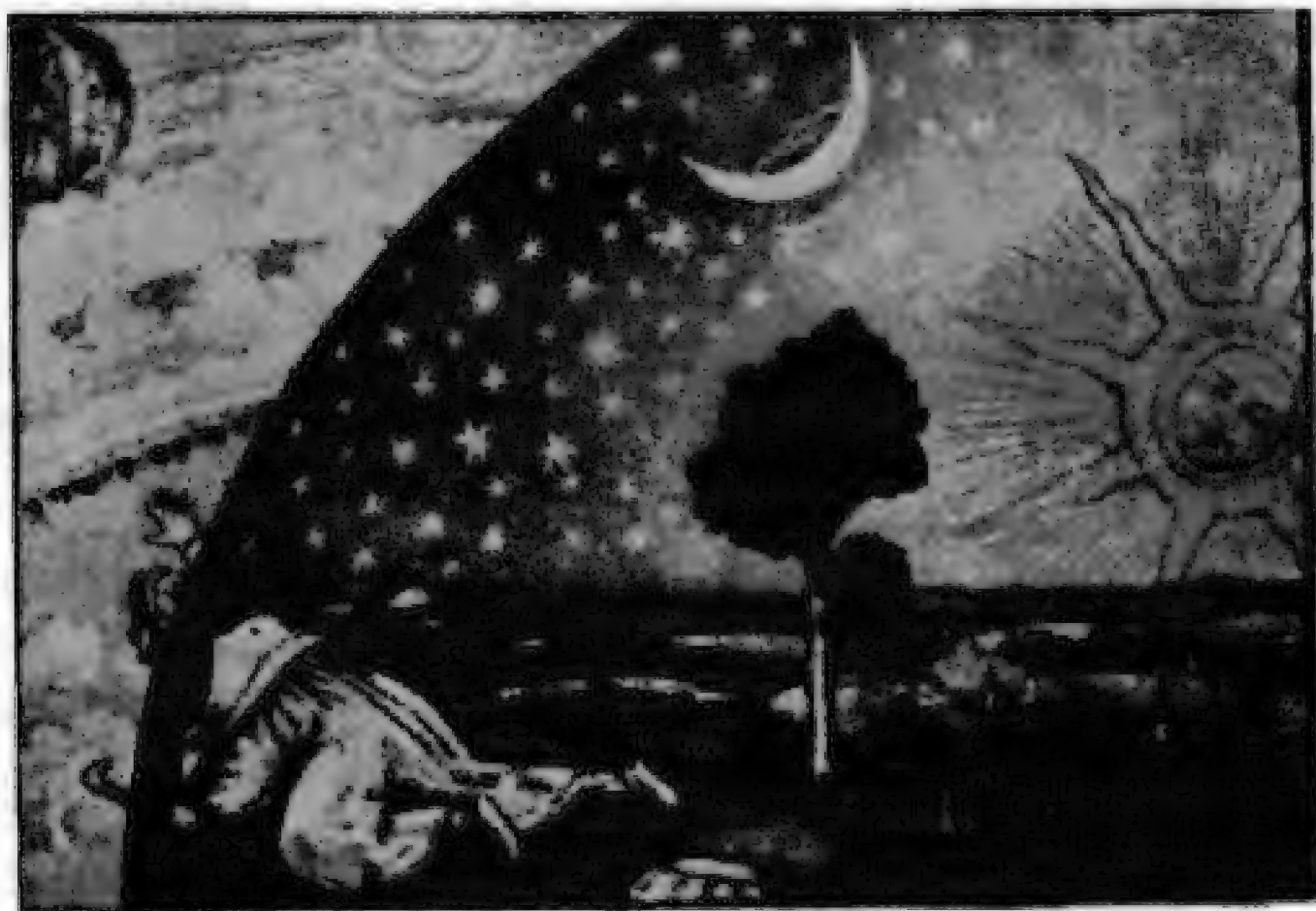
यह चित्र कई सदियों पहले बनाया गया था। यात्री कठिन आकाश तक जा पहुँचा, वहाँ उसे एक सूराख मिला जिसमें से झाँककर उसने अरस्तू के बिल्लौरी शीशे वाले आकाश देखे।
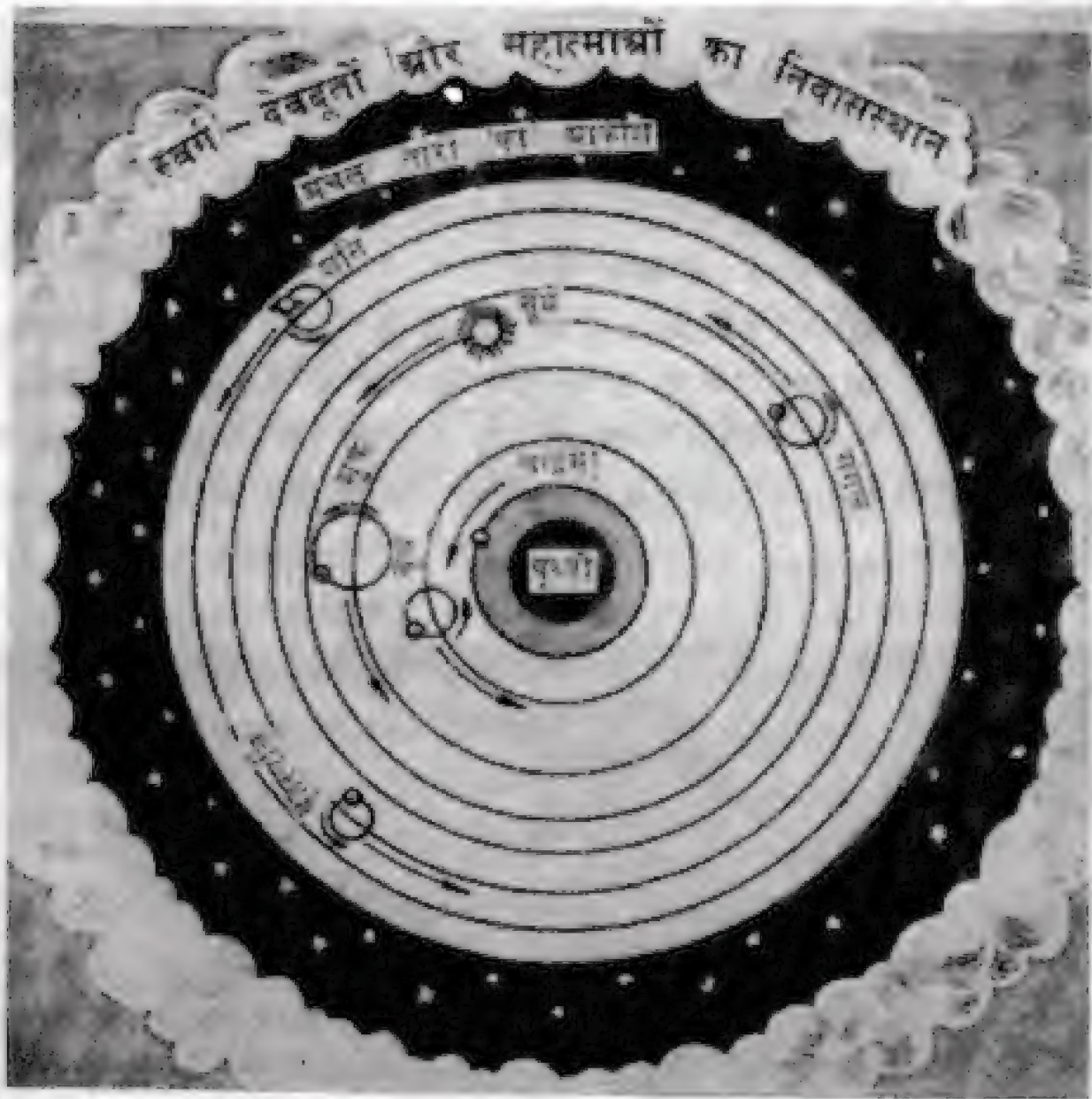
प्टोलेमी के अनुसार विश्व का रूप जिसमें ग्रह शून्य में घूमते हैं।

उन्हें ऐसे कुछ प्रकाशग्रह जुगनू की भाँति मालूम पड़ते थे। वे चमकती हुई कीलों के बीच आकाश के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में रेंगते-से दिखायी देते। इसी विशेषता के कारण प्राचीन यूनानवासियों ने उन्हें 'प्लानेता' (ग्रह) – अर्थात् 'घूमते हुए तारे' – कहा।

अब तो आकाश के ऐसे पिण्डों को ग्रह कहते हैं, जो अपने प्रकाश से प्रकाशित न होकर सूर्य की किरणों के प्रभाव से चमकते हैं। यदि सूर्य एकाएक बुझ जाये, तो शुक्र, मंगल और दूसरे ग्रहों तथा चन्द्रमा का चमकना भी समाप्त हो जाये।

तारे तपे हुए आकाशीय पिण्ड हैं और वे अपने ही प्रकाश से चमकते हैं। सूर्य दूसरे तारों की तुलना

में हमारी पृथ्वी के कहीं अधिक समीप है, वह प्रकाश और गर्मी देता है। इसके बिना जीवन असम्भव है। लेकिन प्राचीन काल में लोग सूर्य को ग़लती से ग्रह कहते थे।

अरस्तू ने किस प्रकार संसार की बनावट की व्याख्या की थी, इसका वर्णन मैं पहले कर चुका हूँ। अरस्तू के लगभग पाँच सौ वर्ष बाद एक और यूनानी वैज्ञानिक टोलेमी हुआ। उसने संसार के विषय में अपने सिद्धान्तों की रचना की।

टोलेमी ने अरस्तू के बिल्लौरी शीशे वाले आकाशों में विश्वास न किया। उसने बताया कि आकाश के सभी पिण्ड शून्य विश्व-अन्तरिक्ष में पृथ्वी के चारों ओर घूमते हैं।

टोलेमी के सिद्धान्त काफ़ी जटिल तथा कठिन थे – इस सीमा तक जटिल कि खुद टोलेमी ने यह स्वीकार किया कि "ग्रहों की गति की व्याख्या करने की तुलना में स्वयं ग्रहों को चलाना आसान है।"

परन्तु टोलेमी के सिद्धान्तों के आधार पर आकाश-मण्डल में ग्रहों की स्थिति के बारे में भविष्यवाणी करना सम्भव हो सका। टोलेमी अपनी ग़लतफ़हमियों के बावजूद भी प्राचीन समय का एक महान खगोलविज्ञानी था। अरस्तू के सिद्धान्तों के बाद उसके सिद्धान्त भावी प्रगति की दिशा में बहुत महत्त्वपूर्ण डग थे।

बाद में ईसाई धर्म ने भी टोलेमी के सिद्धान्तों को मान्यता दी। लोगों के लिए इन सिद्धान्तों की सच्चाई में सन्देह करना ख़तरनाक हो गया।

ईसाई धर्म हरेक स्वतन्त्र विचार का विरोध करता था। पादरी विज्ञान के विरुद्ध थे। वे न केवल वैज्ञानिकों को ही, किन्तु उनकी लिखी हुई किताबों को भी अपना कट्टर दुश्मन समझते थे।

टोलेमी सिकन्दरिया में रहता था। उसके मरने के लगभग दो सौ वर्ष बाद एक घटना घटी। सिकन्दरिया में उस समय का सबसे बड़ा पुस्तकालय था, उसमें चार लाख से भी अधिक हस्तलिखित किताबें थीं। वर्तमान समय में भी किताबों की इतनी बड़ी संख्या वाला पुस्तकालय बहुत ही बड़ा समझा जाता है।

सिकन्दरिया के पुस्तकालय में चिकित्साविज्ञान, इतिहास-विज्ञान, भूगोलविज्ञान, खगोलविज्ञान, गणितविज्ञान आदि की सारे संसार के वैज्ञानिकों की कृतियाँ संगृहीत थीं। सारे संसार के वैज्ञानिक वहाँ खोज-कार्य करने के लिए पहुँचते थे।

सन् 391 में बिशप थिओफ़िलस के भड़काने पर ईसाइयों की एक भारी भीड़ ने इस महान ज्ञान-भण्डार को जलाकर राख कर डाला। इस तरह एक अमूल्य निधि समाप्त हो गयी। यह निधि सोने तथा हीरों से कहीं अधिक मूल्यवान थी। सोना-चाँदी और जवाहरात तो फिर हासिल हो सकते हैं लेकिन ज्ञान-विज्ञान के हीरों की जलायी गयी हस्तलिपियाँ फिर से न लिखी जा सकती थीं।

ऊपर दी गयी घटना के लगभग बीस वर्ष बाद क्रूर भीड़ ने प्राचीन काल की एक बहुत ही प्रतिभाशाली महिला के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। उस महिला का नाम था हिपाशिया। दुनिया में वह खगोलविज्ञान और गणित की पहली अध्यापिका थी। हिपाशिया ने वास्तविक विज्ञान के हेतु ईसाई अन्धविश्वासों का साहस से और डटकर विरोध किया, और इसलिए बिशप किरील ने हत्यारों को उसका काम तमाम करने के लिए भेजा...

इस प्रकार धर्म विज्ञान और वैज्ञानिकों के रास्ते का रोड़ा बना रहा।

अब सवाल यह पैदा होता है कि पादरियों को टोलेमी के सिद्धान्त क्यों पसन्द आये?

इसलिए कि संसार की सृष्टि के विषय में उसके सिद्धान्त 'बाइबल' की कथाओं से बहुत कुछ मिलते-जुलते थे। (ईसाई सिद्धान्तों का वर्णन ईसाइयों के धर्म-ग्रन्थ 'बाइबल' में मिलता है।) उन्हें सिर्फ़ एक ही बात नापसन्द थी – पृथ्वी का गोलाकार बताया जाना। उन्होंने अपने अनुयाइयों को आज्ञा दी कि वे पृथ्वी को चौरस ही समझें।

'बाइबल' में कहा गया है – "ईश्वर ने पहले प्रकाश को अँधेरे से अलग किया। फिर आकाश और जलहीन, निर्जन पृथ्वी की रचना की।" इस प्रकार 'बाइबल' के अनुसार, पृथ्वी एकदम सारे विश्व का केन्द्र बन जाती है (टोलेमी के सिद्धान्त भी यही कहते हैं)।

दूसरे दिन ईश्वर ने आकाश बनाया और उसका नाम "ठोस" रखा। उस ठोस आकाश ने "पृथ्वी के जल" को "आकाश के जल" से अलग किया। 'बाइबल' के कथनानुसार ऊपर से वर्षा के रूप में गिरने वाला जल आकाश का जल है। यह जल आकाश के ऊपर संचित होता है और वहाँ से आकाश के छोटे-छोटे छिद्रों द्वारा रिस-रिसकर धरती पर गिरता है।

तीसरे दिन ईश्वर ने थल और जल को अलग-अलग किया और आज्ञा दी कि पेड़-पौधे उत्पन्न हों।

तब चौथे दिन ही ईश्वर ने सूर्य, चन्द्रमा और तारों की सृष्टि की और उन्हें आज्ञा दी कि वे दिन और रात में पृथ्वी को प्रकाश दें।

पाँचवें दिन उसने रेंगने वाले जन्तुओं, मछलियों और चिड़ियों की सृष्टि की और छठे दिन पशुओं और मनुष्य की बारी आयी।

'बाइबल' की यह कहानी पढ़कर हैरानी होती है। इसमें कैसी ऊल-जलूल और असंगत बातें कही गयी हैं। स्पष्ट है कि इन ऊटपटाँग बातों का विश्लेषण करने की ज़रा भी आवश्यकता नहीं है। केवल एक प्रश्न करना ही पर्याप्त होगा : प्रकाश तो सृष्टि के पहले दिन प्रकट हुआ और सूर्य, चन्द्रमा तथा तारे केवल चौथे दिन, तो फिर यह प्रकाश महानुभाव आया कहाँ से? एक

पादरियों के सिद्धान्तों के अनुसार देवदूत ही बादल बनाते हैं। मेह बरसना और बर्फ़ गिरना, यह भी उन्हीं की करामात का नतीजा है। ऋतुओं का संचालन और गर्मी तथा ठण्ड का सही विभाजन भी वही करते हैं।

टोलेमी के सिद्धान्त चौदह शताब्दियों तक ठीक समझे जाते रहे। 15वीं सदी के अन्त और 16वीं सदी के प्रारम्भ में कोलम्बस, मैगेलान तथा अन्य नाविकों की महान यात्राएँ हुईं। इन यात्राओं ने संसार की उस समय तक जानी-पहचानी सीमाओं को बहुत ही विस्तृत किया।

क्रिस्टोफ़र कोलम्बस और उसकी खोज

कोलम्बस का जन्म इटली के जेनोआ नगर में हुआ। युवावस्था से ही वह पुर्तगाल में रहने लगा। वहाँ उसने पुर्तगाली नाविकों की दूर-दूर के देशों की यात्राओं में भाग लिया।

पैंतीस बरस की उम्र होते-होते वह एक बढ़िया जहाज़ी के नाम से प्रसिद्ध हो चुका था। इसी समय उसके मन में समुद्री मार्ग से भारत तथा चीन जाने का विचार पैदा हुआ।

इन धनी देशों का थल-मार्ग बहुत ही लम्बा और कठिन था और यह रास्ता पूरब की ओर से था। किन्तु यह धारणा कि पृथ्वी गोल है, काफ़ी विस्तृत रूप में लोगों में फैल चुकी थी, अतएव कोलम्बस ने सोचा कि यदि समुद्री मार्ग द्वारा पश्चिम दिशा में जाया जाये, तो भी भारत और चीन पहुँचा जा सकता है।

कोलम्बस ने तो कभी यह कल्पना भी न की थी कि रास्ते में उसे अमेरिकी महाद्वीप मिल जायेगा और यह कि वह कहीं अटककर रह जायेगा। उसे यह भी ज्ञात न था कि यद्यपि समुद्री मार्ग से चीन पहुँचना अधिक सुगम हो सकता है, परन्तु थल मार्ग की अपेक्षा यह फ़ासला कहीं अधिक होगा। जानते हो क्यों कोलम्बस यह नहीं जानता था, इसलिए कि उन दिनों लोग पृथ्वी की असली लम्बाई-चौड़ाई नहीं जानते थे। वे पृथ्वी की वास्तविक लम्बाई-चौड़ाई से उसे कहीं छोटा समझते थे।

इस यात्रा की योजना पूर्ति के लिए अनुमति प्राप्त करना भी कुछ आसान नहीं था। पुर्तगाल में कोलम्बस की योजना पर विश्वास न किया गया। अतएव वह स्पेन में जा बसा। वहाँ ही कुछ वर्षों की दौड़-धूप और प्रयत्नों के बाद उसे सिर्फ़ तीन छोटे-छोटे जहाज़ मिले। इन जहाज़ों को स्पेनी शब्दों में 'करावेल्ला' कहा जाता था। इन्हीं को लेकर कोलम्बस 3 अगस्त सन् 1492 को पालोस नामक बन्दरगाह से अपनी दूर समुद्री यात्रा पर चल पड़ा।

इन जहाज़ों के नाम थे 'सान्ता मरीया', 'नीन्या' और 'पिन्ता'। उन पर कुल मिलाकर नब्बे अफ़सर व नाविक थे। किन्तु न तो जहाज़ी दल की इस अल्पसंख्या ने और न ही यात्रा की अनजानी दूरी ने इस साहसी नौसेनापति कोलम्बस को हतोत्साहित किया।

सफलता के दृढ़ विश्वास ने आखिर उसे पुरस्कृत भी किया। कई सप्ताह की जल-यात्रा के बाद उसे एक द्वीप का हरा-भरा किनारा दिखायी दिया। वहाँ के निवासी उसे गुआनाहानी नाम से पुकारते थे।

परन्तु कोलम्बस ने उसका नाम 'सान-सल्वाडोर' रखा। स्पेनी भाषा में इसका अर्थ है 'रक्षा करने वाला'।

इसके दो सप्ताह बाद कोलम्बस ने एक और बड़ा द्वीप क्यूबा और कुछ ही समय बाद हैती द्वीप ढूँढ़ निकाला।

कोलम्बस को पूरा विश्वास था कि ये द्वीप भारतवर्ष के ही अंग हैं। यही विश्वास मन में लेकर वह स्पेन लौट आया।

शीघ्र ही यूरोप के लोग यह जान गये कि कोलम्बस द्वारा खोजे गये द्वीप भारतवर्ष के अंग नहीं हैं। इनके पीछे एक ऐसा विशाल महाद्वीप है, जिसके विषय में यूरोप निवासियों को पहले कोई ज्ञान न था। यह होते हुए भी इन द्वीपों का नाम वही रहा, जो कोलम्बस ने रखा था। लोगों ने उन्हें केवल 'वेस्ट इण्डिया' अर्थात् 'पश्चिमी भारत' और असली भारतवर्ष को 'ईस्ट इण्डिया' अर्थात् 'पूर्वी भारत' कहना शुरू किया (अब तो इसे केवल 'भारतवर्ष' ही कहते हैं)। भारत में रहने वालों को 'इण्डियन' कहा जाता है। 'वेस्ट इण्डिया' और अमेरिका महाद्वीप के मूल निवासियों को 'रेड इण्डियन' कहकर पुकारा जाता है। इस प्रकार विशाल महासागरों की लम्बाई-चौड़ाई के कारण पृथक और अलग-अलग रहते हुए लोगों को भी कोलम्बस की भूल से एक जैसा मिलता-जुलता नाम मिला।

'वेस्ट इण्डिया' द्वीपों के पीछे का विशाल महाद्वीप अपनी खोज के लिए कोलम्बस का ऋणी है। इस महाद्वीप को कोलम्बस ही कहा जाना चाहिए था। पर ऐसा हुआ नहीं। इसे यात्री अमेरिगो वेसपुच्ची के नाम पर, अमेरिका कहा गया – इसने कुछ बरस बाद इस 'नये संसार' (आजकल भी अक्सर अमेरिका को इस नाम से पुकारा जाता है) की समुद्री यात्रा की। कोलम्बस ने कुछ समय बाद अपनी यात्रा का वर्णन अपने मित्रों को लिखे गये पत्रों में किया।

कोलम्बस की मृत्यु काफ़ी ग़रीबी की अवस्था में तथा ऐसे समय में हुई जब कि लगभग सब लोग उसे भूल-से गये थे।

इसी तरह कुछ वर्ष बीत गये। तब एक अन्य विख्यात समुद्री नाविक फ़ेरनान मैगेलान के जहाज़ी बेड़े ने संसार के चारों ओर भ्रमण किया। मानवता के इतिहास में यह अपने ढंग की पहली यात्रा थी। यह यात्रा बहुत महत्त्वपूर्ण थी। इसीलिए हम यहाँ इसका विस्तृत विवरण देते हैं।

संसार के चारों ओर पहली यात्रा

20 सितम्बर सन् 1519 को स्पेन के सेवील्या नामक बन्दरगाह से छोटे-छोटे पाँच जहाज़ों का एक समुद्री बेड़ा रवाना हुआ।

जहाज़ों के नाम थे 'सान-एण्टोनियो', 'ट्रीनीडाड', 'कन्सेप्शियन', 'विक्टोरिया' और 'साण्ट-यागो'। इस बेड़े में दो सौ उनतालीस अफ़सर तथा नाविक थे, किन्तु उनमें से सिर्फ़ कुछ ही वापस लौटे।

एडमिरल (नौसेनापति) मैगेलान ने इस स्पेनी जहाज़ी बेड़े का नेतृत्व किया। एडमिरल जन्मतः स्पेनी नहीं था। उसका जन्म स्पेन के पड़ोसी देश पुर्तगाल में हुआ था।
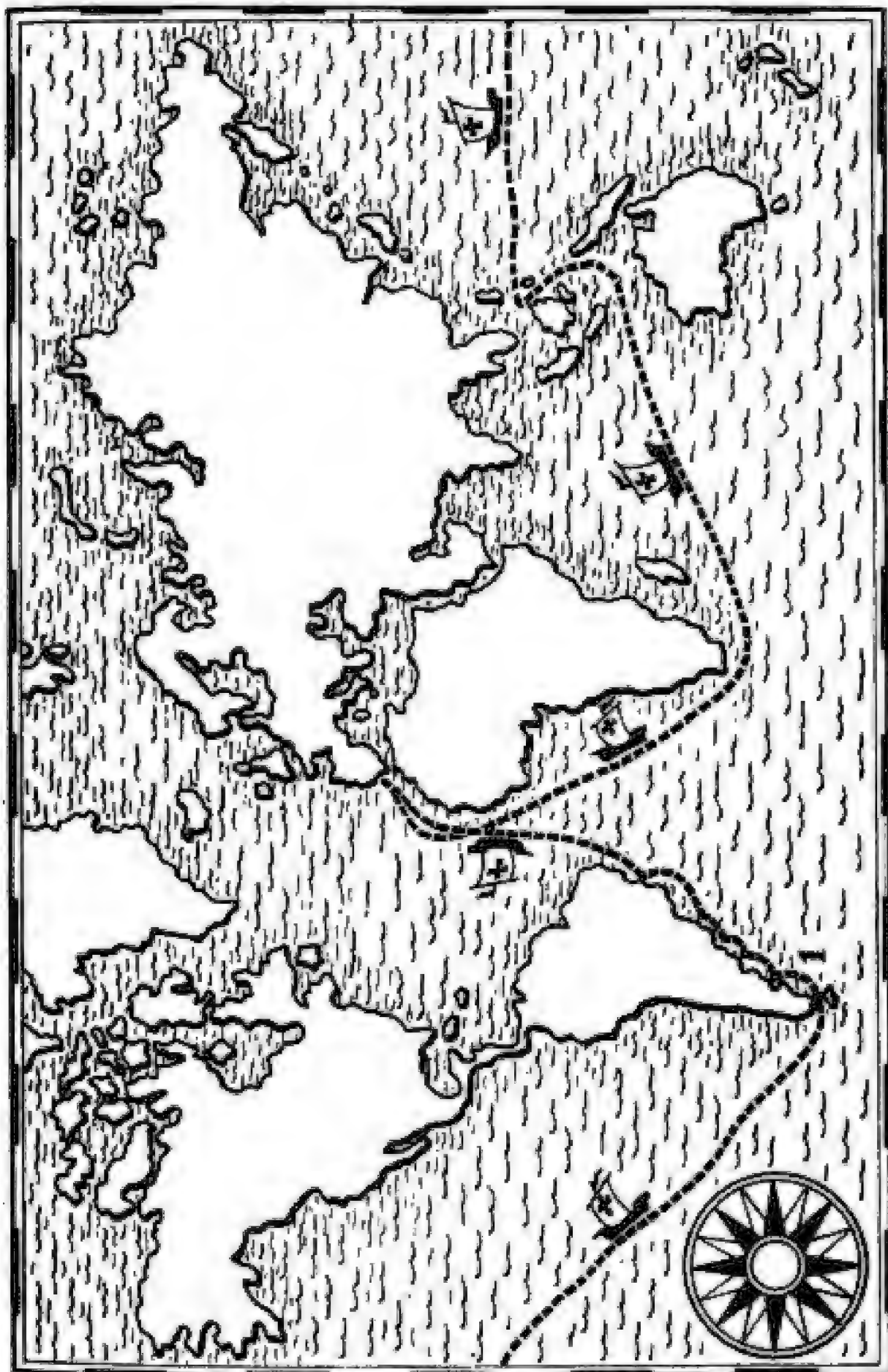
मैगेलोन की यात्रा के मार्ग का मानचित्र।

फ़ेरनान मैगेलान ने अपने लिए बहुत कठिन लक्ष्य बना रखा था – अटलाण्टिक महासागर से प्रशान्त महासागर का मार्ग ढूँढ़ निकालना।

इस मानचित्र को देखो। दो सबसे बड़े महासागरों – अटलाण्टिक व प्रशान्त – के बीच अमेरिकी महाद्वीप एक रुकावट के रूप में फैला हुआ है। इस महाद्वीप का विस्तार अगम्य बर्फ़ीले आर्कटिक महासागर से ठण्डे अण्टार्कटिक तक है। अमेरिका के पश्चिम का महासागर उस समय लोगों को मालूम हो चुका था और उसे 'विशाल दक्षिणी समुद्र' कहा गया था।

मैगेलान से पहले दूसरे समुद्री नाविकों ने इस नये और अज्ञात महासागर तक पहुँचने का प्रयत्न किया, परन्तु हर तरफ़ – भूमध्य रेखा के समीप तथा उसके काफ़ी दूर उत्तर व दक्षिण में – उन्हें अमेरिका के अचल तट से ही टकराना पड़ा। और फिर यह धारणा बन गयी कि अटलाण्टिक महासागर से जल-मार्ग द्वारा 'विशाल दक्षिणी समुद्र' तक जाना असम्भव है।

मैगेलान इससे सहमत नहीं था। उसे विश्वास था कि दक्षिणी अमेरिका के दक्षिणी छोर पर एक ऐसा जलडमरूमध्य है जो दोनों महासागरों को जोड़ता है। मैगेलान जहाज़ और नाविक मिल जाने पर इस जलडमरूमध्य की खोज में जाने के लिए तैयार था। अपने देश पुर्तगाल में उसने कई वर्षों तक इसके लिए काफ़ी दौड़-धूप की, पर बेकार ही। उसे अपनी मातृभूमि छोड़नी पड़ी और स्पेन जाना पड़ा। वहाँ ही मैगेलान पर विश्वास किया गया और उसे जहाज़ी बेड़े का एडमिरल बनाया गया।

इस तरह पुर्तगाल-निवासी मैगेलान स्पेनी बेड़े का नायक बन गया। मैगेलान से पहले एक ऐसी लम्बी समुद्र-यात्रा करने की किसी की हिम्मत न हुई थी।

इतनी बड़ी नियुक्ति तथा उस विशाल धन-राशि के लिए जो उसे सफलता मिलने पर प्राप्त होनी थी, मैगेलान को कम मूल्य नहीं चुकाना पड़ा। स्पेन के शासक के साथ किये गये समझौते के अनुसार यह तय पाया गया था कि मैगेलान को नये खोजे गये क्षेत्रों का गवर्नर नियुक्त किया जायेगा। इतना ही नहीं, वहाँ से हासिल होने वाली आमदनी का बीसवाँ हिस्सा भी उसे दिया जायेगा। इन कारणों से उस विदेशी मैगेलान के नेतृत्व में काम करने वाले अभिमानी स्पेनी कप्तान, उससे डाह व घृणा करने लगे। उन्होंने सौगन्ध खायी कि कोई बढ़िया मौक़ा पाते ही वे मैगेलान को दूसरी दुनिया का रास्ता दिखा देंगे।

यात्रा प्रारम्भ होने के पहले ही मैगेलान के शत्रुओं ने उसके कार्य में तरह-तरह की बाधाएँ डालीं। उन्होंने उसे साज़-सामान और खाने-पीने की चीज़ें खरीदने के लिए पैसे देने में आनाकानी की। उन्होंने उसकी हत्या तक कर डालने का प्रयत्न किया। उसे पुराने, ढीले-ढाले अंजरों-पंजरों वाले जहाज़ दिये गये। और नाविकों के समूह में भिन्न-भिन्न जातियों और क़बीलों के लोगों को रखा गया। वे ऐसे लोग थे, जो अपने-अपने देशों से भागकर आये हुए थे और भिन्न-भिन्न अपराधों के लिए उनकी सरकारें उनका पीछा करती रही थीं।

मैगेलान ने हिम्मत न हारी। उसने सभी बाधाओं पर विजय पायी – उसने धन प्राप्त किया, दो वर्ष की समुद्र-यात्रा के लिए साज़-सामान तथा खाद्य-सामग्री जुटायी, जहाज़ों की मरम्मत करवायी और जहाज़ियों को प्रशिक्षण देकर तैयार किया।

प्रश्न उठता है कि मैगेलान की यात्रा का आयोजन क्यों किया गया?

मैगेलान का यह स्वप्न था कि वह सन्देह करने वालों को विश्वास दिलायेगा कि पृथ्वी गोल है। लेकिन उस समय कुछ इने-गिने वैज्ञानिकों को ही पृथ्वी के आकार के विषय में दिलचस्पी थी। राजा-महाराजाओं व सौदागरों को इसमें कोई रुचि न थी। मैगेलान की यात्रा में उन्हें दिलचस्पी हुई तो केवल इसलिए कि इसकी सफलता से उन्हें भी हाथ रँगने के, मालामाल होने के सुनहरे मौक़े मिलेंगे।

यह चित्र 16वीं शताब्दी में बनाया गया था। इसमें मैगेलान दिखाया गया है जब वह अपनी सुप्रसिद्ध पृथ्वी परिक्रमा पर था। चित्र में मैगेलान अपने जहाज़ के पिछले हिस्से में बैठा हुआ है। उसके चारों ओर विभिन्न ज्योतिषविज्ञानीय उपकरण हैं जिनकी सहायता से वह समुद्र में जहाज़ की स्थिति जान सकता था।

अब तुम कल्पना करो उस ज़माने की जब यूरोपीय देशों में काली मिर्च सोने के बराबर थी। सच-सच बताओ क्या तुम्हें बहुत ही आश्चर्य न होता, बेहद हँसी न आती, यदि तुम आजकल किसी दुकान में यह सुनते –

"आपने जो चीज़ें ख़रीदी हैं उनकी क़ीमत है काली मिर्च के बीस दाने!" हम समझते हैं कि तुम्हें ज़रूर हँसी आती, अवश्य आश्चर्य होता।

लेकिन यह हक़ीक़त है कि कभी काली मिर्च पैसे की जगह दी जाती थी, क़र्ज़ की अदायगी मिर्चों में हो सकती थी, कर की वसूली तक मिर्च में की जाती थीं काली मिर्च से घर, ज़मीन और जहाज़ ख़रीदे जाते थे।

आजकल धनी लोगों के बारे में कहा जाता है –

"वह तो सोने-चाँदी में खेलता है।"

और पुराने समय में धनी लोगों के बारे में कहते थे –

"वह तो काली मिर्चों में खेलता है।"

और यह ठीक उसी समय की बात है जब मैगेलान ने अपनी प्रसिद्ध समुद्र-यात्रा प्रारम्भ की थी पूरबी मसाले-मिर्च, दालचीनी, अदरक – अमीरों के भोजन में डाले जाते थे। इनसे भोजन काफ़

चटपटा और स्वादिष्ट हो जाता है और स्वादिष्ट भोजन स्वास्थ्य के लिए अधिक लाभदायक है। उस समय उपरोक्त वस्तुएँ दवाई तौलने वाले तराजू पर रत्ती-रत्ती, ठीक-ठीक तौली जाती थी। इन वस्तुओं का एक-एक कण भी बड़ा क़ीमती था। पूरबी दवाएँ, मसलन काफूर, भी इसी प्रकार मूल्यवान थीं। ये वस्तुएँ पैदा होती थीं भारत व मोलुक्का द्वीप-समूह में। वहाँ उन दिनों ये वस्तुएँ आजकल के जौ और मटरों की भाँति सस्ती थीं।

पूरबी मसाले और दवाएँ यूरोप में इतने महँगे क्यों थे? इसलिए, कि यूरोप का मार्ग लम्बा व कठिन था; पूरब से माल लाने वाले सौदागरों को मार्ग में भयंकर तूफ़ानों और जल-बवण्डरों से दो-चार होना पड़ता था; समुद्री तथा खुश्की डाकुओं के गिरोह सौदागरों को मार डालते थे और ये सौदागर जिन-जिन देशों से होकर गुज़रते उनके शासक उनसे बहुत बड़ी रक़म कर की शक्ल में वसूलते थे। दूरवर्ती पूरब और यूरोप के बीच के इस मार्ग में सौदागरों को पूरे दो-तीन वर्ष लग जाते थे। मार्को पोलो और अफ़नासी निकीतिन की यात्राओं में कितना वक़्त लगा था यह तो हम पीछे बता ही चुके हैं।

1453 में, तुर्कों ने कुस्तुनुनिया को जीत लिया था इसके बाद तो पूरबी देशों में जाना बहुत ही कठिन – लगभग असम्भव-सा – हो गया था।

इसलिए यूरोप में मिर्च की एक चुटकी, मलाया में मिर्च के एक पूरे बोरे से भी महँगी थी।

मैगेलान को इस यात्रा के लिए भेजते हुए स्पेन के धनी-मानियों को यह आशा थी कि वह 'मसालों के द्वीपों' के लिए कोई दूसरा, कहीं छोटा और असंकटमय मार्ग ढूँढ़ निकालेगा। इसके अतिरिक्त स्पेनियों

को यह आशा भी थी कि मोलुक्का द्वीप-समूह को वे अपने राज्य में मिला लेंगे। अतएव उन्होंने उसकी यात्रा के साज़-सामान के लिए पैसे ख़र्च किये।

यह जहाज़ी बेड़ा बिना किसी विशेष घटना के अमेरिका के किनारे तक पहुँच गया। यूं यह सही है कि इस बीच 'सान-एण्टोनियो', 'कन्सेप्शियन' और 'विक्टोरिया' के स्पेनी कप्तान हर समय मैगेलान के साथ बैर साधते रहे और भिन्न-भिन्न जातियों के नाविकों के बीच शत्रुता का बीज बोने का प्रयत्न करते रहे।

किन्तु अमेरिका के किनारे पर पहुँचने के बाद ही मुख्य कठिनाइयों का श्रीगणेश हुआ। मैगेलान की धारणा थी कि दोनों महासागरों के बीच जलडमरूमध्य है, पर वह कहाँ स्थित है, यह वह ठीक-ठीक नहीं जानता था। अतएव उन्हें हर एक खाड़ी और हरेक ख़लीज में जाना पड़ा और उस रहस्यपूर्ण और इच्छित जलडमरूमध्य की सभी जगह खोज करनी पड़ी।

इस कार्य में बहुत-सा अमूल्य समय लग गया। दक्षिणी गोलार्द्ध की भीषण और कठोर सर्दी दिन-ब-दिन बढ़ने लगी। दक्षिणी ध्रुव के देशों की यात्रा करते हुए ये समुद्री नाविक स्वयं जाड़े की ओर बढ़ते जा रहे थे।

मैगेलान ने अब यह समझ लिया कि आगे बढ़ना पागलपन है। उसने महसूस किया कि जाड़े के महासागर में जो भयानक तूफ़ान आते हैं वे सब उन्हीं के शिकार होकर रह जायेंगे। पाँचों जहाज़ वायु से

सुरक्षित, संसार की एक सबसे निर्जन और भयानक खाड़ी में लंगर डाले खड़े थे। समुद्र की काली और ठण्डी लहरें जहाज़ों से टकरा रही थीं। निर्जन तथा सूने किनारे पर न तो कोई वृक्ष था और न थी झाड़ियाँ। और तो ओर भयानक जाड़े के आगमन के चिह्न देखकर चिड़ियाँ तक भी कहीं दूर उड़ गयी थीं।

सभी नाविकों में उदासी छायी हुई थी – एडमिरल ने राशन की मात्रा में कमी करने की आज्ञा दी। इससे लोगों में गुस्से की लहर दौड़ गयी। मैगेलान को भय था कि आगे की यात्रा के लिए खाने-पीने की सामग्री शायद काफ़ी न हो सकेगी।

असन्तुष्ट स्पेनी कप्तानों ने मौक़ा हाथ से न जाने दिया। उन्होंने गुस्से में आये हुए नाविकों को भड़काया और बग़ावत करवा दी। मैगेलान ने इस बग़ावत को दबाया और भड़काने वालों को कड़ी सज़ा दी। इसके बाद किसी को मैगेलान के विरुद्ध कुछ भी कहने की हिम्मत न हुई। परन्तु स्पेनी अफ़सरों के दिल में दुश्मनी की आग भड़कती रही और एडमिरल से वे और भी अधिक घृणा करने लगे।

इन लोगों ने जैसे-तैसे भयानक जाड़े के पाँच महीने काटे। जाड़े का अन्त हुआ तो सभी जहाज़ उस रहस्यपूर्ण जलडमरूमध्य का पता लगाने के लिए फिर से दक्षिण दिशा में चल पड़े।

नित नयी मुसीबतें आती रहीं। अन्वेषण के समय उनके जहाज़ों में सबसे द्रुतगामी जहाज़ 'साण्ट-यागो' नष्ट हो गया। तूफ़ान ने उसे किनारे पर ले जा पटका और चकनाचूर कर डाला। परन्तु नाविकों की टोली जैसे-तैसे बच निकली। इस टोली को दूसरे जहाज़ों में स्थान दिया गया और फिर सभी आगे बढ़े। आखिर मैगेलान का सपना साकार हुआ। विजय का चिरवांछित दिन आया! नाविकों ने उस महाद्वीप में ऊँचे अन्तरीप के पीछे काफ़ी दूरी तक फैली हुई भयानक खाड़ी देखी। खाड़ी का जल तेज़ हवा के कारण काली-काली लहरों की शक्ल में तेज़ी से हिलोरें ले रहा था।

मैगेलान ने अन्वेषण के लिए दो जहाज़ भेजे। उनके जहाज़ी कुछ दिनों बाद तोपें दनदनाते, झण्डे फहराते और खुशी से दीवाने तथा शोरगुल मचाते हुए लौटे। वह महान खोज पूरी हुई –रहस्यपूर्ण जलडमरूमध्य का पता चल गया!

मैगेलान की खुशी का ठिकाना न रहा। उसने तरह-तरह की मुसीबतें झेली थीं, तरह-तरह के ख़तरों को गले लगाया था और बड़ी-बड़ी मुश्किलों से लोहा लिया था। यह सब कुछ बेकार न गया था। आख़िर उसकी मेहनत रंग लायी थी।

बाद में इस प्रसिद्ध समुद्री नाविक के नाम पर इसे 'मैगेलान जलडमरूमध्य' का नाम दिया गया। दक्षिणी अमेरिका के मानचित्रों में तुम्हें इसका यही नाम मिलेगा।

अब ये चार जहाज़ धीरे-धीरे तथा सावधानी से आगे बढ़े।

मैगेलान का जहाज़ी बेड़ा पूरे एक महीने तक उस नये खोजे हुए जलडमरूमध्य में आगे बढ़ता रहा। अन्त में यूरोपियों द्वारा अनजाने और नये महासागर में एक रास्ता दिखायी पड़ा। पत्थर का कलेजा रखने वाले मैगेलान की आँखों में भी खुशी के आँसू छलक आये।

मैगेलान ने सोचा अब तो पश्चिम की ओर – मनचाहे 'मसालों के द्वीपों' की ओर – जल्दी से जल्दी बढ़ना चाहिए!

सफलता की ड्योढ़ी पर इस साहसी नाविक को नयी विपत्ति का सामना करना पड़ा। विश्वासघातियों

ने उसके लगभग सभी कार्यों पर पानी फेर दिया। 'सान-एन्टोनियो' जहाज़ के कप्तान के सहायक ने बग़ावत कर दी और चुपके-चुपके अपने जहाज़ को स्पेन वापस भगा ले गया।

ग़द्दारों ने मैगेलान को भारी धक्का पहुँचाया। 'सान-एण्टोनियो' जहाज़ पर ही खाद्य-सामग्री का मुख्य सबसे अच्छा भण्डार था। यह सबसे लम्बा-चौड़ा जहाज़ था और एडमिरल ने उसके भण्डार को ज़रूरत के वक़्त के लिए सुरक्षित रख छोड़ा था।

तो मैगेलान ने इसके बाद क्या किया? उसके पास अब केवल तीन जहाज़ और बहुत थोड़ा राशन-पानी रह गया था। किन्तु मैगेलान ने दृढ़ता से कहा –

"हम लौटेंगे नहीं, आगे ही बढ़ेंगे, चाहे हमें जहाज़ों पर लगी चमड़े की रस्सियाँ ही क्यों न चूसनी पड़ें?"

28 नवम्बर 1520 में मैगेलान का जहाज़ी बेड़ा भयानक मरुस्थल की भाँति अपार-असीम महासागर में चल पड़ा। इससे पहले किसी यूरोपीय जहाज़ ने यह महासागर पार नहीं किया था।

मैगेलान के बेड़े के जहाज़ जीर्ण-शीर्ण हो चुके थे। उनके मस्तूल ढीले पड़ चुके थे और पाल फट गये थे। यदि उसे अपने सामने दिखायी देने वाले सागर के विस्तार का ज्ञान होता तो शायद वह ऐसी ख़तरनाक यात्रा का निश्चय ही न करता। किन्तु उसे तो यह सब मालूम ही न था।

मैगेलान की यात्रा के पहले, लोग यह न जानते थे कि पृथ्वी का आकार कितना बड़ा है। एडमिरल ने सोचा कि मोलुक्का द्वीप-समूह तक उसे लम्बी यात्रा नहीं करनी पड़ेगी – वर्तमान पैमाने के अनुसार शायद 3,000-4,000 किलोमीटर तक ही। परन्तु सचमुच में यह रास्ता लगभग 18 हज़ार किलोमीटर लम्बा था!

नये महासागर में नाविकों को अनुकूल तथा सुन्दर मौसम मिला – उनके ऊपर निर्मल तथा सुहावना आकाश फैला था। लम्बे जाड़े में ठिठुरे हुए इन लोगों को सूर्य की किरणें गर्मी दे रही थीं। मन्द-मन्द वायु जहाज़ों को पश्चिम दिशा में लिये जा रही थी। मैगेलान ने इस नये महासागर का नाम 'प्रशान्त महासागर' रखा।

बाद में मालूम पड़ा कि यह महासागर उतना शान्त नहीं है। उसके विशाल विस्तार के कारण उसे 'विशाल' कहा गया। अतएव, बहुत मानचित्रों में इसे 'विशाल या प्रशान्त महासागर' का नाम दिया जाता है।

कई सप्ताह बीत गये, पर किनारा कहीं दिखायी न दिया। एक महीना बीता, दूसरा भी बीत गया, किन्तु तीनों छोटे जहाज़ों के चारों ओर पहले की भाँति विशाल महासागर ही दिखायी देता रहा।

जहाज़ों पर अब भुखमरी शुरू हुई। सफ़र शुरू करने से पहले मैगेलान ने सुखायी हुई पावरोटी के बहुत-से बक्से रास्ते के लिए जमा किये थे। अब पता चला कि उसके दुश्मनों ने इस मामले में भी छल किया है। उन्होंने इन बक्सों में गली-सड़ी और बेकार की चीज़ें भर दी थीं। इतना ही नहीं, चूहों ने बक्से काट डाले थे और वे उनके अन्दर की वस्तुएँ भी हड़पते जाते थे। नाविकों ने बेरहमी से चूहों का शिकार करना शुरू किया। पकड़े हुए चूहे मिठाइयों के बराबर समझे जाते थे। उन्हें बड़े चाव से खाया जाता था।

शराब बहुत पहले ही ख़त्म हो चुकी थी। पीपों में रखा हुआ मीठा पानी सड़ चुका था। उसमें से

बहुत बुरी सड़ाँध आती थी। लोग अपनी नाक दबाकर बड़ी मुश्किल से और नफ़रत करते हुए यह पानी पीते थे।

अन्त में मैगेलान की मनहूस भविष्यवाणी भी सच निकली – नाविकों को चमड़े की रस्सियाँ भी खानी पड़ीं! वे इन रस्सियों को नर्म करने के लिए कुछ दिन तक समुद्र के पानी में लटकाये रखते। फिर उन्हें टुकड़ों में काटते, भूनते और चबाये बिना ही निगल जाते। उन्हें चबाना तो सम्भव ही न था। चमड़े के इन निगले हुए टुकड़ों के कारण सभी के पेट में असह्य दर्द होने लगा।

यात्रा का तीसरा महीना भी समाप्त होने को आया। नाविक भूखों मर रहे थे। मृतकों को जहाज़ों से नीचे फेंक दिया जाता था और उन्हें लोभी शार्क मछलियाँ हड़प जाती थीं।

लोगों के मन पर बुरी तरह आतंक छाया था। इन्हें महसूस होने लगा था कि अनन्त मरुभूमि के समान इस भयानक महासागर में उनका सर्वनाश पत्थर की लकीर की तरह निश्चित है। नाविक सोचते थे कि अब उन्हें ज़मीन कभी दिखायी न देगी।

किन्तु मैगेलान ने यह भी अनुभव किया कि वापस लौटना भी तो सम्भव नहीं है। आगे बढ़ते जाने पर, जल्द या देर से, द्वीप ज़रूर मिलेंगे। लेकिन जहाँ तक वापस लौटने की बात है, तो वे लौट कभी न सकेंगे, क्योंकि इसके लिए उनके पास न तो शक्ति रह गयी थी और न खाद्य-सामग्री।

तीन महीनों से अधिक की लम्बी और भयानक यात्रा के बाद ही नाविकों को ज़मीन दिखायी दी। ज़मीन भी ऐसी कि जहाँ न एक बूँद पानी था और न कोई पेड़-पौधा ही। वहाँ था सिर्फ़ वीराना और मटमैली चट्टानें। इन लोगों ने फिर भी अपनी हिम्मत बनाये रखी। उन्हें लगा कि इस विस्तृत महासागर का अब जल्द ही अन्त हो जायेगा और बहुत सम्भव है कि उन्हें हरे-भरे द्वीप भी दिखायी दें। ऐसे द्वीप जहाँ पानी और खाने की चीज़ें भी हों। आख़िर उन्हें इन्तज़ार और सब्र का मीठा फल मिला, उनकी उम्मीद जाग गयी!

6 मार्च 1521 को आनन्द विभोर नाविकों ने एक द्वीप देखा – असली द्वीप, जिसमें ताड़ के वृक्ष थे और थीं मीठे जल की छोटी-छोटी नदियाँ। इन्हीं नदियों के स्वच्छ और शीतल जल के लिए तो ये बेचारे कभी से तरस रहे थे। इस द्वीप पर बस्ती थी और लोगों के पास मवेशी भी थे। खाने के लिए ताज़ा मांस भी मिल सकता था! आखिर साहसी नाविकों ने राहत की साँस ली...

अब तुम शायद यह सोचोगे कि चलो क़िस्सा ख़त्म हुआ। इसके बाद तो मैगेलान को

कुछ भी तकलीफ़ न उठानी पड़ी होगी। वह बड़े मज़े से एक द्वीप से दूसरे द्वीप में गया होगा और कई बन्दरगाहों का चक्कर काटकर अपने तीनों जहाज़ों के साथ वापस स्पेन लौट आया होगा।

किन्तु नहीं, हुआ सब कुछ इसके विपरीत ही! मैगेलान और उसके साथियों को अभी बहुत-सी विपत्तियाँ झेलनी थीं। वे सारी विपत्तियाँ उन्होंने मोल भी खुद ही लीं। उनकी मुसीबतों में प्रकृति का ज़रा भी हाथ न था। उन्होंने झटपट और गर्म-गर्म हलुआ हड़पना चाहा। वे लालच के शिकार हुए। उन्होंने चाहा कि उस प्रदेश पर जल्दी से अधिकार प्राप्त कर लें।

मैगेलान ने फ़िलिपाइन द्वीप-समूह के छोटे-छोटे राजाओं के आपसी झगड़ों में हस्तक्षेप किया – उसने उन लोगों को यूरोपीय शस्त्रों का बल दिखाकर डराना-धमकाना चाहा। मैगलान ने कवचों से सुसज्जित साठ योद्धाओं के साथ मतान द्वीप के हज़ार आदिवासियों से मोर्चा लिया – ये आदिवासी तो केवल तीर कमान और बर्छी-भालों से ही लैस थे। मैगेलान इसी युद्ध में काम आया।

इस प्रकार यह विख्यात समुद्री नाविक अपने जीवन का महान कार्य पूरा किये बिना ही चल बसा।

मैगेलान और उसके बहुत-से साथियों के मर जाने के बाद बचे हुए स्पेनी नाविक एशिया और आस्ट्रेलिया के बीच के समुद्र में फैले हुए द्वीपों में काफ़ी अर्से तक भटकते रहे। अब उनके पास केवल दो जहाज़ – 'ट्रीनीडाड' व 'विक्टोरिया' – ही बच रहे थे। जीर्ण-शीर्ण 'कन्सेप्शियन' को उन्हें इसलिए जला देना पड़ा, कि वह कहीं वहाँ के निवासियों के हाथ में न पड़ जाये।

परन्तु बाद में उन्हें एहसास हुआ कि 'ट्रीनीडाड' भी बुरी तरह जर्जर हो चुका है और यूरोप के लम्बे सफ़र के लिए बहुत दिनों तक न टिक सकेगा। अतएव उन लोगों ने 'ट्रीनीडाड' को मरम्मत के लिए छोड़ देने का निश्चय किया। अब कप्तान सेबास्तियन डेल कानो की कमान में सैंतालिस नाविक 'विक्टोरिया' जहाज़ में स्पेन की तरफ़ रवाना हुए। बचे हुए नाविकों में कप्तान सेबास्तियन डेल कानो ही सबसे अधिक कुशल था।

यहाँ हम यह भी बता देना चाहते हैं कि 'ट्रीनीडाड' कभी भी अपने देश वापस न पहुँच सका – वहीं द्वीप-समूह में काफ़ी समय तक भटकने के बाद वह जहाज़ लगभग अपने पूरे दल के साथ नष्ट हो गया और अन्त में केवल चार ही आदमी स्पेन लौट सके।

'विक्टोरिया' में काफ़ी खाद्य-सामग्री और काफ़ी मात्रा में मीठा जल जुटाया गया। फिर यह जहाज़ अपने देश के लिए , अपनी आख़िरी मंज़िल के लिए रवाना हुआ।

यह यात्रा बहुत ही भयानक सिद्ध हुई। खाद्य-सामग्रियाँ ख़राब हो गईं और पानी सड़ गया। जहाज़ पर 26 टन मसाले थे, उस समय के अनुसार उनका मूल्य बहुत ही अधिक था। स्पेनियों ने ये मसाले पूर्वी समुद्रों के द्वीपों में वस्तुओं की अदला-बदली करके प्राप्त किये थे। परन्तु मसाले ज्यों के त्यों खाये नहीं जा सकते। उन्हें तो खाने-पीने की चीज़ों में ही मिलाया जा सकता है। पर इनके पास खाद्य-सामग्री ही कहाँ थी।

'विक्टोरिया' अपने देश के सेवील्या नामक बन्दरगाह में, 8 सितम्बर 1522 को वापस पहुँचा। उसके डेक पर लहराते हुए स्पेनी झण्डे के नीचे केवल अठारह लोग ही खड़े थे। इस प्रकार पहला संसार-भ्रमण बारह दिन कम, तीन बर्षों तक जारी रहा।

स्पेनी सौदागर तो बहुत ही खुश हुए। खुश होते क्यों न? यह जहाज़ 26 टन मसाले जो लाया था! उन्हें उन पाँचों जहाज़ों की क़ीमत और यात्रा के सारे ख़र्च से अधिक रक़म इन मसालों से वसूल हुई।

यह सच है कि इस यात्रा में एक सौ साठ से अधिक नाविक तथा अफ़सर मरे, पर सौदागरों को इससे क्या? उन्हें इसका ज़रा भी दुख न हुआ। उन्हें तो उनके लिए एक पाई भी न ख़र्च करनी पड़ी थी।

इस प्रकार मैगेलान की यह विख्यात यात्रा समाप्त हुई।

पहली बार स्पष्टतः और निर्विवाद रूप से यह सिद्ध हुआ कि पृथ्वी गोल है और इसके चारों ओर चक्कर काटा जा सकता है।

हमारे लिए इसकी कल्पना तक करना कठिन है कि मैगेलान के समकालीन लोगों पर इस आश्चर्यजनक खोज का कितना महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा होगा।

संसार के मानचित्र पर तनिक दृष्टि डालो। यूरोप-निवासी, कोलम्बस के पहले विशाल अमेरिकी महाद्वीप के अस्तित्व के विषय में नहीं जानते थे। और मैगेलान के समय तक वे प्रशान्त महासागर के असली विस्तार की कल्पना न कर सके थे।

मानचित्र से अमेरिका और प्रशान्त महासागर को हटा दो। अब देखो क्या पृथ्वी बहुत बड़ी रह गयी? और हाँ, 450 वर्ष पूर्व कोलम्बस व मैगेलान की विख्यात यात्राओं के पहले लोग पृथ्वी को ऐसा ही समझते थे।

महान पोलिश खगोलविज्ञानी कॉपरनिकस

कोलम्बस, मैगेलान और दूसरे समुद्री नाविकों की महान यात्राओं ने पृथ्वी के मानचित्र की शक्ल बदल दी।

अब दुनिया के सामने नये-नये और बड़े-बड़े महाद्वीप और देश थे। लोगों के आश्चर्य का अब कोई ठिकाना न था। 'बाइबल' में इनके बारे में एक शब्द भी न कहा गया था।

उन्हीं वर्षों में संसार की रचना के विषय में नये सिद्धान्तों की उत्पत्ति हुई। इन सिद्धान्तों की रचना की, पोलिश नगर तोरून में पैदा हुए निकोलाई कॉपरनिकस ने, जो पादरी-समिति का सदस्य था।

यह भला कैसे सम्भव हुआ कि कॉपरनिकस ने पादरी होते हुए भी साहस के साथ संसार की सृष्टि के विषय में चर्च के कथन के विरुद्ध नये सिद्धान्तों की रचना की?

पुराने ज़माने में धर्म-सेवियों ने एक पादरी-समुदाय बना रखा था और बाक़ी बचे हुए सब लोग लौकिक समुदाय वाले कहे जाते थे। उस समय विशेषकर ऐसे ही लोगों को शिक्षा दी जाती थी जो पादरी बनने को तैयार होते थे।

वे लोग लिखना-पढ़ना सीखते थे। उनके लिए धार्मिक किताबों के अनुसार ही गिरजाघर का कार्य करना आवश्यक था और भविष्य में उन्हें, पादरी व बिशप के रूप में, धर्म-सेवा से सम्बन्धित कार्यों के लिए ख़त-चिट्ठियाँ लिखने की भी आवश्यकता होती थी। जब तक किताबों की छपाई प्रारम्भ न हुई थी,

निकोलाई कॉपरनिकस (1473-1543)

मठवासी, ईसाई धर्म सम्बन्धी किताबों की नक़ल हाथ से तैयार करते थे।

लौकिक समुदाय के लोगों में पढ़ने-लिखने वालों की संख्या बहुत कम थी। अक्सर ऐसा भी होता था कि सम्राट व राजा तक भी केवल अपने हस्ताक्षर ही कर सकते थे और पढ़ना-लिखना नहीं जानते थे। पादरी-समुदाय के लोग उनका कार्य भी करते थे।

अतएव विज्ञान का अध्ययन करने की इच्छा रखने वालों को पादरी-समुदाय में शामिल होना ही पड़ता था। नानबाई का बेटा निकोलाई कॉपरनिकस भी इस समुदाय में शामिल हुआ। उसका चाचा एक कैथोलिक बिशप था। उसने उसका पालन-पोषण किया और उसी ने अपने इस भतीजे को बहुत वर्षों तक शिक्षा प्राप्त करने के लिए इटली भेज दिया। धार्मिक विषयों के अलावा कॉपरनिकस ने चिकित्सा तथा इंजीनियरिंग के विषयों का भी अध्ययन किया। वह बहुत ही कुशल चिकित्सक तथा इंजीनियर था।

कॉपरनिकस को अपनी जन्मभूमि पोलैण्ड से बड़ा ही प्रेम था। पादरी होते हुए भी उसने जर्मनी के विरुद्ध युद्धों में भाग लिया। इंजीनियरिंग-कला में कुशल कॉपरनिकस दुर्गों की मोर्चाबन्दी करता था और इन दुर्गों की रक्षा में लगे हुए दलों का वह नेता था।

कॉपरनिकस का बहुत-सा समय और शक्ति धर्म-कार्यों में लग जाते थे। ग़रीब मरीज़ों की चिकित्सा में भी उसका काफ़ी समय ख़र्च होता था।

किन्तु कॉपरनिकस को सायंकाल और रात्रि में कुछ समय मिलता था और इस समय का उपयोग उसने अपने मनपसन्द कार्य अर्थात् खगोलविज्ञान के अध्ययन के लिए किया।

सदियों पहले खगोलविज्ञानी का कार्य आज जैसा बिल्कुल नहीं था। आज तो खगोलविज्ञानियों के पास बड़ी-बड़ी दूरबीनें और ऐसे टेलीस्कोप हैं, जिनके द्वारा आकाश-मण्डल का पर्यवेक्षण आसानी से किया जा सकता है।

अब तो आकाश के मनचाहे क्षेत्र का फ़ोटो-चित्र लिया जा सकता है। इन चित्रों में उस क्षेत्र के टेलीस्कोप द्वारा नज़र आने वाले और न नज़र आने वाले सभी तारे देखे जा सकते हैं।

परन्तु कॉपरनिकस के समय में आकाश का पर्यवेक्षण सिर्फ़ आँखों से करना पड़ता था।

ग्रहों तथा तारों का निरीक्षण करने के लिए आकाश-मण्डल में उनकी स्थिति पृथ्वी के मानचित्र पर

सन् 1520 में बनाये गये इस पुराने चित्र में उस समय के ज्योतिषविज्ञानी का कमरा दिखाया गया है।

किसी नगर की भाँति निश्चित करनी पड़ती है। इसके लिए खगोलविज्ञानी आकाश-मण्डल के मानचित्र पर पृथ्वी के मानचित्रों की भाँति डिग्रियों का जाल खींचते हैं।

पुराने समय में आकाश में तारों की स्थिति का निश्चय करने के लिए बड़े ही सरल यंत्रों का प्रयोग होता था, जैसे कि लकड़ी का दो तीरों वाला बहुत बड़ा प्रॉट्रैक्टर। इनमें से एक तीर क्षितिज-रेखा की दिशा में स्थिर रहता था और दूसरा तारे की ओर घूम सकता था। इन तीरों के बीच का कोण क्षितिज-रेखा के ऊपर तारे की ऊँचाई ज़ाहिर करता था। उन दिनों में मिनट और सेकण्ड बताने वाली घड़ी भी नहीं थी। उन दिनों समय का ज्ञान बालू अथवा पानी वाली घड़ी से होता था।

उन दिनों वैज्ञानिक कार्य के लिए विशेष कला की आवश्यकता थी और इससे भी कहीं अधिक लगन व सहनशीलता की। तभी तो इस प्रकार के दोषपूर्ण यन्त्रों द्वारा कठिन वैज्ञानिक कार्य किया जा सकता था।

कॉपरनिकस फ्रोमबोर्क नगर के गिरजाघर के बुर्ज़ पर हर रात जा बैठता। वह बरसों तक यही करता रहा। रात चाहे गर्म होती चाहे बर्फ़ की तरह जमा देने वाली ठण्डी।

खगोलविज्ञान-कार्य के बहुत वर्षों में कॉपरनिकस ने तारों तथा ग्रहों के अत्यधिक पर्यवेक्षण किये। इन्हीं पर्यवेक्षणों ने महान स्लाव खगोलविज्ञानी को विश्वास दिलाया कि विश्व के बारे में टोलेमी के सिद्धान्त
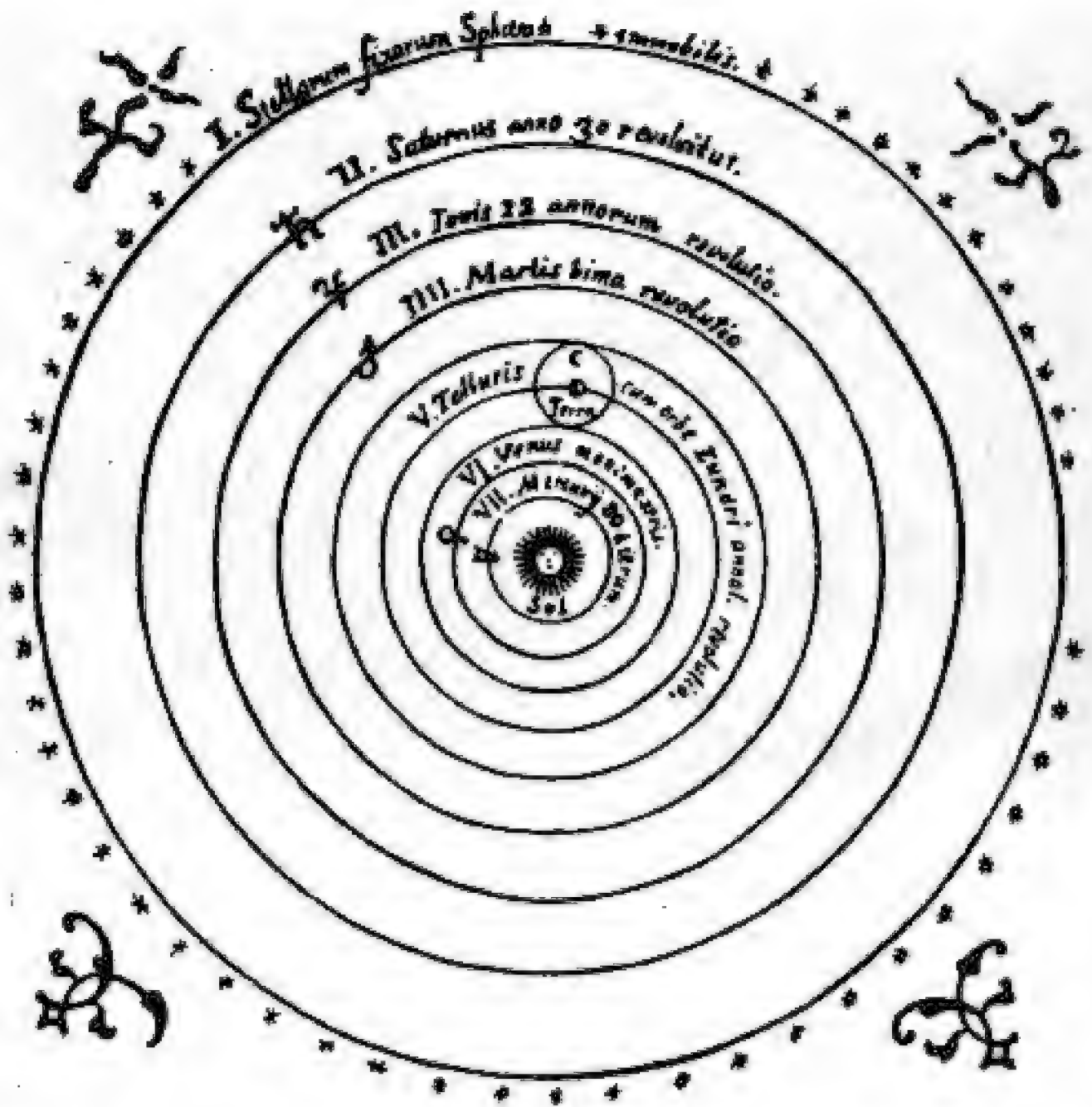
कॉपरनिकस के अनुसार विश्व का रूप। ग्रहों के नाम लैटिन भाषा में लिखे हुए हैं जो उस समय अन्तरराष्ट्रीय भाषा थी।

ठीक नहीं हैं। इन सिद्धान्तों में कॉपरनिकस को केवल एक ही बात ठीक मालूम जान पड़ी – वह यह कि चन्द्रमा सचमुच पृथ्वी के चारों ओर चक्कर काटता है। परन्तु बुध, शुक्र, मंगल तथा दूसरे ग्रह पृथ्वी के नहीं, सूर्य के चारों ओर घूमते हैं। और स्वयं पृथ्वी? दूसरे ग्रहों के बीच, पृथ्वी क्या अपवाद है? बेशक नहीं, पृथ्वी भी सूर्य के चारों ओर घूमती है।

इस प्रकार कॉपरनिकस के सिद्धान्तों के अनुसार यह पूर्णत: स्पष्ट हो गया कि पृथ्वी को विश्व का एक अचल केन्द्र न समझना चाहिए। बाक़ी विश्व की रचना इस केन्द्र के लिए हुई हो, ऐसा मानना भी

ग़लत होगा।

स्थिर तारों के बारे में कॉपरनिकस ने ठीक ही निर्णय किया कि हमारे सौर जगत से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। कॉपरनिकस ने निर्णय किया कि पृथ्वी से तारों की दूरी की तुलना में सूर्य की दूरी तुच्छ है। पृथ्वी के चारों ओर तारों का घूमना केवल मालूम भर पड़ता है – वह इसलिए कि पृथ्वी अपनी धुरी पर 24 घंटे में पूरा एक चक्कर लगाती है। अपनी धुरी या पृथ्वी के इस प्रकार चक्कर काटने के कारण सूर्य और दूसरे ग्रह पृथ्वी के चारों ओर घूमते हुए मालूम पड़ते हैं।

कॉपरनिकस ने लगभग चालीस वर्ष की उम्र में ये अपनी महान खोजें कीं। परन्तु कॉपरनिकस ने अत्याचार के डर से बहुत वर्षों तक अपनी ये खोजें गुप्त रखीं। केवल अपने घनिष्ठ मित्रों में ही उसने इनकी चर्चा की।

अपने जीवन के अन्तिम समय में ही कॉपरनिकस ने अपनी कृति छपने के लिए दी। तभी वह इतनी हिम्मत कर पाया। वह भी दोस्तों के बहुत मजबूर करने पर। कॉपरनिकस की किताब सन् 1543 में निकली। कहा जाता है कि इस किताब की पहली प्रति कॉपरनिकस के पास उस समय लायी गयी, जब वह अपने जीवन की आख़िरी घड़ियाँ गिन रहा था।

पादरी आरम्भ में तो कॉपरनिकस के सिद्धान्तों को समझ न पाये। उस महान खगोलविज्ञानी ने अपनी कृति जान-बूझकर ऐसी कठिन भाषा में लिखी थी कि अनभिज्ञ पादरी उसे अच्छी तरह समझ न सकें।

कॉपरनिकस की किताब बहुत बरसों तक स्वतन्त्रतापूर्वक पढ़ी जाती रही। उस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। कॉपरनिकस के सिद्धान्त धीरे-धीरे और अप्रत्यक्ष रूप में सारे यूरोप में फैलते रहे।

किन्तु बाद में, बड़े पादरी विश्व के नये सिद्धान्तों का वास्तविक अर्थ समझ ही गये। फिर क्या था, वे कॉपरनिकस के इन सिद्धान्तों के विरुद्ध उठ खड़े हुए, इन सिद्धान्तों से तो ईसाई धर्म की नींव ही हिल जाती थी। 'बाइबल' में तो यह बताया गया था कि पृथ्वी ही विश्व का केन्द्र है, मनुष्य पृथ्वी का स्वामी है और सूर्य, चन्द्रमा और तारे मनुष्य के लिए ही बनाये गये हैं...

परन्तु एकाएक यह मालूम हुआ कि पृथ्वी विश्व का केन्द्र बिल्कुल नहीं है। यह केवल एक छोटा ग्रह है, जो दूसरे ग्रहों की भाँति सूर्य के चारों ओर चक्कर काटता है। इसके अतिरिक्त पृथ्वी स्वयं अपनी धुरी पर भी लट्टू की तरह चक्कर काटती रहती है।

अब यह भी ज्ञात हुआ कि बुध, शुक्र तथा दूसरे ग्रह बिल्लौरी शीशेनुमा आकाश-मण्डल में केवल छोटे-छोटे प्रकाश-बिन्दु ही नहीं हैं। वे भी पृथ्वी जैसे ग्रह हैं। उनका अपना आकाश और अपना पाताल भी है... उस समय तो खगोलविज्ञानियों को यह मालूम नहीं था कि दूसरे ग्रह कैसे बने हैं, और वे सोचते थे कि उन पर भी हमारी पृथ्वी जैसा ही जीवन है। किन्तु पृथ्वी के पहले मनुष्यों – आदम और हौवा – द्वारा तो दूसरे ग्रहों पर मनुष्य उत्पन्न हो नहीं सकते थे। कारण कि 'बाइबल' के कथनानुसार आदम और हौवा को तो ईश्वर ने इस पृथ्वी पर ही पैदा किया था।

बड़े पादरी बहुत ही भयभीत हुए – अगर ईश्वर में आस्था रखने वालों ने कॉपरनिकस के सिद्धान्तों पर ध्यान दिया, तो वे 'बाइबल' की कोरी कल्पना और निस्सारता समझ जायेंगे। तब लोगों पर से धर्म का राज्य ख़त्म हो जायेगा।

गियोर्दानो ब्रूनो

पुराने समय में इटली से स्वीट्ज़रलैण्ड जाना कठिन था। इन दोनों पड़ोसी देशों के बीच आल्पस पर्वत ऊँची दीवार बनकर जो खड़े थे। पर्वतों की घाटियों में सँकरी व ख़तरनाक पगडण्डियाँ थीं।

धनी लोग खच्चरों द्वारा पहाड़ों पर यात्रा करते थे और उस जगह रहने वाले कुशल मार्गदर्शक उन्हें रास्ता दिखाते थे। ग़रीब लोग पैदल यात्रा करते थे। अक्सर वे मार्ग भूल जाते, बर्फ़ की ठण्ड में जम जाते अथवा खड्डों में गिरकर नष्ट हो जाते। ऐसी दुर्घटनाएँ जाड़े के भयानक बर्फ़ीले तूफ़ानों के दिनों में विशेष रूप से होती थीं।

इसलिए कि वे अच्छी भाँति प्रकृति और रास्ते में लूट लेने वाले डाकुओं का मुक़ाबला कर सकें, यात्री काफ़ी संख्या में एक साथ इकट्ठे होकर घोड़ों और पैदल चलने वालों का एक पूरा कारवाँ बनाकर चलते थे।

सन् 1576 के जाड़े में इसी भाँति का एक कारवाँ स्वीट्ज़रलैण्ड जा रहा था। इसी में एक इतालवी नवयुवक मठवासियों के पहनावे में शामिल हुआ।

सरायों में वह अपने को दूसरे साथियों से दूर रखता, अँधेरे कोनों में बैठा रहता और आम बातचीत में भाग न लेता। यात्रा के ध्येय के विषय में वह संक्षेप में ही उत्तर देता। उसकी बात स्पष्ट रूप से समझमें न आती और बातचीत के समय वह अपने चेहरे को मठवासियों वाले चोगे से ढँक देता।

मार्ग में यह नवयुवक मठवासी सबसे अलग-अलग और अकेला ही चलता। यह बिल्कुल स्पष्ट था कि वह अपने को पुलिसवालों और दूसरे मठवासियों के साथ हिलने-मिलने से बचाता है।

जिज्ञासु लोगों के लिए मौन रहने वाला यह इतालवी, यात्रा के अन्त तक एक पहेली बना रहा। मगर अब हम तुम्हें बताते हैं उसका रहस्य।

नवयुवक मठवासी को गियोर्दानो ब्रूनो कहते थे। वह अपनी मातृभूमि इटली से भाग रहा था। जानते हो क्यों? इसलिए कि उसके विचार बहुत स्वतन्त्र थे। उसे डर था कि इसके लिए उसे कठोर दण्ड दिया जायेगा। तुम जानना चाहोगे कि कैसे थे उसके "स्वतन्त्र" विचार? वह ईसाई धर्म के सिद्धान्तों के विरुद्ध सोचता था। यही थे उसके "स्वतन्त्र" विचार।

गियोर्दानो ब्रूनो का जन्म सन् 1548 में इटली के छोटे नगर नोला में हुआ था। वह शीघ्र ही अनाथ हो गया और इसीलिए उसका पालन मठ में हुआ। तुम्हें मालूम ही है कि प्राचीन काल में जो पढ़ना चाहता था, उसे मठ में और पादरियों की शरण में जाना पड़ता था। सभी प्रकार की शिक्षा में ईसाई धर्म की छाप रहती थी। इतना ही नहीं, बालकों को सबसे पहले पढ़ायी भी जाती थीं ईसाई धर्म की किताबें ही।

कैथोलिक मठवासी कई संघों में विभाजित थे। सबसे धनी तथा शक्तिशाली संघ था 'डोमिनीकन'। ब्रूनो को इसी संघ में शिक्षा मिली थी। उसके ज्ञान तथा प्रखर बुद्धि के कारण उसे संघ का सदस्य बना लिया गया और बाद में उसे पादरी का पद मिला।

और भी प्रश्न उठता है : जबकि न सूर्य था, न चन्द्रमा तो सृष्टि के पहले तीन दिन किस प्रकार गिने गये?

पादरी इन अटपटी और बेतुकी बातों की ओर से आँखें मूँदे रहते थे। जानते हो वे कहते क्या थे? वे कहते थे – "ईसामसीह के बाद हमें किसी ज्ञान-विज्ञान की आवश्यकता नहीं है!" टॉलेमी के सिद्धान्त पादरियों को इसलिए पसन्द आये कि वे 'बाइबल' के बहुत विरुद्ध नहीं थे। और जब यह स्पष्ट हो गया कि टॉलेमी के सिद्धान्त बिल्कुल ग़लत हैं, पादरी तो तब भी उनका अनुसरण और समर्थन करते रहे। जो कोई उनका विरोध करता उस पर तरह-तरह के ज़ुल्म ढाये जाते।

ईसाई पादरी भोले-भाले लोगों को यह कहकर डराते-धमकाते थे कि पृथ्वी के गर्भ में कुछ विशेष गहरे गड्ढे हैं। इन्हीं गड्ढों में नरक है। और कहते कि यहीं पापियों को तरह-तरह की यातनाएँ और कठोर दण्ड दिये जाते हैं। पादरियों ने स्वर्ग बताया नौवें आकाश पर। अरस्तू के अनुसार वहाँ "प्रथम चालक" था। उन्होंने कहा कि वहीं ईश्वर, देवदूत और महात्मा रहते हैं।

उन्होंने इन देवदूतों के लिए आकाश में कुछ काम भी खोज दिया। पादरी समुदाय ने यह शिक्षा देनी शुरू की कि देवदूत ग्रहों को चलाते हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी के बीच तो ज. फ़ोन्टान की 'संसार में पायी जाने वाली सभी प्राकृतिक वस्तुओं की और आकाश को चलाने वाले देवदूतों की किताब' नामक कृति भी निकली।

पादरियों का सिर्फ़ एक ही विषय पर आपसी मतभेद था। वह यह कि देवदूत ग्रहों को चलाते किस प्रकार हैं?

कुछ धर्म-लेखकों ने विश्वास दिलाया –

"देवदूत प्रकाशग्रहों को अपने कन्धों पर उसी तरह ले जाते हैं, जैसे कि किसान आटे की चक्की पर गेहूँ का बोरा ढोकर ले जाता है।"

दूसरों का यह कहना था –

"नहीं, देवदूत आकाश में प्रकाशग्रहों को उसी प्रकार लुढ़काते हुए ले जाते हैं, जैसे कि मज़दूर बीयर के ढोल को तहख़ाने में।"

"नहीं, ये दोनों ही ग़लत हैं। वे न किसान की तरह ढोते हैं और न मज़दूर की तरह धकेलते ही हैं।" इस विवाद में भाग लेते हुए तीसरे दल के पादरी कहते – "देवदूत अपने पीछे प्रकाशग्रहों को उसी प्रकार खींचते हैं, जैसे घोड़ा गाड़ी को।..."

मठवासी वैज्ञानिक रिशिओली तारों और ग्रहों का निरीक्षण करता रहता था। उसने लिखा – "तारे को चलाते हुए देवदूत बड़ी सावधानी से यह देखता रहता है कि उसके दूसरे देवदूत-मित्र क्या कर रहे हैं। वे अपनी-अपनी राह पर इस तरह सँभल-सँभल कर चलते हैं कि कहीं आपस में टकरा न जायें।"

किन्तु गियोर्दानो युवावस्था से ही धर्म के सिद्धान्तों पर विचार करने लगा था। इन सिद्धान्तों में से उसे बहुत-से ग़लत लगते थे।

धीरे-धीरे सन्देह ने गियोर्दानो के हृदय में घर कर लिया।

ब्रूनो की दृष्टि एक दिन अचानक ही मठ के पुस्तकालय में दूर रखी हुई आलमारी की एक किताब पर जा पड़ी। धूल से अटी पड़ी यह किताब चमड़े की जिल्दवाली थी। चूहों ने इसे जहाँ-तहाँ काट डाला था। नवयुवक पादरी ने इस किताब को खोलकर देखा। उसने लैटिन भाषा में लिखा उसका शीर्षक पढ़ा – 'आकाश के गोलों के घूमने के विषय में तोरूनवासी निकोलाई कॉपरनिकस की किताब'।

गियोर्दानो ब्रूनो
(1548-1600)

कॉपरनिकस की इस विख्यात कृति की कुछ बातें अस्पष्ट रूप में ब्रूनो तक पहुँच चुकी थीं। और अब वह बहुमूल्य कृति उसके सामने थी! अब वह इस किताब को खुद पढ़ेगा! कॉपरनिकस के सिद्धान्तों के बारे में वह खुद जानकारी हासिल करेगा। अब उसे मठवासियों द्वारा बतायी गयी अस्पष्ट बातों पर ही सन्तोष न करना होगा।

गियोर्दानो ने चुपके-चुपके इस किताब का अध्ययन किया। उसने इसे पुस्तकालय के किसी शान्त व एकान्त कोने में अथवा अपने निजी कमरे में ताला बन्द करके पढ़ा। इस किताब के नये सिद्धान्तों की सरलता तथा स्पष्टता से वह आश्चर्यचकित रह गया। वह अपने उत्साह और जोश को दबा न पाया और किसी मठवासी के सामने उसने उस किताब की प्रशंसा कर ही दी। उस मठवासी ने उसी समय ब्रूनो के शब्द डोमिनीकन संघ के संचालकों के कान में जा डाले।

नवयुवक मठवासी ब्रूनो का कठोर दण्ड पाना अनिवार्य हो गया। और तब वह पादरी का पद छोड़कर अपनी मातृभूमि से भाग खड़ा हुआ। मठवासी का पहनावा उसने इसलिए धारण कर रखा था कि उस देश में हज़ारों मठवासी थे, लोग उन्हें श्रद्धा व भय की दृष्टि से भी देखते थे। यह पहनावा ब्रूनो का सबसे अच्छा रक्षक था।

गियोर्दानो ब्रूनो सकुशल बच निकला। वह अपनी मातृभूमि से बहुत वर्षों तक अलग रहा। ब्रूनो जीवन भर कॉपरनिकस के सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए संघर्ष करता रहा। ब्रूनो ने कॉपरनिकस के सिद्धान्तों को, एक परिश्रमी तथा भीरु शिष्य की भाँति दुहराया ही नहीं, बल्कि उन्हें और भी अधिक विस्तृत किया।

स्वयं कॉपरनिकस की तुलना में उसने संसार को कहीं अधिक अच्छी तरह समझा।

गियोर्दानो ब्रूनो ने बताया कि न केवल पृथ्वी ही, बल्कि सूर्य भी अपनी धुरी पर घूमता है। ब्रूनो की मृत्यु के बहुत वर्षों बाद ही यह तथ्य प्रमाणित हुआ।

ब्रूनो ने बताया कि बहुत-से ग्रह सूर्य के चारों ओर घूमते हैं और यह कि मनुष्य नये तथा अभी तक अनजाने कई अन्य ग्रहों का भी पता लगा सकता है। उसकी यह बात सच भी निकली। ब्रूनो की मृत्यु के लगभग दो सौ वर्ष बाद ऐसे अनजाने ग्रहों में सबसे पहले यूरेनस का, और कुछ समय बाद, नेप्चून और प्लूटो ग्रहों का तथा दूसरे सैकड़ों छोटे-छोटे ग्रहों का पता लगा। इन्हें एस्टेरॉयड कहते हैं। इस प्रकार इस प्रतिभाशाली इतालवी की भविष्यवाणी सोलह आने सच साबित हुई।

कॉपरनिकस दूर के तारों की ओर कम ध्यान देता था। परन्तु ब्रूनो ने निश्चय के साथ कहा कि हर तारा हमारे सूर्य जैसा ही विशाल सूर्य है। उसने यह भी कहा कि ग्रह हर तारे के चारों ओर घूमते हैं। हम केवल उन्हें देख नहीं पाते हैं, क्योंकि वे हमसे बहुत ही दूर हैं। ब्रूनो ने यह भी कहा कि हरएक तारा अपने ग्रहों के साथ एक वैसा ही विश्व है, जैसा कि हमारा सौर जगत, और ब्रह्माण्ड में ऐसे विश्वों की संख्या अनन्त है।

गियोर्दानो ब्रूनो ने बताया कि ब्रह्माण्ड के सभी संसारों की अपनी स्वयं की उत्पत्ति और अपना स्वयं का अन्त है और वे बराबर बदलते रहते हैं। यह विचार बहुत ही साहसपूर्ण था, क्योंकि ईसाई धर्म के अनुसार तो संसार अपरिवर्तनशील है और वह सदा वैसा ही बना रहता है जैसा कि ईश्वर ने इसे बनाया है।

ब्रूनो बहुत प्रतिभाशाली व्यक्ति था। उसने अपने बुद्धिबल द्वारा ही वह बात समझी जिसे खगोलविज्ञानी बाद में दूरबीनों और टेलीस्कोपों की सहायता से जान पाये। आजकल तो हमारे लिए यह सोचना भी कठिन है कि ब्रूनो ने खगोलविज्ञान में कितनी बड़ी क्रान्ति कर दी थी। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने किसी बन्दी को कारावास से बाहर निकालकर उसे तंग व अँधेरी कोठरी की जगह एक विचित्र व अनन्त संसार का सुन्दर दृश्य दिखाया था।

ब्रूनो के कुछ समय बाद एक अन्य खगोलविज्ञानी केपलर ने यह स्वीकार किया कि इस महान व प्रसिद्ध इतालवी वैज्ञानिक की कृतियाँ पढ़कर उसका सिर चकराने लगता था। इस कल्पना से कि शायद वह इस अन्तरिक्ष में निराधार घूमता रहता है, कि इसका न कोई केन्द्र और न कोई आरम्भ और अन्त ही है वह एक गुप्त आतंक से आतंकित हो उठता था।

पादरी गियोर्दानो ब्रूनो को अपना जानी दुश्मन मानने लगे। ब्रूनो के ये सिद्धान्त कि बसे हुए संसारों की संख्या अनन्त है, और ब्रह्माण्ड का कोई आरम्भ और कोई अन्त नहीं है, विश्व की सृष्टि के विषय में तथा पृथ्वी पर ईसामसीह के आने के विषय में 'बाइबल' के कथनों को मटियामेट करने के लिए काफ़ी थे। 'बाइबल' के यही कथन तो ईसाई धर्म के आधार-स्तम्भ थे। पादरियों ने गियोर्दानो ब्रूनो के विरुद्ध जो अभियोग-पत्र तैयार किये उनमें पूरे एक सौ तीस पैराग्राफ़ थे।

पादरियों ने इस महान वैज्ञानिक को "ईश्वर को गाली देने वाला" कहा और वे बराबर प्रयत्न करते रहे कि सभी जगहों के शासक ब्रूनो को अपने देशों से निकाल दें। किन्तु ब्रूनो जितना ही अधिक मारा-मारा फिरता रहा, उतना ही अधिक वह अपने साहसपूर्ण सिद्धान्तों का प्रचार भी करता रहा।

स्वदेश से अलग किया हुआ ब्रूनो अपने खिली धूप के देश इटली के लिए बराबर आतुर रहता था। उसे मार डालने के लिए उसके दुश्मनों ने ब्रूनो की इस देश प्रेम की भावना से लाभ उठाया।

कुलीन तथा नवयुवक इतालवी जियोवानी मोचेनीगो ने यह ढोंग रचा कि उसे ब्रूनो की उन अनगिनत कृतियों में विशेष रुचि है जो यूरोप के भिन्न-भिन्न नगरों में छप चुकी हैं।* उसने ब्रूनो को लिखा कि वह उसका शिष्य बनना चाहता है और यह भी कहा कि बदले में वह उसे उदारतापूर्वक पुरस्कृत करेगा।

निर्वासित ब्रूनो के लिए स्वदेश लौटना बहुत ख़तरनाक था, किन्तु मोचेनीगो ने कपटपूर्वक उसे आश्वासन दिलाया कि वह अपने शिक्षक को बैरियों से बचा लेगा। ब्रूनो विदेशों में भटक-भटककर ऊब चुका था। उसने कपटी मोचेनीगो पर विश्वास कर लिया।

महान वैज्ञानिक यह न जानता था कि उसे धोखा देकर इटली में वापस बुलाने की यह नीच योजना कैथोलिक चर्च के 'न्यायालय' द्वारा बनायी गयी है। स्पेन और इटली में 'इन्क्विज़िशन' नामक भयानक न्यायालय था। यह धर्म का विरोध करने वालों पर अत्याचार करता था। 'इन्क्विज़ितरों' ने, अर्थात् उपरोक्त संस्था के न्यायाधीशों ने, इस संस्था के अस्तित्व काल में लाखों बेगुनाहों की जान ली थी। ब्रूनो भी इसका एक ऐसा ही बेगुनाह शिकार हुआ।

गियोर्दानो ब्रूनो इटली के वेनिस नगर में पहुँचा और मोचेनीगो को पढ़ाने लगा। मोचेनीगो ने वैज्ञानिक से यह प्रतिज्ञा करवा ली थी कि जाने का विचार बना लेने पर वह मोचेनीगो से विदा अवश्य लेगा। यह भी एक चाल थी। मोचेनीगो को यह भय था कि यदि कहीं ब्रूनो को 'इन्क्विज़िशन' की योजना का पता चल गया तो फिर वह अपनी युवावस्था की भाँति, अवश्य ही चुपके से भाग खड़ा होगा। परन्तु यदि खगोलविज्ञानी उससे विदा लेने आया तो फिर उसे रोकना मुश्किल न होगा।

कुछ महीनों की शिक्षा के बाद मोचेनीगो ने कहा कि ब्रूनो उसे ठीक ढंग से नहीं पढ़ाता है और यह कि वह उससे अपने भेद छिपाता है।

इस आरोप के उत्तर में ब्रूनो ने वेनिस छोड़ देने का निश्चय किया, और मोचेनीगो ने इसकी सूचना 'इन्क्विज़िशन' को दे दी। 23 मई सन् 1592 को इस विख्यात वैज्ञानिक को जेल में डाल दिया गया। उसने जेल में यातनापूर्ण आठ वर्ष बिताये।

वह कोठरी, जिसमें ब्रूनो को रखा गया था, जेल की सीसे की छत के नीचे थी। ऐसी छत के नीचे गर्मियों में असह्य गर्मी और उमस तथा जाड़ों में नमी और ठण्ड रहती। ऐसी कोठरी में बन्दी का जीवन भयानक तथा यातनापूर्ण था – यह तो जैसे तड़पा-तड़पाकर मारने वाली बात थी।

हत्यारों ने गियोर्दानो ब्रूनो को आठ वर्षों तक जेल में क्यों बन्द रखा? इसलिए कि उन्हें आशा थी कि वे इस खगोलविज्ञानी को अपने सिद्धान्त त्याग देने के लिए बाध्य कर सकेंगे। यदि ऐसा हो जाता, तो यह उन सबके लिए एक बड़ी विजय होती। पूरा यूरोप इस विख्यात वैज्ञानिक को जानता था और उसका आदर करता था। यदि ब्रूनो यह घोषणा कर देता कि वह ग़लती पर था और पादरी लोग ठीक थे, तो बहुत-से लोग फिर से विश्व की सृष्टि के विषय में धर्म के कथनों पर विश्वास करने लगते।

---

* जर्दानो ब्रूनो की कृतियों के पहले संस्करणों का सबसे बड़ा संग्रह मास्को में अखिल संघीय लेनिन पुस्तकालय में संगृहीत है। – स.

किन्तु गियोर्दानो ब्रूनो चट्टान की तरह दृढ़ और साहसी व्यक्ति था। पादरी न तो धमकियों और न ही यन्त्रणाओं द्वारा ब्रूनो को विचलित कर पाये। वह दृढ़ता से अपने विचारों की सत्यता को सिद्ध करता रहा।

अन्त में हत्यारों ने उसे प्राणदण्ड देने का निर्णय सुनाया। 'न्यायालय' का निर्णय सुनकर, गियोर्दानो ब्रूनो ने 'इन्क्विजि़तरों' ने शान्तिपूर्वक कहा – "आप दण्ड देने वाले हैं और मैं अपराधी हूँ, मगर अजीब बात है कि कृपा सिन्धु भगवान के नाम पर अपना फ़ैसला सुनाते हुए आपका हृदय मुझसे कहीं अधिक डर रहा है।"

'इन्क्विजि़शन' की यह प्रथा थी कि वह अपना निर्णय इन पाखण्ड भरे शब्दों में सुनाता था –"पवित्र धर्म इस अपराधी को बिना खून बहाये मृत्युदण्ड देने की प्रार्थना करता है।" किन्तु वास्तव में इसका अर्थ होता था भयानक मृत्युदण्ड – यानी जीवित ही जला देना।

17 फ़रवरी, सन् 1600 को गियोर्दानो ब्रूनो को रोम में प्राणदण्ड दिया गया।

जर्दानो ब्रूनो का दहन

अपराधी को प्राणदण्ड के विशेष धूमधाम के साथ ले जाया गया। उसके आगे आगे रक्त की भाँति लाल रंग का झण्डा था। सभी गिरजाघरों में घण्टे बज रहे थे। सैकड़ों पादरी अपने पूरे विशेष पहनावे में मरसिया गाते जा रहे थे। अपराधी पीले रंग के कपड़े पहने था। उन पर काले रंग से अति ही कुरूप व भद्दी शक्ल के शैतानों का चित्र बनाया हुआ था। ब्रूनो के सिर पर एक ऊँची टोपी पहना दी गयी थी जिस पर आग की लपटों में छटपटाते हुए एक मनुष्य का चित्र था। वैज्ञानिक के हाथ और पाँव पर बँधी लोहे की भारी जंजीरें बज रही थीं। हत्यारों ने वैज्ञानिक की ज़बान काट डाली थी, क्योंकि उन्हें भय था कि अन्त समय में भी निर्भीक ब्रूनो जनता के सामने सत्य ही कहेगा।

अपराधी के पीछे बिशप और पादरी तथा पदाधिकारी और रईस चल रहे थे। वे सभी काफ़ी क़ीमती और शानदार पहनावों में थे।

उस मैदान में, जहाँ प्राणदण्ड दिया जाने वाला था, तथा उन सड़कों के किनारे, जहाँ से यह जुलूस धूमधाम से गुजर रहा था, हज़ारों रोम-निवासी इकट्ठे हुए। इस तमाशबीन भीड़ के लिए यह सब कुछ एक ख़ुशी के त्योहार जैसा था। केवल कुछ ही ऐसे लोग थे जिनका हृदय, इस साहसी वैज्ञानिक के भयानक प्राणदण्ड की कल्पना करके काँप उठा था।

प्राणदण्ड के पहले, गियोर्दानो ब्रूनो से एक बार फिर अपने सिद्धान्तों को त्यागने के लिए कहा गया। इसके लिए उसे जीवनदान का वचन भी दिया गया। महान खगोलविज्ञानी ने उपेक्षा के साथ इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया और एक वीर की भाँति चिता में जा बैठा। जब लपटों ने उसे चारों ओर से घेर लिया उस समय भी ब्रूनो के मुँह से एक आह तक न निकली।

वैज्ञानिक तो जल गया, किन्तु पादरी लोग विज्ञान की प्रगति तो फिर भी न रोक सके।

एक वीर शहीद का स्थान, दूसरे अनेक शहीद ले लेते थे।

रोम के उसी मैदान में जहाँ यह महान वैज्ञानिक शहीद हुआ था सन् 1889 में उसका एक स्मारक स्थापित किया गया।

गैलीलिओ गैलिली और आकाश में उसकी आश्चर्यजनक खोज

गियोर्दानो ब्रूनो को जिस वर्ष प्राणदण्ड दिया गया प्रसिद्ध इतालवी खगोलविज्ञानी गैलीलिओ गैलिली ने उसी वर्ष अपने जीवन के छत्तीस वर्ष पूरे किये। गैलीलिओ कॉपरनिकस के सिद्धान्तों को ठीक समझता था किन्तु ब्रूनो के भयानक अन्त ने उसे डरा दिया। अतएव शुरू में उसे विश्व के बारे में कॉपरनिकस के सिद्धान्तों के समर्थन का साहस न हुआ।

ठीक उन्हीं दिनों में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण घटना घटी – दूरबीन का आविष्कार हुआ।

दूरबीन से आकाशमण्डल की जाँच सबसे पहले गैलीलिओ ने ही की। इस इतालवी खगोलविज्ञानी ने आकाश में कॉपरनिकस के सिद्धान्तों की सच्चाई का जीता-जागता अथवा स्पष्ट प्रमाण पाया। गैलीलिओ

ने चन्द्रमा पर पहाड़ और मैदान देखे। उसे मालूम हुआ कि चन्द्रमा एक विस्तृत संसार है जो बहुत पहलुओं में पृथ्वी के समान है।

गैलीलिओ को शुक्र ग्रह केवल एक चमकता हुआ बिन्दु ही नहीं, चन्द्रमा की भाँति चमकता हुआ एक हँसिया-सा दीख पड़ा।

बृहस्पति ग्रह का निरीक्षण तो बेहद दिलचस्प रहा। प्रथम बार ऐसा निरीक्षण गैलीलिओ ने 7 जनवरी 1610 में किया।

खगोलविज्ञानी ने दूरबीन द्वारा – बृहस्पति ग्रह को केवल चमकते हुए एक बिन्दु के रूप में नहीं, एक बड़े गोले के रूप में देखा। इस गोले के समीप आकाश में तीन छोटे-छोटे तारे थे, और 13 जनवरी को गैलीलिओ ने एक चौथे छोटे तारे का भी पता लगाया।

गैलीलिओ गैलीले
(1564-1642)

हो सकता है कि इस पृष्ठ पर दिये हुए चित्र को देखकर तुम आश्चर्य करो कि क्यों गैलीलिओ फ़ौरन ही चारों उपग्रहों का पता न लगा पाया? यहाँ दिये हुए फ़ोटो-चित्र में तो वे काफ़ी साफ़-साफ़ दिखायी दे रहे हैं। किन्तु तुम्हें यह न भूलना चाहिए कि गैलीलिओ की दूरबीन बहुत सशक्त न थी। बाद में उसने जो सबसे अच्छी दूरबीन बनायी, वह वस्तुओं को केवल तीस गुना ही बड़ा कर सकती थी।

ज्ञात हुआ कि ये चारों छोटे तारे न केवल बृहस्पति की गति के साथ ही आकाश में चलते हैं बल्कि यह कि वे इस बड़े ग्रह के चारों ओर चक्कर भी लगाते हैं। इस प्रकार बृहस्पति के चार चन्द्रमाओं का एक साथ पता लगा।

गैलीलिओ की खोज ने वैज्ञानिक जगत में भारी हलचल पैदा कर दी। पदुआन विश्वविद्यालय के
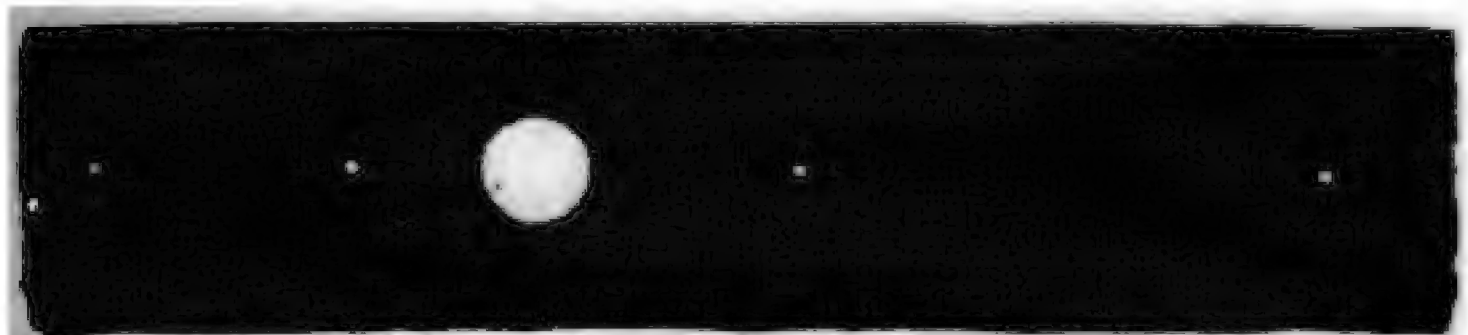
गैलीलिओ ने पहली बार जब दूरबीन से बृहस्पति की ओर देखा तो उसे यह दिखायी दिया।

प्रोफ़ेसर क्रेमोनीनी तो दूरबीन से देखने तक को तैयार न हुए। उन्होंने कहा – "मैं भला क्यों दूरबीन द्वारा देखूँ, जबकि मैं भलीभाँति जानता हूँ कि बृहस्पति के उपग्रह न तो हैं और न ही हो सकते हैं।"

इस प्रकार मूर्खतापूर्ण तर्क-वितर्क द्वारा क्रेमोनीनी ने अपना "कीर्तिध्वज" फहराया।

दूसरे खगोलविज्ञानी कहते थे – "बृहस्पति के उपग्रहों को तो होना ही नहीं चाहिए, क्योंकि लोगों के लिए वे पूर्णतः व्यर्थ हैं।"

एक बिशप ने घोषणा की –

"एक सप्ताह में सात दिन होते हैं; मनुष्य के चेहरे और सिर पर सात छेद हैं – दो आँखें, दो कान, नाक के दो छिद्र और मुँह; इसी प्रकार आकाश में सात ग्रह हैं : चन्द्रमा, बुध, शुक्र, सूर्य, मंगल, बृहस्पति और शनि। यदि मान लिया जाये कि गैलीलिओ ने चार और ग्रह ढूँढ निकाले हैं, तो सब मिलाकर कुछ ग्यारह ग्रह हो जाते हैं और ऐसा होना असम्भव है!"

उसने भी दूरबीन द्वारा देखना अस्वीकार कर दिया।

सभी आपत्तियों और एतराज़ों के बावजूद, खगोलविज्ञानियों को यह मानना पड़ा कि बृहस्पति के उपग्रह हैं और सचमुच हैं।

गैलीलिओ की दूरबीन

आकाश के प्रकाशीय-पिण्डों में से चन्द्रमा का पर्यवेक्षण करना सबसे सरल है। किसी भी चाँदनी रात में किसी एक बहुत ही क्षीण दूरबीन द्वारा भी, हमारी पृथ्वी के सदा साथ रहने वाले उपग्रह को देखना सम्भव है और उसके पर्यवेक्षण से मनुष्य को सदा ही बड़ा आनन्द प्राप्त होता है।

अपनी खोजों पर अविश्वास करने वालों से गैलीलिओ ने कहा –

"आइये और स्वयं अपनी आँखों से देखिये!"

यह खगोलविज्ञानी भलीभाँति जानता था कि आकाश के विषय में वास्तविक ज्ञान फैलाने का सबसे अच्छा तरीक़ा है अधिक से अधिक लोगों को स्वयं निरीक्षण करने के लिए आमंत्रित करना। रात्रि के समय गैलीलियो के पास उसके मित्र, जान-पहचान वाले व्यक्ति तथा ऐसे अनजान लोग भी इकट्ठे हो जाते थे, जो स्वयं अपनी आँखों से चन्द्रमा को देखना चाहते थे। इन पर्यवेक्षणों का लोगों के मन पर गहरा असर पड़ता था।

वे चन्द्रमा पर विशाल तथा धुँधले विस्तार देखते थे। गैलीलिओ ग़लती से इन्हें महासागर और समुद्र समझता था। वे भिन्न-भिन्न लम्बी पर्वतमालाओं को पहचानते थे और गैलीलिओ ने उनकी छाया की लम्बाई से उनकी ऊँचाई निश्चित करनी सीखी। फिर तो लोगों को यह विश्वास दिलाना बड़ा ही हास्यास्पद हो गया कि चन्द्रमा

ठोस आकाश में चाँदी की एक तश्तरी के समान है अथवा पृथ्वी को प्रकाश देने के लिए बनाया गया दीप है।

दूरबीन के ज़रिए चाँद के दर्शन

अपनी विलक्षण खोजों के बाद गैलीलिओ बहुत दिनों तक चुप न रह सका। उस समय तक कॉपरनिकस के सिद्धान्तों का कैथोलिक चर्च द्वारा खुला विरोध नहीं किया गया था और गैलीलिओ ने सन् 1610 में 'तारों का सन्देशवाहक' इस बढ़िया शीर्षक वाली किताब छपवायी। इस किताब में गैलीलिओ ने कॉपरनिकस के सिद्धान्तों के पक्ष में बहुत सँभल-सँभलकर अपना मत प्रकट किया।

पादरी लोग चिन्तित हो उठे – उन्हें महसूस हुआ कि ब्रूनो को तो उन्होंने मरवा डाला, परन्तु कॉपरनिकस के सिद्धान्त तो फिर भी ज़िन्दा ही रहे। उनका नया हिमायती और प्रचारक पैदा हो गया है।

और ऐसा हिमायती और प्रचारक कोई साधारण व्यक्ति नहीं, एक ऐसा वैज्ञानिक था जिसका नाम सारे यूरोप में प्रसिद्ध था।

कैथोलिक चर्च के प्रधान, रोम के पोप ने सन् 1616 में एक अध्यादेश जारी किया। इस अध्यादेश ने कठोर दण्ड की धमकी देकर कॉपरनिकस के सिद्धान्तों की हिमायत करने वाली किताबों के छपवाने की मनाही की। इसके अतिरिक्त, ऐसी किताबों को अपने घर में रखना और उन्हें पढ़ना भी अपराध बताया।

पादरियों को कॉपरनिकस के सिद्धान्तों से बहुत घृणा थी। इसीलिए उन सभी किताबों पर, जिनमें उसके सिद्धान्तों को मान्यता दी गयी थी, सन् 1835 तक कड़ी रोक थी।

पादरियों ने अब तो गैलीलिओ को भी तंग करना आरम्भ कर दिया। सन् 1632 में गैलीलिओ ने एक नयी किताब लिखी जिसका नाम था 'दोनों सिद्धान्तों के विषय में बातचीत'। इस किताब में भी उसने कॉपरनिकस के सिद्धान्तों की हिमायत की। गैलीलिओ की यह नयी कृति बड़ी ही कठिनाई से छप सकी। छापाख़ाने वाले इस किताब को छापने के लिए तैयार न थे। उन्हें यह भय था कि कॉपरनिकस के 'विधर्म' के प्रचार के लिए उन्हें भी सहअपराधी बताकर सताया जायेगा। लेकिन इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी यह किताब निकली, और पादरी लोग तो आगबबूला हो उठे।

गैलीलिओ की कृति का प्रचार करना बिल्कुल ही मना कर दिया गया और इस वयोवृद्ध वैज्ञानिक
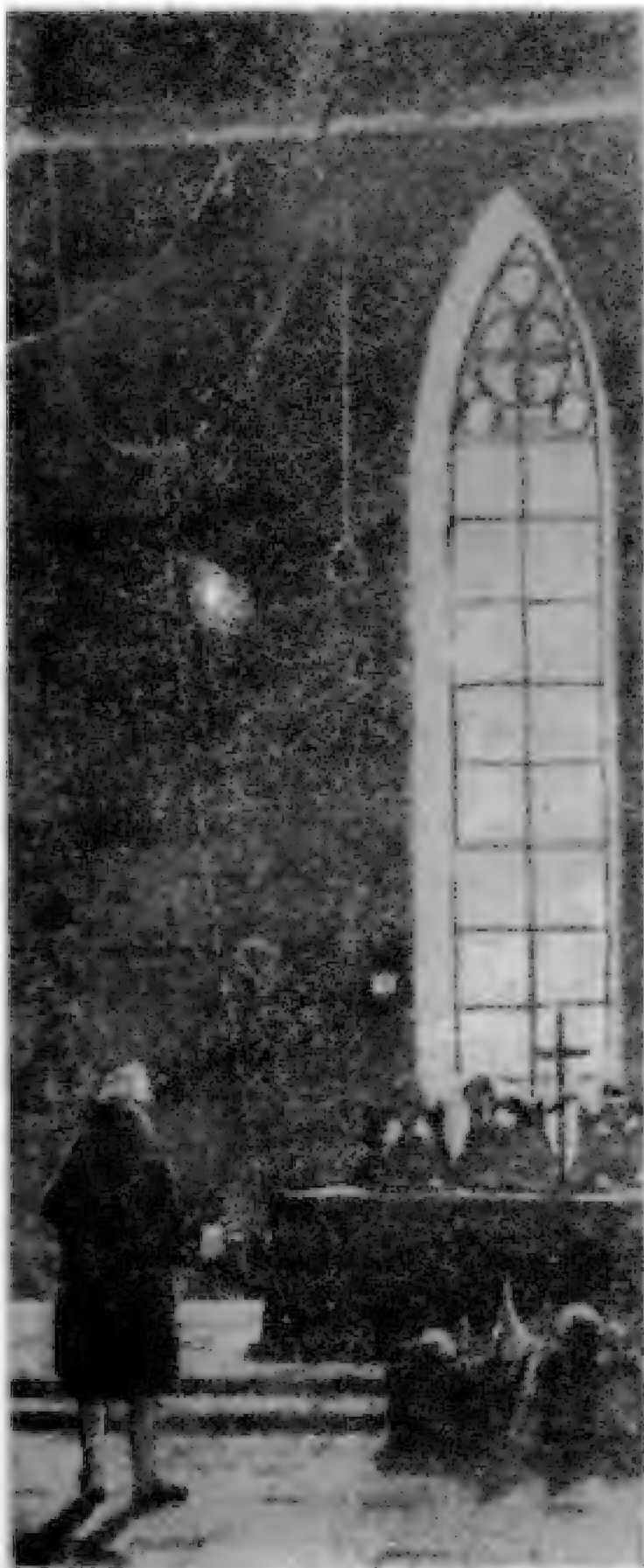
गैलीलिओ इन्क्विज़िशन के सामने।

को स्वयं पोप के न्यायालय में रोम बुलाया गया।

गैलीलिओ को मृत्युदण्ड देने की धमकी दी गयी उस पर जिरह की गयी यंत्रणा देने वाले उस बड़े कमरे में जहाँ उसकी आँखों के ही सामने भयानक यन्त्रणा देने के साधन पड़े हुए थे। वे साधन थे – चमड़े की वे चोंगियाँ, जिनके द्वारा मनुष्य के पेट में पानी डालकर फुलाया जाता था; लोहे के वे जूते, जिनमें अपराधी के पाँवों को कस दिया जाता था; चिमटे, जिनसे हड्डी तोड़ी जाती थी, इत्यादि, इत्यादि...

जीर्ण बुड्ढा इन धमकियों की ताव न ला सका और उसने अपने सिद्धान्तों का खण्डन करना स्वीकार कर लिया।

गिरजाघर में लोगों की काफ़ी बड़ी भीड़ के सामने गैलीलिओ ने घुटनों के बल खड़े होकर प्रायश्चित किया।

किन्तु इसके बाद भी पादरियों ने इस वयोवृद्ध खगोलविज्ञानी को अपने चंगुल से मुक्त न किया। गैलीलिओ अपने मरने के समय तक 'इन्क्विज़िशन' का बन्दी बना रहा। पृथ्वी की गति के विषय में किसी से कुछ भी बातचीत करने की उसे कड़ी मनाही थी। किन्तु ऐसा होते हुए भी गैलीलिओ गुप्त रूप से अपनी नयी कृति लिखता रहा। इस किताब में पृथ्वी और प्रकाशग्रहों के बारे में सच्ची चर्चा की गयी थी।

कोई भी अत्याचार, कोई भी यन्त्रणा और प्राणदण्ड इन नये सिद्धान्तों के प्रचार को फैलने से रोक न सका।

विज्ञान के वीर पुरुष और शहीद अपना महान कार्य करते जाते थे।

टेलीस्कोप और बेधशाला

खगोलविज्ञानी का सबसे महत्त्वपूर्ण यन्त्र है टेलीस्कोप अर्थात् बड़ी दूरबीन। दूर-दर्शक यन्त्र के आविष्कार ने विज्ञान के क्षेत्र में बहुत बड़ा कार्य किया है। इसलिए इस यन्त्र का इतिहास, संक्षेप ही में सही, बतलाना आवश्यक है।

लोगों की दृष्टि में दोष होते हैं जिन्हें अल्पदृष्टि और दीर्घदृष्टि कहते हैं। अल्पदृष्टि वाला व्यक्ति समीप की वस्तुओं को अच्छी तरह देखता है, परन्तु दूर की वस्तुओं को ठीक भाँति नहीं पहचान पाता। दीर्घदृष्टि वाला व्यक्ति दूर की वस्तुओं को तो अच्छी तरह देखता है, किन्तु सुई में तागा डालना उसके लिए कठिन है और किताब के अक्षरों को ठीक से पढ़ पाना भी मुश्किल काम है।

चश्मे की मदद से दोषयुक्त दृष्टि को ठीक करना लोगों ने बहुत पहले ही सीख लिया था। दीर्घदृष्टि वाले कन्वेक्सो-कन्वेक्स लेन्स (दोनों तरफ़ उभरे हुए शीशे) वाले चश्मे और अल्पदृष्टि वाले कन्कैवो-कन्कैव लेन्स (दोनों तरफ़ से नतोदर शीशे) वाले चश्मे लगाते हैं।

कन्वेक्सो-कन्वेक्स लेन्स के दोनों तरफ़ की सतह उभरी हुई होती है और वह किनारों की अपेक्षा मध्य में अधिक मोटा होता है। कन्वेक्सो-कन्वेक्स लेन्स का उदाहरण हमें साधारणत: आतशी शीशे में मिलता है। यदि कन्वेक्सो-कन्वेक्स लेन्स द्वारा किताब के अक्षरों को देखा जाये तो अक्षर बड़े-बड़े नज़र आने लगते हैं।

कन्कैवो-कन्केव लेन्स के दोनों तरफ़ की सतह नतोदर होती है और बीच की अपेक्षा उसके किनारे मोटे होते हैं। कन्कैवो-कन्केव शीशा वस्तुओं को छोटा करके दिखलाने वाला होता है। जिस किसी वस्तु को इस लेन्स से देखा जाता है, वही छोटी नज़र आने लगती है।
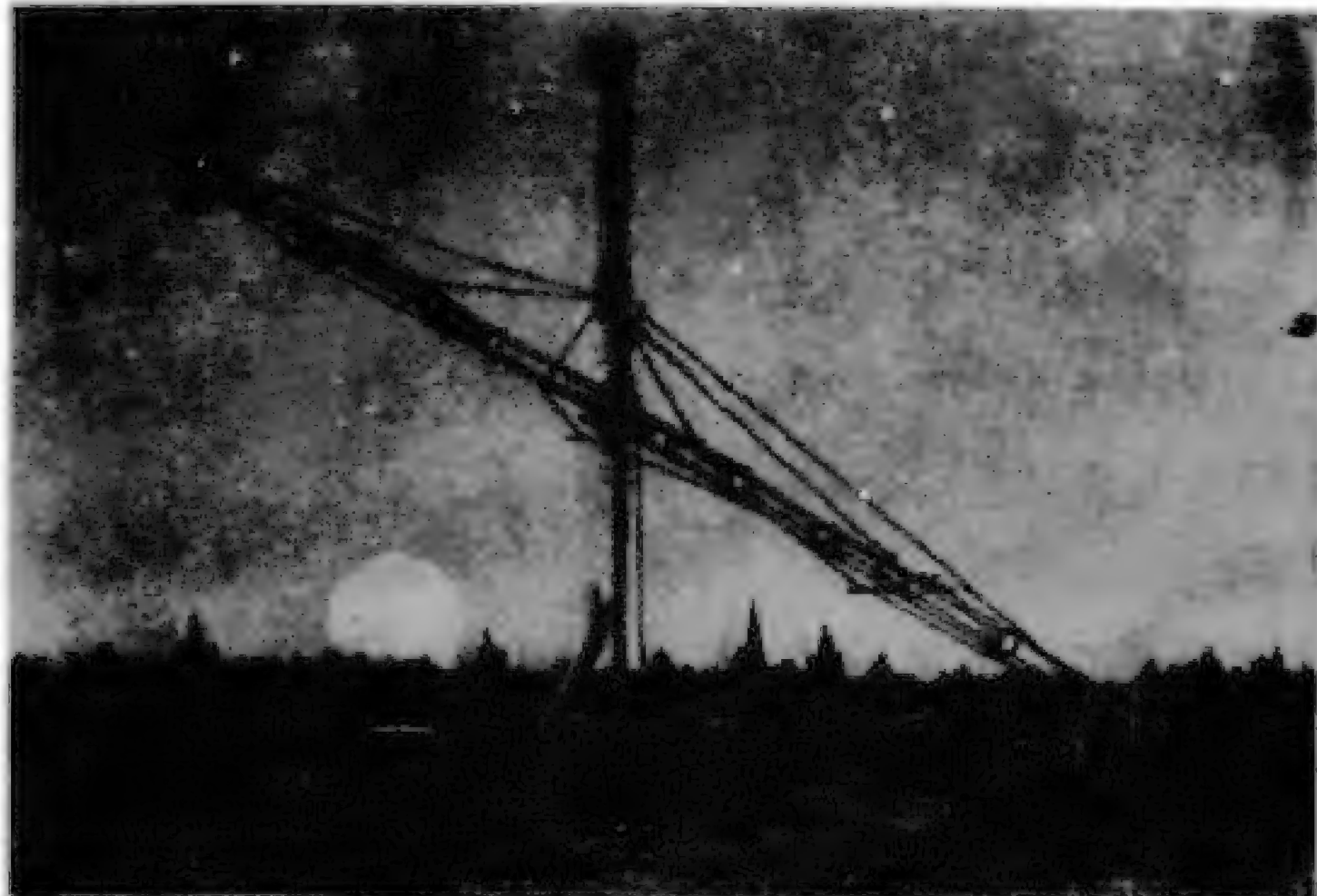
हेवेलिअस का विशाल टेलीस्कोप

कहा जाता है कि लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष पहले यह घटना घटी थी। एक दिन चश्मा बनाने वाले मिस्त्री का छोटा बच्चा कन्वेक्सो-कन्वेक्स और कन्कैवो-कन्केव शीशों से खेल रहा था। आँखों के सामने इन शीशों को इधर-उधर घुमाते हुए अचानक उसने एक शीशे को दूसरे के सामने रख दिया और फिर तो दूर का घण्टाघर उसे अपने बहुत ही समीप मालूम पड़ा। बेटे ने यह बात अपने पिता से कही। पिता ने इन शीशों को एक नली में जड़ दिया। और समझ लो कि इस प्रकार पहली दूरबीन का आविष्कार हुआ।

यह घटना घटी थी या नहीं इस बात का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। मुख्य बात तो यह है कि सन् 1605 के आसपास यूरोप में पहली दूरबीन बनी। वह आजकल के थियेटर देखने वाले बाइनोकुलर की तरह बनायी गयी, किन्तु बाइनोकुलर की भाँति यह दूरबीन दो नलियों से नहीं, एक ही से बनी थी। अतएव इसमें केवल एक ही आँख से देखा जाता था, दूसरी आँख बन्द कर ली जाती थी।

यह तो तुम जान ही चुके हो कि इसी दूरबीन की सहायता से गैलीलिओ ने बहुत अद्‌भुत खोजें की थीं, परन्तु उसका यन्त्र दोषयुक्त था।

कुशल कारीगर दूरबीन के आकार को बड़ा करने और इस तरह उसे और भी उपयोगी बनाने के काम में जुट गये। फिर इन बड़ी दूरबीनों को 'टेलीस्कोप' कहा जाने लगा।

टेलीस्कोप ग्रीक शब्द है और इसका अर्थ 'दूर तक देखने वाला' है।
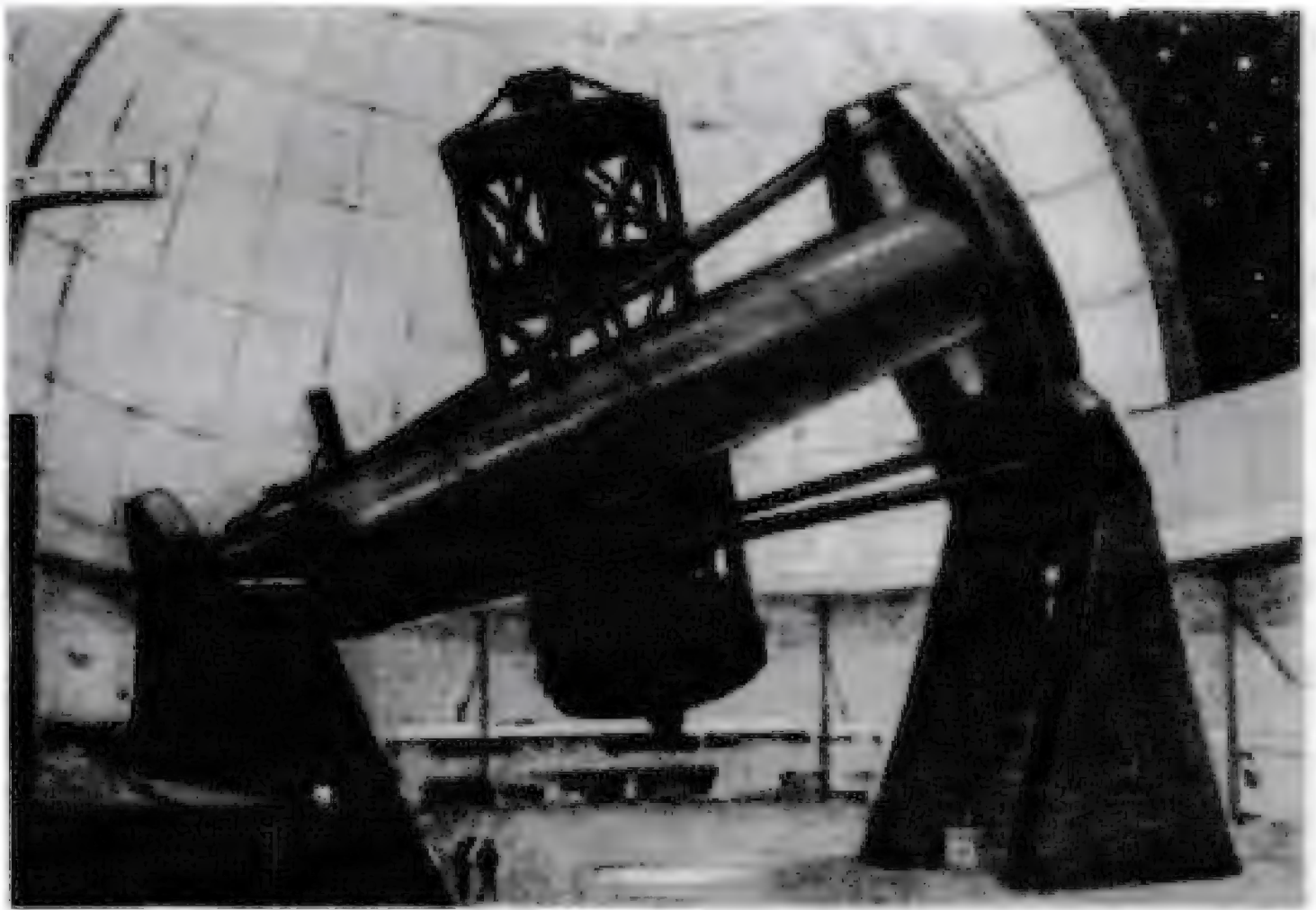
दर्पण वाला पाँच मीटर लम्बा टेलीस्कोप

यह यन्त्र दूर की वस्तुओं को भलीभाँति देखने के लिए है।

शुरू-शुरू के टेलीस्कोप असुविधापूर्ण थे। 51 पृष्ठ पर हॅवेलिअस का विशाल टेलीस्कोप दिखाया गया है, जिसे पोलैण्ड के ग्दान्स्क नगर में बनाया गया था। तुम देख सकते हो कि इस टेलीस्कोप में कोई भी ट्यूब अर्थात् नली नहीं है। इसे रस्सियों द्वारा ऊपर उठाया और घुमाया जाता था। ऐसे टेलीस्कोप द्वारा पर्यवेक्षण करना बड़ा ही असुविधाजनक था।

थोड़े समय बाद दर्पण वाले टेलीस्कोप का आविष्कार हुआ। उसका मुख्य भाग एक विशाल, अच्छी तरह पॉलिश किया हुआ नतोदर दर्पण होता है। ऐसे टेलीस्कोप की नली आकाश की ओर निशाना साधे हुए एक विशाल तोप के समान है।

सन् 1941 में वैज्ञानिक द.द. मक्सूतेव ने बिल्कुल नयी बनावट के टेलीस्कोप का आविष्कार किया।

मक्सूतोव के टेलीस्कोप के मुख्य भाग हैं – एक नतोदर दर्पण और एक कन्वेक्सो-कन्केव शीशा, अर्थात् ऐसा शीशा, जिसकी एक तरफ़ की सतह उभरी हुई हो और दूसरी नतोदर। ऐसा शीशा बग़ल से रखने पर हँसिया-नुमा नये चन्द्रमा के बीच वाले भाग के समान मालूम देगा। वैज्ञानिक ऐसे आकार को

'मेनिस्कस' कहते हैं। इसलिए मक्सूतोव के टेलीस्कोप को मेनिस्कसनुमा कहा जाता है।

मेनिस्कस नुमा टेलीस्कोप से दूर की चीज़ें बहुत ही ठीक और साफ़-साफ़ दिखायी देती हैं। इसके अतिरिक्त वह इसलिए भी सुविधापूर्ण है कि पुराने ढंग के टेलीस्कोप की अपेक्षा इसकी लम्बाई कहीं कम है, अतएव इसका प्रयोग करना अधिक सरल है।

मक्सूतोव के ढंग के अनुसार बहुत ही सुविधापूर्ण, सरल, किन्तु अच्छे टेलीस्कोपों का निर्माण किया जाता है।

आकाशीय पिण्डों का पर्यवेक्षण और वैज्ञानिक अनुसन्धान करने वाली संस्थाओं को खगोल बेधशाला कहते हैं।

बेधशालाएँ खास तौर पर नगर से दूर, पहाड़ियों और ऊँचे पर्वतों पर बनायी जाती हैं। वहाँ कम घने बादल होते हैं, वायु अधिक साफ़-स्वच्छ और शान्त होती है, मैदानी हवा की भाँति यहाँ वह बहुत हिलती-डुलती नहीं है।

संसार की सबसे उत्तम बेधशालाओं में एक लेनिनग्राद के समीप पूल्कोवो पहाड़ियों पर स्थित है। पूल्कोवो बेधशाला वैज्ञानिक अनुसन्धानों के लिए तथा अपने पर्यवेक्षणों की प्रमाणिकता के लिए प्रसिद्ध है। विदेशी वैज्ञानिकों तक ने इस बेधशाला को "संसार की खगोलविज्ञान की राजधानी" कहा है।

दूसरे महायुद्ध के दिनों में हिटलरी फ़ासिस्टों ने पूल्कोवो बेधशाला को नष्ट कर डाला था। किन्तु बाद में फिर से उसका निर्माण कर दिया गया है।

पृथ्वी कितनी बड़ी है?

इस किताब में अक्सर तुम्हारा वास्ता लम्बे-लम्बे आँकड़ों से पड़ेगा – लाखों, करोड़ों और अरबों से।

तुम निस्सन्देह यह जानते हो कि एक लाख बराबर होता है सौ हज़ार के, एक करोड़ बराबर होता है सौ लाख के और एक अरब बराबर होता है सौ करोड़ के। लेकिन यह जानना ही काफ़ी नहीं है। तुम्हारे दिमाग़ में इस बात की सही तस्वीर भी होनी चाहिए कि ये संख्याएँ कितनी बड़ी हैं।

एक वैज्ञानिक ने यह सुझाव रखा कि यदि यह जानना चाहते हो कि दस लाख क्या है तो कागज़ के 100 बड़े पन्ने ले लो और हर पन्ने पर दस हज़ार काले धब्बे अथवा बिन्दु बनाओ (सौ रेखाएँ और हर रेखा पर 100 बिन्दु)। सभी पन्नों को फिर एक बड़े कमरे में टाँग दो। अब जब तुम चारों तरफ़ नज़र दौड़ाओगे तो तुम्हें दस लाख बिन्दु नज़र आयेंगे।

शायद तुम ऐसा करने का इरादा ही कर लो। किन्तु मैं तुम्हें पहले से ही चेतावनी दे देना चाहता हूँ, सोच-समझकर इस काम में हाथ डालना। यदि तुमने एक सेकण्ड में तीन बिन्दु भी लगा लिये, तो भी तुम्हें यह काम पूरा करने में लगभग 92 घण्टे लग जायेंगे।

ज़ाहिर है, कि स्कूल के एक ही विद्यार्थी के लिए यह काम पूरा करना बहुत मुश्किल होगा। किन्तु

यदि पूरी कक्षा इस कार्य को करने का बीड़ा उठा ले, तो यह बहुत सरल हो जायेगा। तब तो हरेक को लगभग दो घण्टे काम करना पड़ेगा। तब ही कहीं बिन्दुओं वाले ये पन्ने कक्षा में टाँगे जा सकेंगे।

वैसे ऐसा करना होगा तो बहुत ठीक। सारी कक्षा ही भलीभाँति यह समझ जायेगी कि दस लाख की संख्या क्या होती है!

अब तुम कल्पना करो उस कारखाने की जो स्कूल के लिए काग़ज़ बनाता है। मान लो कि उसका संचालक यह आज्ञा देता है कि एक के ऊपर एक दस लाख कापियाँ एक ही ढेरी में इकट्ठी कर दी जायें। जानते हो इस ढेरी की ऊँचाई कितनी होगी? उसकी ऊँचाई होगी पूरी डेढ़ किलोमीटर! पर्वतारोहण की शिक्षा लेने वाले विद्यार्थी कापियों की इस पहाड़ी पर अपना अभ्यास कर सकते हैं...

इसी तरह यदि 10 लाख पेन्सिलों की एक लाइन बना दी जाये, तो इसकी लम्बाई 180 किलोमीटर होगी। यदि कोई कारखाना साधारण लम्बाई-चौड़ाई और वज़न की दस लाख पेन्सिलों जैसी एक ही पेन्सिल बनाये, तो इस दैत्याकार पेन्सिल की लम्बाई लगभग 18 मीटर होगी और वज़न होगा 7 टन। ऐसी पेन्सिल का इस्तेमाल तो सिर्फ़ परियों की कहानियों का कोई देव-दानव ही कर सकेगा। वह भी ऐसा देव जिसका सिर बादलों से ऊपर तक पहुँचता हो।

अब तुम अन्दाज़ा लगाओ एक अरब संख्या का! दस लाखों को एक हज़ार बार गुना करने से एक अरब बनता है। यदि हमारे चारों ओर की वस्तुओं को एक अरब गुना अधिक बड़ा कर देना सम्भव हो, तो वे बिल्कुल दैत्याकार हो जायें।

एक अरब कापियों के ढेर की ऊँचाई होगी 1500 किलोमीटर।

एक अरब कापियों को गिनने के लिए जानते हो कितना समय चाहिए? मान लो कि तुम्हारी कक्षा में 50 बच्चे हैं। अब यदि हर बच्चा हर घण्टे में 3,000 कापियाँ गिने, हर दिन छः घण्टे काम करे और इतवार की छुट्टी भी गोल करे तो इन सारी कापियों को गिनने में तीन बरस लगेंगे।

एक अरब पेन्सिलों की लाइन से सारी पृथ्वी को चार बार से अधिक घेरा जा सकता है। यदि एक अरब पेन्सिलों को एक साथ मिला दिया जाये, तो एक ऐसी पेन्सिल बन जायेगी, जिसकी लम्बाई 180 मीटर, मोटाई 6.5 मीटर और वज़न 7,000 टन होगा। किन्तु यदि यह पेन्सिल नली की भाँति खोखली हो, तो उसके अन्दर लगभग एक दर्जन एकमंज़िले मकान बनाना सम्भव होगा। इन मकानों में एक सौ आदमी मज़े से रह सकेंगे और गर्व से यह कह सकेंगे –

"हम 'पेन्सिल' बस्ती में रहते हैं!"

अब हम पृथ्वी के विस्तार की चर्चा कर सकते हैं।

यदि लोग यह निश्चय कर लें कि पृथ्वी में एक ऐसा कुआँ खोदा जाये, जो उसके केन्द्र तक गहरा हो, तो इस कुएँ की गहराई 6,380 किलोमीटर होगी। अब मान लीजिये कि एक आदमी सीढ़ियों द्वारा पृथ्वी के केन्द्र तक पहुँचना चाहता है। वह पाँच किलोमीटर प्रति घण्टे की रफ़्तार से सीढ़ियाँ उतरता जाता है। न कहीं रुकता है और न बैठता ही है। जानते हो इतना कड़ा श्रम करने पर भी उसे कितना समय लगेगा? दो महीने!

स्पष्ट है कि ऐसा गहरा कुआँ खोदना असम्भव है। गहरी से गहरी खानें भी 2 किलोमीटर से कुछ ही अधिक गहराई की होती हैं। यह गहराई पृथ्वी की सतह से उसके केन्द्र तक की दूरी का तीन हज़ारवाँ भाग है।

पृथ्वी की ठोस सतह के नीचे, उसकी गहराई में क्या है? अभी इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है। परन्तु पृथ्वी के ऊपरी तल की लोगों ने अच्छी जानकारी प्राप्त कर ली है। बहुत-सी ऐसी जगहें हैं जहाँ अभी तक इन्सानी पैरों के निशान नहीं पहुँचे हैं।

पृथ्वी की सतह का क्षेत्रफल लगभग 50 करोड़ वर्ग किलोमीटर है।

तुम यह तो जानते ही हो कि 'वर्ग किलोमीटर' क्षेत्र की माप है। यह ऐसा वर्ग है जिसका हर किनारा एक किलोमीटर होता है। एक वर्ग किलोमीटर में 100 हेक्टेयर और हर हेक्टेयर में 2.4 एकड़ होते हैं।

पृथ्वी की सतह 50 अरब हेक्टर है।

इस सारी सतह का लगभग 0.7 भाग तो समुद्र और महासागर है और केवल 0.3 भाग धरती।

पृथ्वी का घनफल कितना बड़ा है?

क्या तुम घन किलोमीटर की कल्पना कर सकते हो? यह एक ऐसा बक्सा है, जिसकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई 1 किलोमीटर है। एक ऐसे बक्से में विशाल मास्को नगर के सभी मकान रखे जा सकते हैं। और इस प्रकार के एक घन किलोमीटर की माप में पृथ्वी का घनफल 1,000 अरब से कहीं अधिक होगा!

तुम्हारे लिए पृथ्वी के भार की कल्पना करना भी कठिन है। दूसरे शब्दों में तुम उस पदार्थ की मात्रा अथवा परिमाण का अनुमान भी नहीं लगा सकते जिससे पृथ्वी का निर्माण हुआ है।

हम कुछ उदाहरण देकर तुम्हें पृथ्वी के भार के विषय में बतलाने का यत्न करते हैं।

कल्पना करो कि लोग पृथ्वी को विश्व के किसी दूसरे भाग में ले जाने का निश्चय कर लेते हैं। पृथ्वी के सारे पदार्थ और उसकी वस्तुओं – पत्थरों, धातुओं, बड़े पीपों में पानी, गुब्बारों में जोरों से बन्द की हुई गैस आदि सभी – को बड़े-बड़े डिब्बों में लाद दिया जाता है। अब मान लो कि ऐसे हर डिब्बे का वज़न 100 टन है। तो जानते हो सारी पृथ्वी को ले जाने वाली इस रेलगाड़ी में कुल कितने डिब्बे होंगे?

इनकी संख्या बहुत ही अधिक होगी। अगर हम तुम्हें यह महान संख्या बतायें, तो कुछ विशेष लाभ न होगा, क्योंकि तुम उससे परिचित नहीं। केवल इतना कहना ही काफ़ी है कि जब रेलगाड़ी का पिछला डिब्बा वहीं रहेगा, जहाँ पहले पृथ्वी थी, तो इंजन वहाँ पर होगा, जहाँ बड़ी दूरी वाले तारे हैं।

संसार में सबसे तेज़ गति है प्रकाश की किरण की। यह किरण 3 लाख किलोमीटर प्रति सेकण्ड की चाल से चलती है।

तुम कहोगे – "इतनी तेज़ गति!"

तुम्हारे यह कहते-कहते प्रकाश की किरण पृथ्वी के चारों ओर 8 चक्कर पूरे कर लेगी।

तुम कहोगे – "चन्द्रमा कितनी दूर है!" और जब तक तुम ये चार शब्द कहोगे, तब तक प्रकाश की किरण चन्द्रमा तक पहुँच भी जायेगी।

अब पृथ्वी को ले जाने वाली रेलगाड़ी के पिछले डिब्बे के गार्ड ने लैम्प उठाया कि वह ड्राइवर को सिगनल दे सके। इस बत्ती से प्रकाश की किरण कितने समय में ड्राइवर तक पहुँच सकेगी? इसके लिए इसे 60 हज़ार वर्षों से भी अधिक समय की आवश्यकता होगी। अब तुम समझे कि हमारी पृथ्वी का कितना ज़्यादा भार है!

रेलगाड़ी के लिए गार्डों की आवश्यकता है। चूँकि रेलगाड़ी के बहुत डिब्बे हैं, इसलिए हर 20 अरब डिब्बों के लिए एक ही गार्ड रखने का निश्चय किया गया।

पृथ्वी की सारी जनसंख्या – लगभग ढाई अरब लोग – इस आश्चर्यजनक रेलगाड़ी की टीम बन गयी और फिर तो एक गार्ड दूसरे गार्ड से 36 करोड़ किलोमीटर की दूरी है; यह दूरी पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी से लगभग ढाई गुना अधिक है। अब यदि किसी एक गार्ड के मन में अपने पड़ोसी गार्ड के पास आने का ख़्याल आता है और वह अपने डिब्बे से पैदल यात्री की गति से – अर्थात् 5 किलोमीटर प्रति घण्टे की चाल से – चल देता है, तो उसे अपनी यात्रा 6,900 वर्षों तक जारी रखनी पड़ेगी।

कुछ पूँजीवादी देशों में ऐसे भी वैज्ञानिक हैं, जो लोगों को यह विश्वास दिलाते हैं कि पृथ्वी की जनसंख्या बहुत ही अधिक है और शीघ्र ही वह समय आयेगा जब पृथ्वी इस पर रहने वाले सभी लोगों का भरण-पोषण न कर सकेगी।

यह कोरा झूठ, बिल्कुल नासमझी है।

यदि पृथ्वी की सारी सतह को इस पर रहने वालों में बराबर-बराबर भागों में बाँट दिया जाये तो हर व्यक्ति के हिस्से में 5 हेक्टर धरती और 12 हेक्टर जल आयेगा। 5 हेक्टर ज़मीन से कितना अन्न, मेवा व फल इकट्ठा किया जा सकता है! एक ही नहीं, किन्तु सैकड़ों लोग उस एक व्यक्ति के भाग से अपनी जीविका चला सकते हैं।

यह ठीक है कि इसके लिए काफ़ी परिश्रम करना पड़ेगा कि रेगिस्तानों और टुण्ड्रा को फलते-फूलते बग़ीचों में परिवर्तित करना होगा, किन्तु मनुष्य इसे कर सकता है।

कुछ वैज्ञानिक इस बात की घोषणा करते हैं कि शीघ्र ही कोयला, लोहा और तेल लोगों के लिए नाकाफ़ी हो जायेगा...

किन्तु यह बात भी सच नहीं है।

प्राकृतिक सम्पत्ति कभी भी समाप्त नहीं हो सकती। और अब तो कोयले और तेल के स्थान पर नदियों, वायु की शक्ति, सौर ऊर्जा और परमाणु-शक्ति का भी उपयोग किया जाता है...

पृथ्वी में धातुओं का अक्षय भण्डार है, और किसी एक भी धातु की कमी होने पर मनुष्य उसके स्थान पर किसी दूसरी धातु अथवा प्लास्टिक का इस्तेमाल करने लगेगा।

चार दिशाएँ

बुनने की एक महीन सिलाई खोज लो। इसी सिलाई से किसी सेब को ऐसे छेदो कि यह उसके मध्य से होकर निकले। सेब की फुनगी वाली जगह से छेदना अधिक सुविधाजनक रहेगा। इस तरह सिलाई सेब की धुरी बन जायेगी। सेब इस पर वैसे ही घूम सकेगा जैसे कि कोई पहिया अपनी धुरी पर घूमता है; किन्तु सिलाई स्वयं तो स्थिर रहेगी, केवल सेब घूमेगा।

सिलाई जहाँ से आर-पार निकली है, सेब के उन बिन्दुओं को ध्रुव कहते हैं। एक उत्तरी और दूसरा दक्षिणी ध्रुव है। जहाँ हमारे सेब की फुनगी है, आओ हम उसे अपने मॉडल का उत्तरी ध्रुव कहें। इस प्रकार दोनों ध्रुवों को आसानी से पहचाना जा सकेगा।

ध्रुवों से बराबर दूरी पर सेब के बीचोबीच एक रेखा खींचो। यह रेखा सेब की पूरी सतह को दो समान भागों – अर्थात् दो गोलार्द्धों – में विभाजित कर देगी। यह रेखा भूमध्य-रेखा होगी।

उत्तरी ध्रुव वाले गोलार्द्ध को हम उत्तरी और दूसरे को दक्षिणी गोलार्द्ध कहेंगे।

भूमध्य-रेखा पर कागज़ का एक छोटा आदमी बनाकर ऐसे रखो कि उसका चेहरा उत्तरी ध्रुव की ओर हो अथवा, जैसा बहुधा कहते हैं, उत्तर की ओर हो। इस आदमी का दाहिना हाथ पूरब बतायेगा और बायाँ पश्चिम।

उत्तरी ध्रुव से दक्षिण की ओर एक धागा बाँधो। इस धागे को देशान्तर अथवा मध्याह्न-रेखा कहते हैं।

ऐसा नाम इसका क्यों पड़ा?

सेब पर एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव तक धागा बाँधना तो बड़ी सरल बात है, किन्तु भूमण्डल पर ऐसा करना असम्भव है। ऐसा करने के लिए 20 हज़ार किलोमीटर लम्बाई का धागा चाहिए और फिर उसे विशाल पर्वतों, मरुस्थलों व महासागरों पर से गुज़ारना पड़ेगा। किन्तु देशान्तर का एक छोटा भाग तुम खींच सकते हो और इसे ऐसे किया जाता है।

एक लम्बा डण्डा लो और उसे सीधा खड़ा करो। धूप के
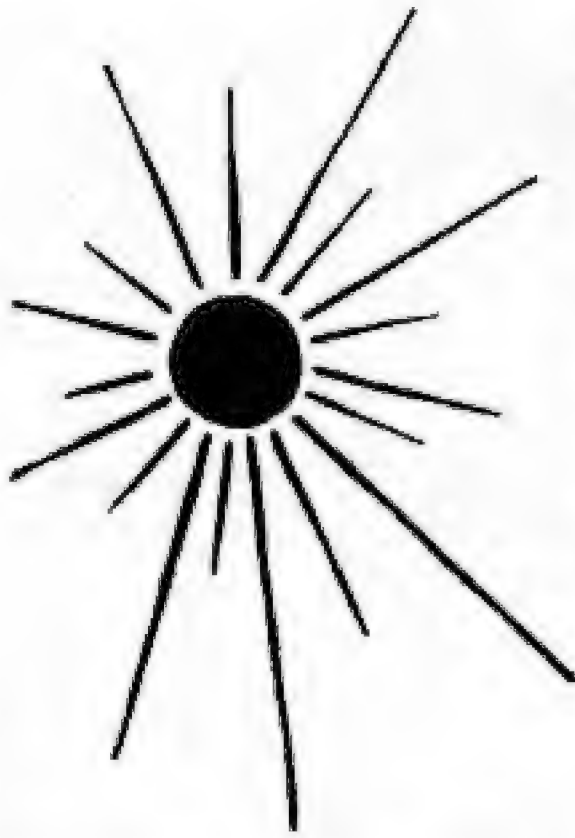
दिन में यह देखो कि किस प्रकार इस डण्डे की छाया बदलती है। तुम देखोगे कि प्रात:काल तो यह छाया लम्बी होगी और जैसे-जैसे सूर्य ऊँचा चढ़ता जायेगा, छाया छोटी होती जायेगी।

मध्याह्न के समय सूर्य अपनी पूरी ऊँचाई पर होगा। इस समय यह छाया सबसे छोटी होगी और इसके बाद फिर से बढ़नी शुरू कर देगी।

तुम छाया के सबसे छोटी होने का इन्तज़ार करो, और उसी समय उसके छोर पर एक खूँटा गाड़ दो। फिर यदि डण्डे से इस खूँटे तक एक रस्सी बाँध दी जाये तो यह रेखा देशान्तर का एक भाग होगी। डण्डा उसका दक्षिणी और खूँटा उत्तरी छोर होगा (उत्तरी गोलार्द्ध में)। और चूँकि देशान्तर की दिशा इसी भाँति दोपहर अर्थात् दिन के मध्याह्न काल में निश्चित की जाती है, अतएव इसे मध्याह्न-रेखा कहते हैं।

अब यदि तुम डण्डे के पास अपना मुँह खूँटे की ओर करके खड़े हो जाते हो तो तुम्हारे सामने होगा उत्तर, पीछे दक्षिण, दाहिने पूरब और बायें पश्चिम। इस प्रकार चारों मुख्य दिशाएँ निर्धारित की जाती हैं। इनके बीच की दिशाएँ भी हैं : उत्तर व पूरब के बीच – उत्तर-पूरब, उत्तर व पश्चिम के बीच – उत्तर-पश्चिम, दक्षिण और पूरब के बीच – दक्षिण-पूरब, और दक्षिण व पश्चिम के बीच – दक्षिण-पश्चिम।

नाविकों तथा यात्रियों के लिए तो ठीक-ठीक दिशा निर्धारित करना आवश्यक होता है। उनके लिए तो दिशाओं के और भी संकेत होते हैं, जैसे: उत्तर-उत्तर-पूरब, पूरब-उत्तर-पूरब इत्यादि इत्यादि। मेरे ख्याल में तुम्हारे लिए अब संकेतों के अर्थ समझना कठिन न होगा।

परन्तु बादल-बरखा के दिन दिशाओं का पता कैसे लगाया जाता है? कुतुबनुमा अथवा दिग्दर्शक यन्त्र की चुम्बकीय सुई की सहायता से दिशाओं का पता लगाया जाता है। इस यन्त्र की सुई का एक सिरा तो उत्तरी दिशा की ओर होता है और दूसरा सिरा दक्षिण की ओर। कुतुबनुमा के गोल डायल पर, बीच वाली सभी दिशाएँ अंकित होती हैं। डायल की रेखाओं

धुपहले मध्याह्न के समय चार दिशाओं की पहचान

को कुतुबनुमा के बिन्दु कहते हैं।

किसी स्वच्छ आकाश वाली रात्रि में तो बिना कुतुबनुमा ही के चारों दिशाएँ जानी जा सकती हैं। इसके लिए आकाश में केवल ध्रुवतारे का पता लगाने की आवश्यकता पड़ती है।

आकाश में तारों का एक समूह है, जो उत्तरी गोलार्द्ध के सभी लोगों को मालूम है। इससे सप्तर्षि कहते हैं।

यदि इस तारिका-समूह के छोर वाले दोनों तारों को मिलाते हुए एक रेखा की कल्पना की जाये और अगर इसे लगभग पाँच गुना और आगे ले जाया जाये तो यह रेखा क़रीब-क़रीब ध्रुवतारे पर ही जाकर रुकेगी। ध्रुवतारा तो आकाश में सदा एक ही स्थान पर रहता है। बाक़ी तारे उसी के चारों ओर घूमते हैं। वह तो जैसे स्थिर केन्द्र है।

ध्रुवतारा उत्तरी दिशा की ओर संकेत करता है। चारों दिशाओं को जान लेने के लिए ध्रुवतारे की ओर मुँह करके खड़ा होना काफ़ी है।

ध्रुवतारा ऋक्ष तारिका-समूह के किनारे पर है। ऋक्ष तारिका-समूह बहुत कुछ सप्तर्षि तारिका-समूह से मिलता-जुलता है।

सप्तर्षि और ध्रुवतारा

कज़ाख़स्तान के लोगों ने सप्तर्षि और ऋक्ष के तारों के बड़े ही मज़ेदार नाम रखे। पहले ये लोग केवल पशुपालन का कार्य करते थे। ये लोग भेड़ें, ऊँट और घोड़े को चराते थे। वे सोचते थे कि आकाश में भी चरवाहे रहते हैं। अचल ध्रुवतारे को वे खूँटा कहते थे, और यह कि इस खूँटे से छः घोड़े बँधे हुए हैं। ये छः घोड़े ऋक्ष के बाक़ी तारे थे। कज़ाख लोग सोचते थे कि ये घोड़े सारी रात आकाश की घास खाते हुए खूँटे के चारों ओर चलते हैं। और सप्तर्षि के सात तारे सात चोर हैं। वे सारी रात खूँटे और उन घोड़ों के चारों ओर घूमते रहते हैं। वे उन घोड़ों को चुरा ले जाना चाहते हैं।

आकाश में ध्रुवतारे को पहचानना अथवा उसका पता लगाना सीखो। बाद में यह जानकारी तुम्हारे काम आयेगी।
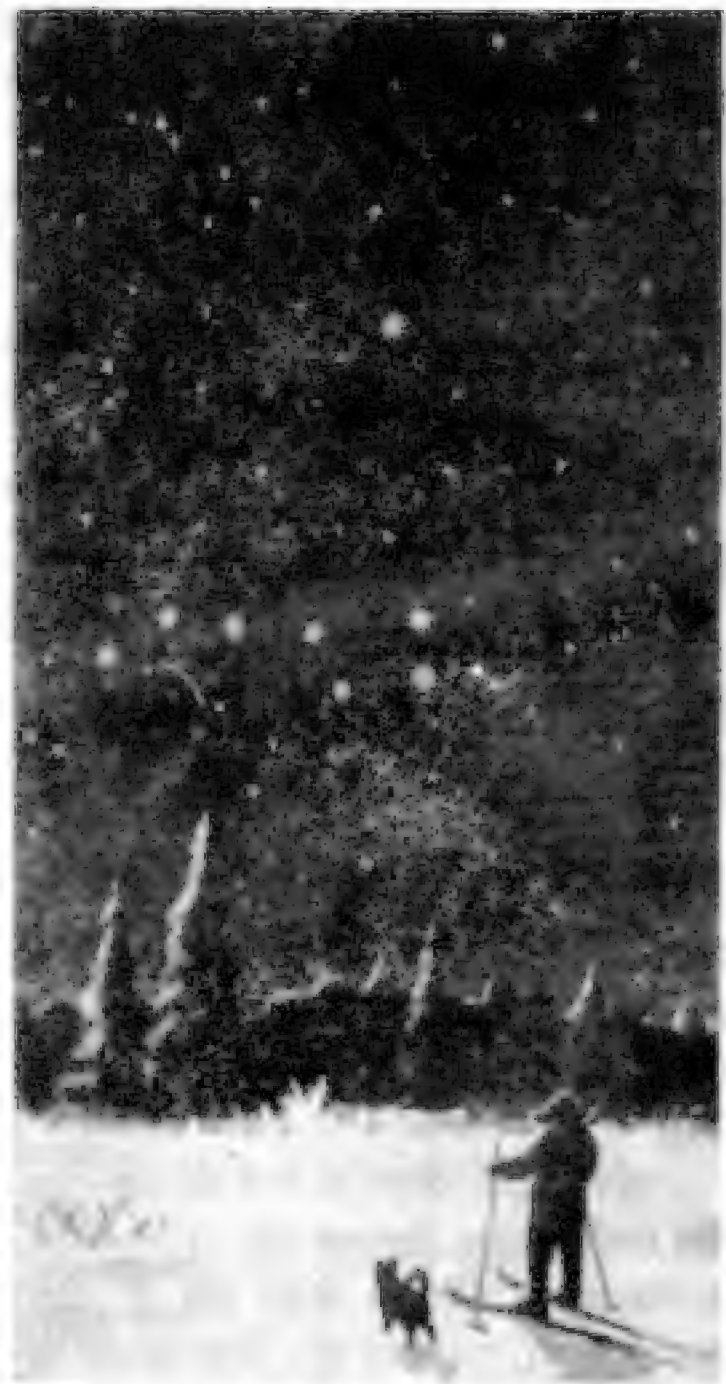
पृथ्वी पर रात और दिन क्यों होते हैं?

तुम रेलगाड़ी के डिब्बे में बैठे हुए हो। एकाएक तुम्हें प्रतीत होता है कि बगल में खड़ी हुई गाड़ी धीरे-धीरे पीछे की ओर चलने लगी है। परन्तु वास्तव में तो यह तुम्हारी ही गाड़ी है जो धीरे-धीरे आगे को चल पड़ी है। जब तुम्हारी गाड़ी रेल की पटरियों पर घड़घड़ाती और फक-फक करती हुई तेज़ी से चल पड़ती है तो यह भ्रम अथवा विचारों का धोखा समाप्त हो जाता है।

यह दृष्टि भ्रम उस समय भी होता है जब जहाज़ घाट से चलता है। पहले क्षण तो कुछ ऐसा अनुभव होता है कि जैसे घाट ही ने दूसरी ओर चलना आरम्भ कर दिया है।

हमारी पृथ्वी एक विशाल लट्टू की भाँति अन्तरिक्ष में घूमती है।

किसी घूमते हुए लट्टू पर कागज़ का एक टुकड़ा रखो – वह फ़ौरन ही लट्टू से उड़कर नीचे की ओर आ जायेगा। इस शक्ति को जो कागज़ को नीचे फेंक देती है, केन्द्रापचारी शक्ति कहते हैं। चक्कर काटने की अवस्था में ही यह शक्ति उत्पन्न होती है।

पार्कों अथवा उद्यानों में एक 'मज़ाकिया पहिया' होता है। यह कमरे के फ़र्श के रूप में तेज़ी से घूमता रहता है और जो लोग उस पर बैठते हैं, यह उन्हें स्थिर फ़र्श पर दूर फेंक देता है।

फिर भला लट्टू की तरह घूमती हुई पृथ्वी मनुष्यों व पशुओं को, पत्थरों व रेत को अपने से दूर क्यों नहीं फेंक देती? क्यों वह नदियों और समुद्रों के जल को बाहर नहीं उड़ेल देती?

इस प्रश्न का उत्तर बड़ा ही सीधा-सादा है : चीज़ों को फेंक देने के लिए पृथ्वी को जितनी तेज़ी से घूमना चाहिए वह उतनी तेज़ी से नहीं घूमती है।

हाँ, 'मज़ाकिया पहिया' भी लोगों को तुरन्त ही नहीं फेंकता है। गति तेज़ हो जाने पर ही वह लोगों को फेंकता है।

पृथ्वी पश्चिम से पूरब को घूमती है। उसे एक चक्कर पूरा करने में 24 घण्टे लगते हैं। पृथ्वी को

अमेरिका में दिन : पूर्वी गोलार्द्ध में रात
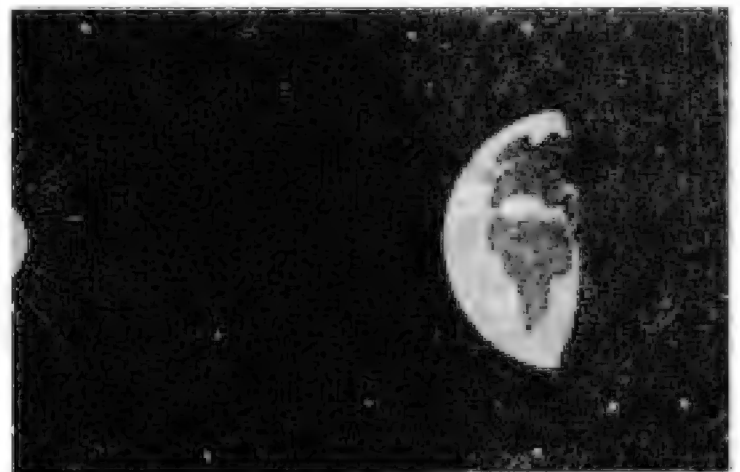
यूरोप और अफ़्रीका में दिन : अमेरिका और एशिया में रात

तुलना में मनुष्य इतना छोटा है कि पृथ्वी की गति का उसे अनुमान नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त पृथ्वी एक शान्त धारा की भाँति, बिना एकाएक रुके, बिना झटका दिये चलती रहती है। इसी कारण मनुष्य को दृष्टि भ्रम हो जाता है। उसे ऐसा लगता है कि जैसे आकाश-मण्डल और हमें दिखायी देने वाले सभी आकाशीय प्रकाशग्रह – सूर्य, चाँद और सितारे – सभी घूम रहे हैं। हम यह भी समझते हैं कि ये एक रात और एक दिन में पृथ्वी के चारों ओर घूमकर एक चक्कर पूरा कर लेते हैं। साथ ही यह लगता है कि वे विपरीत दिशा में, यानी पूर्व से पश्चिम को चलते हैं।

सेब को तो तुमने एक महीन, बुनने वाली सिलाई से बींधा। फिर यह सिलाई उसके घूमने की धुरी बन गयी। परन्तु पृथ्वी के घूमने की धुरी कोई धातु की सिलाई नहीं है। वह तो एक अदृश्य और कल्पित रेखा है, जिसके चारों ओर पृथ्वी घूमती है। इस कल्पित धुरी की लम्बाई बारह हज़ार किलोमीटर से अधिक ही है। और पृथ्वी की भूमध्य-रेखा की लम्बाई 40 हज़ार किलोमीटर है।

यदि पृथ्वी लगातार अपने एक ही भाग को सूर्य की ओर रखते हुए उसके चारों ओर घूमती तो जानते हो क्या होता? इसके इस प्रकाशित भाग पर भयानक और सबको झुलस डालने वाली तपन का राज्य होता! इसके विपरीत, पृथ्वी के अप्रकाशित भाग पर भीषण सर्दी तथा घोर अन्धकार का भयंकर रंग जम जाता।

ऐसी दशा में पृथ्वी पर जीवन असम्भव होता। किन्तु हमारे यहाँ तो दिन होता है और रात होती है। पृथ्वी बारी-बारी से एक के बाद एक दूसरे भाग को सूर्य के सामने करती है, जिससे कि वह न तो सीमा से अधिक तपती है और न अधिक ठण्डी ही होती है।

लोग समय को कैसे आँकते हैं?

एक असम्भव कल्पना करो – एक गतिहीन संसार की! ऐसे संसार में भला समय को कैसे आँका जा सकता है?

कल्पना करो – किसी विचित्र तथा असाधारण देश में, सूर्य आकाश में स्थिर हो जाता है। वायु ठिठककर रह जाती है। पेड़, पत्ते सभी पूर्णत: निश्चल हैं। किसी शिकारी ने आग जलायी थी, उस आग की लपलपाती लपटें भी जहाँ की तहाँ जम जाती हैं खुद शिकारी भी जहाँ का तहाँ बुत-सा बनकर रह जाता है। उसकी जेब-घड़ी की सुई भी बन्द हो जाती है। लोमड़ी जंगल में गयी थी चूहा पकड़ने के लिए। उसका पंजा भी उठा का उठा रह जाता है। चूहा भी अपने बिल के पास जड़वत हो जाता है...

बहुत दिन पहले लोगों ने एक मनगढ़न्त लोक-कथा में एक ऐसे राज्य का वर्णन किया था। ऐसे राज्य में तीन सौ वर्ष तक राजा व रानी, धनी-मानी लोग, नौकर-चाकर, महल के पहरेदार, बरामदे के पास खड़े हुए घोड़े – सभी जैसे निर्जीव होकर रह गये थे। और तो और धुआँ भी आकाश में जहाँ का तहाँ लटका रह गया था। यह एक जादू का असर था। अन्त में एक बहादुर राजकुमार आया और उसने उपरोक्त जादू का प्रभाव दूर किया। तब हर चीज़ पहले की तरह अपना काम करने लगी है। लोगों को इस बात का एहसास ही नहीं होता कि वे तीन सौ वर्षों तक सोते रहे हैं। गति के बिना उन्हें समय का ज्ञान जो नहीं

हो पाता है।

करोड़ों अरबों वर्ष पहले धरती पर इन्सान न था। तब इन्सान की बनायी हुई घड़ी भी न थी। तब प्रकृति ने एक घड़ी बनायी थी जो समय बतलाती थी। खुद पृथ्वी ही वह घड़ी थी। पृथ्वी एक विशालकाय लट्टू की तरह अपनी धुरी के चारों ओर एकरूपता से घूमती है और साथ ही सूर्य कि गिर्द चक्कर भी लगाती है।

यदि पृथ्वी की गति द्वारा चालित एक विशाल घड़ी का निर्माण सम्भव होता, तो इस घड़ी की दो सुइयाँ होतीं – एक वर्ष वाली और दूसरी रात-दिन वाली। वर्ष वाली सुई डायल पर एक चक्कर तब पूरा करती, जब पृथ्वी सूर्य के चारों ओर अपना एक चक्कर लगाती। इसी भाँति पृथ्वी जब अपनी धुरी का चक्कर पूरा करती तभी रात-दिन वाली सुई का डायल पर एक चक्कर पूरा हो जाता।

वर्ष और रात-दिन – ये दोनों समय की मौलिक अथवा बुनियादी मापें हैं, जिन्हें प्रकृति ने हमें दिया है। बाकी मापें तो लोगों ने स्वयं निर्धारित की हैं। यह तो लोगों की मनमर्ज़ी की बात है कि वे पाँच अथवा दस दिन का सप्ताह निर्धारत कर लें। लोग रात-दिन को 10 या 40 घण्टों में विभाजित कर सकते हैं और इस प्रकार फिर तो हर एक घण्टा भी लम्बा या छोटा किया जा सकता है। किन्तु रात-दिन के निश्चित क्रम को लम्बा या छोटा करना मनुष्य की औद्योगिक शक्ति से परे है। वह एक सेकण्ड की भी तब्दीली नहीं कर सकता। इसी प्रकार वह पृथ्वी को सूर्य के चारों ओर तेज़ या धीमी गति से चलने के लिए बाध्य करने में असमर्थ है।

भला एक वर्ष को 12 महीनों में क्यूँ बांटा जाता है? इसलिए कि चन्द्रमा एक साल में पृथ्वी के चारों ओर बारह बार से कुछ ही अधिक बार घूमता है और इसी कारण वर्ष को बारह महीनों में बाँटा गया था।

धूप-घड़ी

इसी भाँति फिर महीनों को सप्ताहों में विभाजित किया गया है। सप्ताह को सात दिनों में बाँटा गया है। इन दिनों के नाम हैं – सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि और रविवार।

रात-दिन, 24 घण्टों में, घण्टा 60 मिनटों में और मिनट 60 सेकण्डों में बँटा हुआ है। हम हर चीज़ को दहाई व सैकड़े में गिनने के आदी हो गये हैं। फिर भला रात-दिन को दस-दस घण्टे के दो भागों में, घण्टे को 100 मिनटों में और मिनट को 100 सेकण्डों में क्यों नहीं बाँट दिया जाता? तब तो आधुनिक घण्टे की अपेक्षा नया घण्टा कुछ और लम्बा हो जाता और मिनट तथा सेकण्ड छोटे हो

जाते। इससे तो गिनना सरल होता और समयांकन फिर मीट्रिक माप के अनुसार होता।

ऐसा प्रस्ताव हुआ था, किन्तु उसे लागू न किया गया। इस सुझाव को यदि मान लिया जाये, तो सारे संसार की करोड़ों जेबी व दीवार घड़ियों को फेंक देना पड़ेगा और उनके स्थान पर नयी घड़ियाँ बनानी पड़ेंगी। इसके अतिरिक्त, करोड़ों पाठ्य-पुस्तकों और दूसरी किताबों को ठीक करना और फिर से छापना पड़ेगा... इसीलिए मिनट व सेकण्ड की गिनती का यह कठिन क्रम बना ही रहा। गिनती की यह पद्धति प्राचीन बाबुल से ली गयी थी। वहाँ के निवासी दर्जनों व साठों में गिनती करते थे।

समयांकन के लिए लोगों ने प्राचीन काल से अब तक भिन्न-भिन्न ढंग की घड़ियों का प्रयोग किया है।

प्राचीन काल में धूप-घड़ी होती थी। इसके लिए पृथ्वी पर एक सीधा डण्डा गाड़ दिया जाता था। इसकी छाया चारों ओर घूमती थी। यह छाया सुबह और शाम को तो लम्बी, किन्तु दोपहर में छोटी होती थी। छाया की स्थिति और लम्बाई से लोग समय का अन्दाज़ लगाते थे। स्पष्ट है, कि तब तो मिनटों और सेकण्डों की कल्पना ही नहीं की जा सकती थी। बादल-बदली वाले दिन तो ऐसी घड़ी काम ही न करती थी।

बाद में पानी और बालू की घड़ियों का आविष्कार हुआ। इन घड़ियों में समय का हिसाब ऊपर से बरतन से नीचे के बरतन में पानी अथवा बालू के गिरने से लगाया जाता था। अमीर लोग ऐसी घड़ियों के लिए दास रखते थे। दास घड़ी के पास बैठता था और जब समय आता था, वह बरतन को उलट देता था और फिर घोषणा करता था कि दिन प्रारम्भ होने के बाद से कितना समय बीता है। यह दास वाली घड़ी 'घण्टा-घड़ी' जैसी ही होती थी।

अस्पतालों में बालू की घड़ी का अब भी प्रयोग होता है। इससे भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए समय का हिसाब लगाया जाता है।

बाद में बटखरे और लंगर वाली घड़ियाँ निकलीं और सबसे आख़िर में स्प्रिंग वाली जेब-घड़ी निकली।

जैसे-जैसे विज्ञान और तकनीक की प्रगति होती जा रही है, वैसे ही वैसे समय का सूक्ष्म से सूक्ष्म मापन किया जा रहा है।

अब रेडियो द्वारा पूरे संसार में ठीक समय का संकेत दिया जाता है।

बिल्कुल ही सही समय की आवश्यकता किसे होती है?

यह होती है जहाज़ के कप्तान को, ताकि समुद्र में पोत का ठीक-ठीक स्थान मालूम किया जा सके; फिर इसकी आवश्यकता होती है वायुयान-चालक को, जो वायुयान को रात्रि के समय और कोहरे में उड़ाता है; इसकी आवश्यकता होती है यन्त्र-चालकों, खिलाड़ियों, शिक्षकों और स्कूली बच्चों को...

किन्तु वैज्ञानिकों के लिए तो इतना ठीक-ठीक समय भी पर्याप्त नहीं होता। उन्हें तो समय के छोटे से छोटे भाग का बहुत ही सही-सही अनुमान लगाना होता है – उन्हें तो एक सेकण्ड के सौवें, हज़ारवें और यहाँ तक कि लाखवें हिस्से तक का मापन करना पड़ता है।
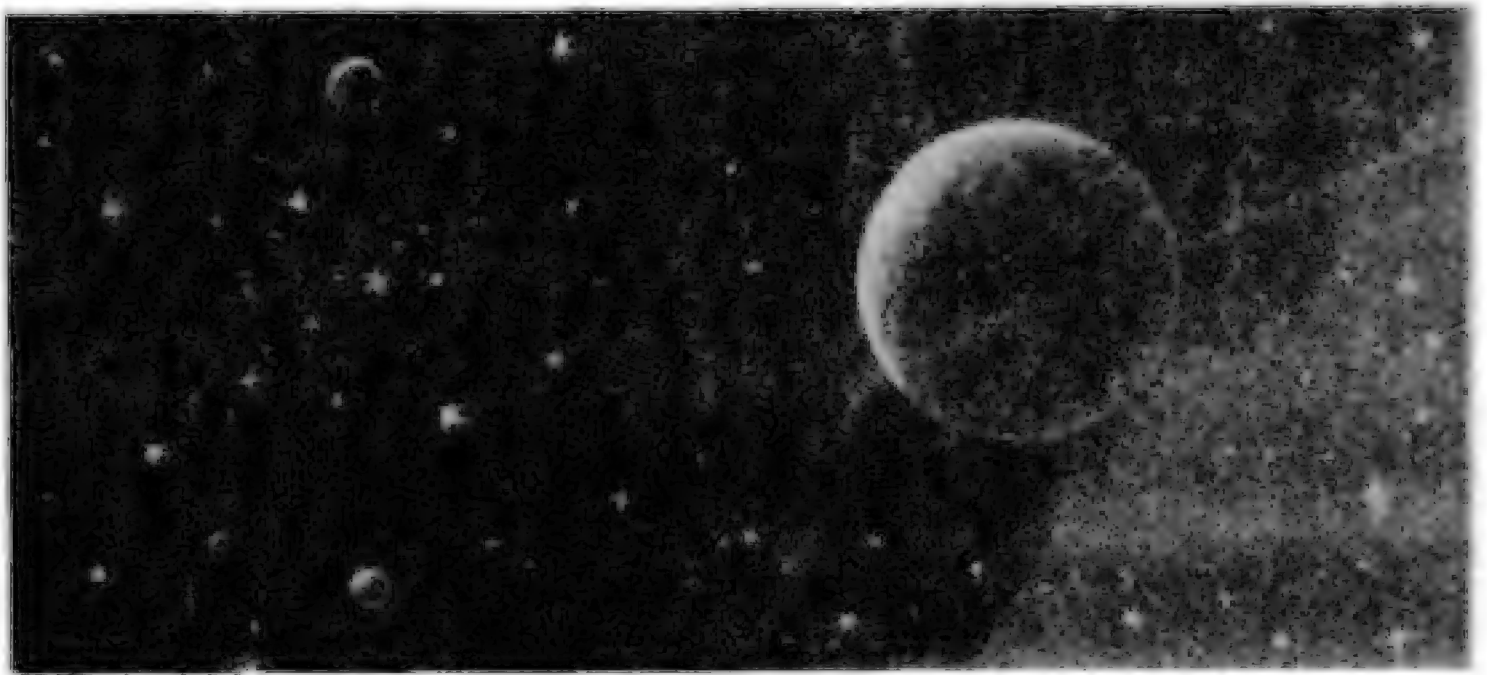
दूसरा भाग

तारा और ग्रह क्या हैं?

सूर्य एक विशाल परितप्त गोला है। हमारी पृथ्वी इसके चारों ओर चक्कर लगाती है। यद्यपि पृथ्वी से सूर्य की दूरी 15 करोड़ किलोमीटर है, तथापि वह एक अपार प्रकाश वाला गोला दिखायी देता है। किसी साफ़ दिन में यदि कोई सूर्य को एक-दो मिनट तक लगातार देखता रहे तो वह अन्धा हो जाये। सूर्य को या तो प्रात:काल, या सायंकाल ही बिना किसी भय के देखा जा सकता है – उस समय, जबकि वह क्षितिज पर कुछ नीचे ही होता है। उस समय उसकी किरणें वायु की कुछ अधिक सघनता में से होकर आती हैं और उनकी तेज़ी काफ़ी कम हो जाती हैं।

कल्पना करो कि पृथ्वी सूर्य से दूर-दूर होती जाती है, फिर भला सूर्य का आकार कैसा मालूम होगा? स्पष्ट है कि सूर्य भी छोटा ही छोटा होता जायेगा। यदि सूर्य को कई अरब किलोमीटर की दूरी से देखा जाये, तो वह एक अत्यन्त छोटा-सा गोला दीख पड़ेगा। तब उसे कितने ही समय तक क्यों न देखा जाये, देखने वाले की आँखें उसके प्रकाश से अन्धी न होंगी।

यदि सूर्य को देखने वाला उससे दूर ही दूर होता जाये तो जानते हो क्या होगा? जिस भाँति किसी

स्वच्छ आकाश वाली रात्रि में बहुत-से छोटे-छोटे तारे नज़र आते हैं, वैसे ही सूर्य भी एक साधारण तारा मालूम देगा।

हमारा सूर्य भी एक तारा है और हमें वह इस कारण बड़ा दिखायी देता है कि हमारी पृथ्वी उसके निकट है। हरेक तारा स्वयं एक सूर्य है, जो हमसे बहुत ही अधिक दूरी पर है।

तारा – यह आकाश का एक परितप्त प्रकाशग्रह है, जिसका तापमान हज़ारों डिग्री तक ऊँचा होता है। हर एक तपती हुई वस्तु प्रकाश देती है – जलती हुई मोमबत्ती की लौ प्रकाश देती है, बिजली के बल्ब के अन्दर का तपकर सफ़ेद होने वाला तार प्रकाश देता है और बादलों को बेधती हुई बिजली से भी प्रकाश निकलता है। परन्तु मोमबत्ती की लौ और बिजली के बल्ब के तार के तापमान की अपेक्षा हर तारे का तापमान कहीं अधिक ऊँचा होता है। सूर्य की अपेक्षा कुछ तारे हमसे करोड़ों और अरबों गुना अधिक दूर हैं। किन्तु वे हमें दिखायी फिर भी देते हैं – वह इसलिए कि ये विशाल परितप्त आकाशीय पिण्ड बहुत ही तेज़ चमकते हैं।

परन्तु ऐसी भी वस्तुएँ हैं जो स्वयं अपना प्रकाश नहीं देतीं, किन्तु प्रतिबिम्बित प्रकाश देती हैं।

दर्पण तो गरम नहीं होता, किन्तु यदि उसे सूर्य की ओर किया जाये, तो उसमें सूर्य की चमकीली किरणें प्रतिबिम्बित हो जाती हैं। वे किरणें भी इतनी तेज़ होती हैं कि आँखों को अन्धा कर देती हैं। उन्हें भी सीधे नहीं देखा जा सकता। सूर्य की किरणों के प्रतिबिम्ब को कई किलोमीटर की दूरी से देखा जा सकता है। इन प्रतिबिम्बित किरणों का प्रयोग युद्ध में होता है – दर्पणों द्वारा सेनाई संकेत भेजे जाते हैं।

परन्तु सूर्य की किरणें केवल दर्पण ही से प्रतिबिम्बित नहीं होती हैं; मेज़ और कॉपी से भी प्रतिबिम्बित होती हैं; पानी से भरी हुई शीशे की सुराही, दीवार पर टँगे चित्र और वृक्षों और पर्वतों से भी। दूसरे शब्दों में तुम यूं कह सकते हो कि हर वह वस्तु जिसे तुम कमरे में या सड़क पर देखते हो, उसमें से सूर्य की किरणें प्रतिबिम्बित होती हैं।

कुछ सरल प्रयोग करो। यदि तुम्हारे कमरे की खिड़कियों के किवाड़ हैं, तो उन्हें अच्छी तरह बन्द कर दो। काफ़ी उजला और चमकीला दिन होने के बावजूद भी, कमरे में अँधेरा हो गया।

आखिर अँधेरे का अर्थ क्या है? इसका अर्थ यह है

कि तुम्हारे चारों तरफ़ की वस्तुओं से प्रतिबिम्बित होने वाली सूर्य की किरणें अब तुम्हारी आँखों तक नहीं पहुँच रही हैं। मोमबत्ती जलाते ही या बिजली बत्ती का स्विच दबाते ही, फिर से सब कुछ दिखायी देने लग जाता है। पर सूर्य के प्रकाश की तो बात ही दूसरी है।

इस प्रकार हम प्रकाशहीन वस्तुओं को इसलिए देख पाते हैं कि वे सूर्य की, अथवा दूसरी किसी प्रज्वलित वस्तु की किरणों को हमारी आँखों में प्रतिबिम्बित करती हैं।

दर्पण से प्रतिबिम्बित सूर्य की किरणें हमारी आँखों को क्यों चकाचौंध कर देती हैं? ऐसी ही किरणों द्वारा प्रकाशित किसी कॉपी की ज़िल्द अथवा चारपायी पर पड़े कम्बल को, हम सुगमतापूर्वक क्यों कर देख लेते हैं?

पॉलिश की हुई सतहों वाली प्रज्जवलित वस्तुएँ किरणों को एक गुच्छे के रूप में प्रतिबिम्बित करती हैं और इसी प्रतिबिम्बित प्रकाश-पुंज के कारण हमारी आँखें चकाचौंध हो जाती हैं।

किन्तु जो वस्तुएँ ग़ैरचमकीली सतह वाली हैं, वे किरणों को हर दिशा में फैला देती हैं अर्थात् उन्हें इधर-उधर बिखरा देती हैं। अतएव किरणें प्रकाश-पुंज के रूप में आँखों तक नहीं पहुँचती हैं और इस तरह वे चकाचौंध भी नहीं करती हैं।

विश्व-अन्तरिक्ष में अँधेरे, ठण्डे आकाशीय पिण्ड हैं। ऐसे आकाशीय पिण्डों में से हमारे सबसे निकट चन्द्रमा है।

हम चन्द्रमा को क्यों देख पाते हैं? इसलिए कि चन्द्रमा की सतह से सूर्य की प्रतिबिम्बित किरणें ही हमारी आँखों में पड़ती हैं। चन्द्रमा की सतह खुरदरी और ग़ैरचिकनी अथवा ऊबड़-खाबड़ है। वह सूर्य की किरणों को काफ़ी बड़ी मात्रा में जज़्ब कर लेती है और बची हुई किरणों को इधर-उधर फैला देती है। इस प्रकार चाँद द्वारा प्रतिबिम्बित की जाने वाली सूर्य की किरणों का बहुत ही छोटा-सा भाग हम तक पहुँचता है।

यदि चन्द्रमा की सतह भी एक दर्पण की भाँति चिकनी होती तो क्या होता?

तब तो वहाँ से सूर्य एक असहनीय उज्ज्वल बिन्दु के रूप में प्रतिबिम्बित होता और इस प्रतिबिम्ब को देखना असम्भव हो जाता। परन्तु वास्तव में चन्द्रमा की सूर्य की किरणों को प्रतिबिम्बित करने की क्षमता कम है। चन्द्रमा, सूर्य की अपेक्षा 4 लाख 37 हज़ार गुना कम प्रकाश देता है।

लेकिन तुम कह सकते हो –

"फिर भी चन्द्रमा काफ़ी उज्जवल प्रकाश देता है। वह हमको एक चमकते हुए गोले अथवा हँसिये की भाँति दीख पड़ता है। चन्द्रमा स्वयं भी वस्तुओं को भलीभाँति प्रकाशित करता है – चाँदनी रात में चारों तरफ दूर तक देखा जा सकता है।"

यह सब बिल्कुल ठीक है और इसकी व्याख्या ऐसे की जाती है।

चन्द्रमा एक विशाल आकाशीय पिण्ड है। उसकी सतह करोड़ों वर्ग किलोमीटर के बराबर है। चन्द्रमा यद्यपि सूर्य-किरणों के बहुत ही छोटे भाग को पृथ्वी की ओर फेंकता है, तथापि ये सारी किरणें हमारे लिए बहुत काफ़ी सिद्ध होती है और चन्द्रमा का गोला चमकता हुआ मालूम देता है।

चाँदनी रात में तुम्हारी आँखों में सूर्य की किरणें दो बार प्रतिबिम्बित होती हैं – पहली बार तो वे चन्द्रमा की सतह से छिटककर आती हैं और दूसरी बार उन वस्तुओं से प्रतिबिम्बित होती हैं जिन्हें वे प्रकाशित करती हैं।

सूर्य की प्रतिबिम्बित किरणों द्वारा प्रकाशमान होने वाले आकाशीय पिण्डों को ग्रह कहते हैं।

चन्द्रमा एक ग्रह है। और चूँकि वह पृथ्वी के चारों ओर घूमता है, अतएव उसे पृथ्वी का उपग्रह कहते हैं।

क्या हमारी पृथ्वी ग्रह है? हाँ, यह भी ग्रह है। प्रकाश को प्रतिबिम्बित करने की इसकी क्षमता चन्द्रमा से छः गुना अधिक है। यदि हम पृथ्वी को चन्द्रमा पर से देख सकें तो चन्द्रमा की अपेक्षा हमें इसके गोले का आकार लगभग पन्द्रह गुना अधिक बड़ा और लगभग अस्सी गुना अधिक चमकीला दिखायी देगा।

पृथ्वी के प्रकाश की चमक अथवा उज्ज्वलता का वैज्ञानिकों ने किस तरह मापन किया? यह कहने लायक़ बात है।

नया चाँद निकलता है तो वह आकाश में चमकते हुए एक पतले हँसिये के रूप में प्रतीत होता है। तब सूर्य द्वारा प्रकाशित न किया जाने वाला चन्द्रमा का शेष भाग थोड़ी-थोड़ी कोमल रुपहली झलक देता हुआ मालूम पड़ता है। इस झलक को 'धूमिल प्रकाश' कहते हैं।

चन्द्रमा के इस 'धूमिल प्रकाश' अथवा इसकी 'धूमिल झलक' का कारण यह है कि पृथ्वी चन्द्रमा पर प्रकाश डालती है और चन्द्रमा अपनी सतह पर पड़ती हुई पृथ्वी की इन किरणों को वापस फेंकता है। यह 'धूमिल प्रकाश' सूर्य की दो बार प्रतिबिम्बित होने वाली किरणें हैं। पहली बार तो वे पृथ्वी पर से प्रतिबिम्बित होती हैं और दूसरी बार चन्द्रमा की सतह पर से।

हँसिये की शक्ल में दिखायी देने वाला चन्द्रमा का भाग जब धीरे-धीरे बढ़ता है, तब उसका उज्ज्वल प्रकाश उस कोमल 'धूमिल प्रकाश' को ढँक लेता है और फिर वह हमें नज़र नहीं आता है।

इसी 'धूमिल प्रकाश' की उज्ज्वलता का मापन करके खगोलविज्ञानियों ने यह पता लगाया कि पृथ्वी कितनी शक्ति से चमकती है।

चन्द्रमा पर से निरीक्षण करने वाले किसी निरीक्षक को पृथ्वी एक अत्यन्त ही सुन्दर आकाशीय प्रकाशग्रह जैसी मालूम देगी।

सौर जगत में सूर्य के चारों ओर घूमने वाले ग्रहों की सूची उनके स्थान के क्रमानुसार यह है : बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल – ये भीतरी ग्रह कहे जाते हैं; बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेप्चून और प्लूटो – इन्हें बाहरी ग्रह कहते हैं।

बुध, शुक्र और प्लूटो को छोड़कर बाक़ी सब ग्रहों के अपने उपग्रह भी हैं।

यहाँ पर केवल बड़े ग्रहों के नाम लिये गये हैं। उनके अतिरिक्त असंख्य छोटे-छोटे ग्रह हैं, जिन्हें 'एस्टेरॉयड' कहते हैं। एस्टेरॉयड, भीतरी ग्रहों को बाहरी ग्रहों से अलग करते हैं।

पृथ्वी से चन्द्रमा तक

लोहे और चुम्बक को एक दूसरे की ओर आकर्षित होते हुए तो शायद तुमने देखा ही होगा। इस क्रिया में जो शक्ति काम करती है, उसे 'मैगनेटिज़्म' अथवा चुम्बकीय शक्ति कहते हैं।

परन्तु केवल लोहा और चुम्बक ही नहीं, विश्व की सभी वस्तुएँ एक दूसरी को आपस में खींचती हैं। विश्वव्यापी गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण ही ऐसा होता है। छोटी-छोटी वस्तुओं में संसार की गुरुत्वाकर्षण शक्ति को देखना कठिन है – यद्यपि वे एक दूसरे को आकर्षित करती हैं, किन्तु यह आकर्षण-शक्ति बहुत ही कम होती है।

परन्तु पिण्डों का जितना ही अधिक भार होता है, उतना ही उनका आपसी आकर्षण भी अधिक होता है।

आकाशी प्रकाशग्रह विशाल होते हैं। उनकी आकर्षण शक्ति भी बहुत अधिक होती है चाहे वे एक दूसरे से कितनी ही दूर क्यों न हों। विश्व की गुरुत्वाकर्षण शक्ति हर दूरी पर कार्य करती है, किन्तु यह स्पष्ट है कि जैसे-जैसे पिण्डों के बीच की दूरी बढ़ती जाती है, वैसे ही शक्ति कम होती जाती है।

पृथ्वी से चन्द्रमा की दूरी 3 लाख 84 हज़ार किलोमीटर है, किन्तु विश्व की यह गुरुत्वाकर्षण शक्ति चन्द्रमा को पृथ्वी के समीप रोके हुए है – अरबों मोटी-मोटी फ़ौलादी रस्सियाँ भी यह कार्य करने में असमर्थ हैं। अतएव चन्द्रमा विश्व-अन्तरिक्ष में उड़कर दूर नहीं जा सकता। वह सदा पृथ्वी के चारों ओर घूमता रहता है।

चन्द्रमा, पृथ्वी का उपग्रह है। आकाशीय प्रकाशग्रहों से अपना परिचय हम इसी से प्रारम्भ करेंगे।

हमारी पृथ्वी से चन्द्रमा तक की 3 लाख 84 हज़ार किलोमीटर की दूरी कोई बहुत बड़ी दूरी नहीं है। हमारे पास ऐसे यात्री-वायुयान हैं जो एक घण्टे में 1,000 किलोमीटर की उड़ान करते हैं। ऐसे वायुयानों के लिए 3 लाख 84 हज़ार किलोमीटर की दूरी कुछ भी नहीं है। हमारे पास ऐसे वायुयान हैं जो एक घंटे में 1,000 किलोमीटर की दूरी तय करते हैं। ऐसे वायुयानों के लिए 3 लाख 84 हज़ार किलोमीटर की दूरी कुछ भी नहीं है।

आओ, गणना करें। 3 लाख 84 हज़ार किलोमीटर को 1,000 किलोमीटर से भाग देने पर हमें उड़ान के 384 घण्टे मिलेंगे, अर्थात् 16 रात-दिन। हमें इसके लिए पर्याप्त खाने-पीने की सामग्री और मुख्यत: पेट्रोल संचित करने की आवश्यकता है, ताकि वह सब कुछ हमारे जाने और वापस लौटने के लिए काफ़ी हो।

हम एक काफ़ी बड़े तथा लम्बे-चौड़े वायुयान में बैठते हैं। जो कुछ भी आवश्यक है, वह उसमें लाद दिया गया है। कल्पना करो कि विश्व के शून्य में पहले अनुसन्धानकर्त्ताओं की यात्रा कितनी मनोहर होगी!

वायुयान ठीक ऊपर जा रहा है। वह देखो, ऊँचाई बताने वाले यन्त्र की सुई 5, 10, 15 किलोमीटर बता रही है... पृथ्वी पर की वस्तुएँ छोटी-छोटी होती जा रही हैं। नदियाँ पतले-पतले और टेढ़े-मेढ़े धागों

की भाँति मालूम दे रही हैं और जंगल धुँधले धब्बों जैसे।

परन्तु यह क्या हुआ? हमारा वायुयान अब और ऊपर नहीं जा रहा है। उसके इंजन पूरी शक्ति से काम कर रहे हैं, वह और ऊपर जाने की भरसक कोशिश कर रहा है, मगर एक जगह ही जैसे कि जमकर रह गया है।

"क्या बात है?" हम लोग चिल्लाकर चालक से पूछते है?

"वायु का घनत्व बहुत कम हो गया है। यहाँ वायुयान ऊपर जाने की पूरी शक्ति नहीं पा रहा है," चालक ने उत्तर दिया।

"तो आगे तो और भी बुरी हालत होगी!" हम सोचते हैं, "क्योंकि अब तो हवा ख़त्म हो रही है और बिना वायु का शून्य अन्तरिक्ष आ रहा है। उस अन्तरिक्ष में वायुयान का उड़ पाना तो सम्भव ही नहीं है. .. हम लोगों ने पहले ही इस बात को क्यों नहीं सोचा-समझा? अब तो जल्दी से नीचे लौट चलना चाहिए, इस असफल प्रयास की हम किसी से भी चर्चा नहीं करेंगे!..."

तुम हँसोगे और सोचोगे कि लेखक ने खूब लम्बी-चौड़ी हाँकी है। क्या ऐसे भी भोले-भाले लोग हो सकते हैं, जो हवाई जहाज़ में बैठकर चन्द्रमा तक पहुँचने की सोच सकते हैं?

तुम्हारा ऐसा सोचना उचित है। शायद तुम्हें मालूम है कि हवाई जहाज़ में नहीं, किसी दूसरी चीज़ में बैठकर चन्द्रमा तक पहुँचा जा सकता है। तुम इस चीज़ को रॉकेट कहते हो। यह सच है कि केवल रॉकेट द्वारा ही लोग विश्व के अन्तरिक्ष में यात्रा कर सकेंगे, क्योंकि केवल रॉकेट ही गुरुत्वाकर्षण की ज़ंजीर को तोड़ सकता है।

'गुरुत्वाकर्षण की ज़ंजीर' का क्या अर्थ है?

तुम ज़ोर लगाकर पृथ्वी से ऊपर की ओर उछलते हो, किन्तु एक ही सेकण्ड के बाद अपने को फिर पृथ्वी पर पाते हो। खिलाड़ी 'हैमर' (लोहे का गोला) फेंकता है और यह 'हैमर' वृत्तांश में बीसियों मीटर तैरता हुआ क्रीड़ा-क्षेत्र में जा गिरता है। विमान-बेधियों ने शत्रु के विमान को निशाना बनाया – गोला तीन-चार किलोमीटर ऊपर उठा और फिर उसके टुकड़े पृथ्वी पर वापस आ गिरे... कहने का अर्थ यह है कि पृथ्वी सभी वस्तुओं को अपनी ओर खींचती है।
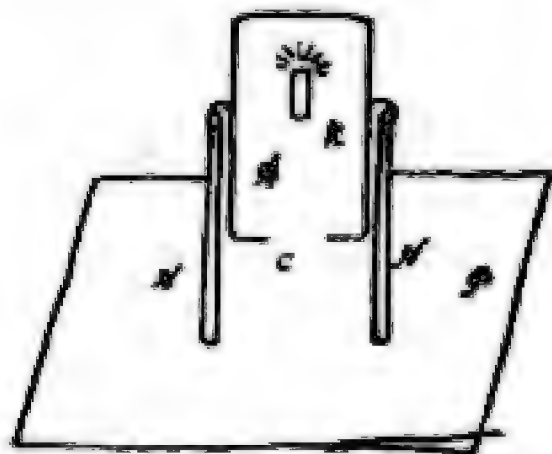
किबालचिच कारावास में अपने मृत्युदण्ड के पहले बनाया गया राकेट का नमूना

पहले लोग गुरुत्वाकर्षण की ज़ंजीर को तोड़ने में विश्वास नहीं करते थे। अस्सी वर्ष पहले प्रसिद्ध फ्रांसीसी खगोलविज्ञानी फ्लम्मारियोन ने क्षुब्ध होकर मंगल ग्रह के विषय में लिखा : "यह एक ऐसा नया संसार है जहाँ कभी कोई कोलम्बस नहीं पहुँच पायेगा..."

परन्तु उन्हीं वर्षों में रूसी क्रान्तिकारी निकोलाई इवानोविच किबालचिच के मस्तिष्क में ऐसे रॉकेट का विचार आया जो मनुष्य को ऊपर ले जा सकता है। सन् 1881 में ज़ार

की सरकार ने उसे ज़ार अलेक्सान्द्र द्वितीय की हत्या करने के प्रयत्न के अभियोग में मृत्युदण्ड का फ़ैसला सुनाया। किबालचिच मृत्यु के कुछ दिनों पहले तक कारावास में बैठा हुआ वैज्ञानिक समस्याओं के विषय में सोचता रहा। उन्हीं दिनों उसने इस रॉकेट का चित्र खींचा जो तुम यहाँ चित्र में देख रहे हो। फिर उसने इसका वर्णन भी किया। परन्तु किबालचिच को प्राणदण्ड देने के बाद ज़ार के अफ़सरों-पदाधिकारियों ने इस चित्र को अभिलेखागार में रख दिया था और केवल महान अक्टूबर क्रान्ति के बाद ही इसका पता चला।

बहुधा लोग ऐसा सोचते हैं। कि रॉकेट चलते समय हवा को पीछे धकेलता है, अतएव उसे गति मिलती है। परन्तु यह ठीक नहीं है। वायु में उड़ता हुआ हवाई जहाज़ अपने उड़ने के लिए हवा का ही
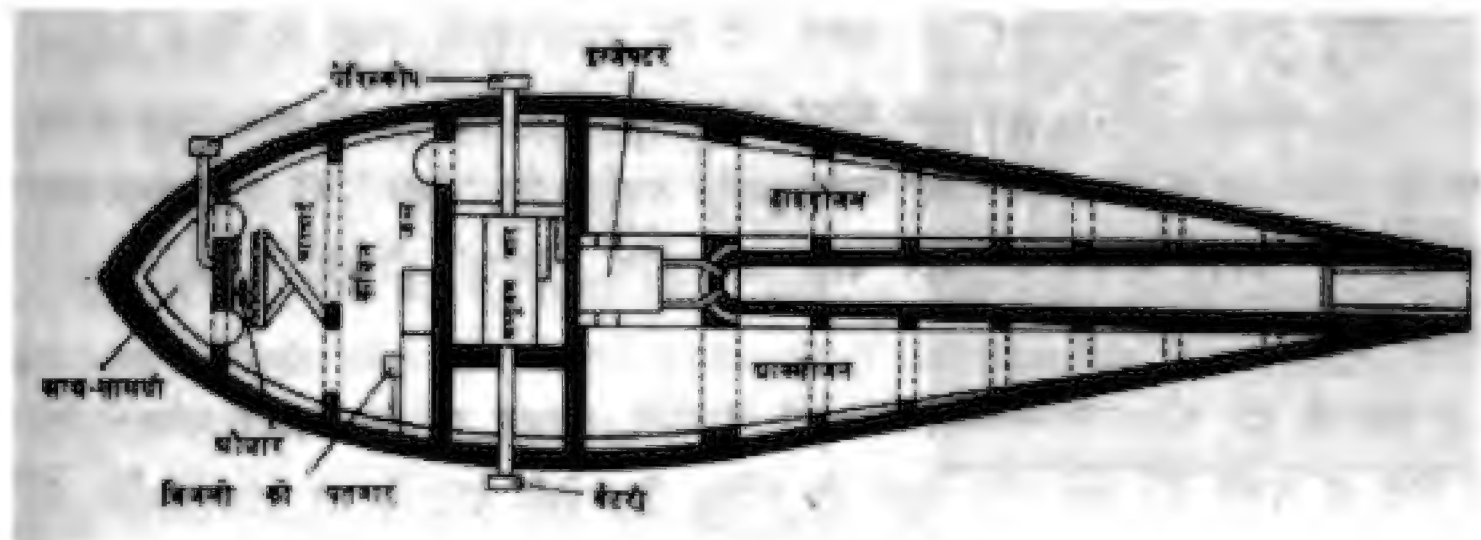
अन्तग्रहीय राकेट का एक नमूना

सहारा लेता है। किन्तु रॉकेट को तो हवा की प्रतिक्रिया द्वारा उड़ने में बाधा ही पहुँचती है। रॉकेट में बारूद अथवा अथवा कोई और ईंधन जलता है। इसके जलने से गैस प्राप्त होती है। यह गैस रॉकेट से पीछे की ओर बड़ी तेज़ी से निकलती है और इस तरह वह रॉकेट को आगे की ओर धकेलती है। इसे ही 'जेट' गति कहते हैं। तुम्हें मालूम ही है कि आजकल बहुत अधिक ऊँचाई पर व काफ़ी तेज़ गति से उड़ने वाले जेट-विमान हैं।

विख्यात रूसी वैज्ञानिक कोन्स्तातिन एदुआर्दोविच त्सीओल्कोव्स्की ने अपना सारा दीर्घ जीवन ही अन्तरग्रहीय यात्राओं के विज्ञान का निर्माण करने में लगा दिया। 1903 में उसने पहले अन्तरग्रहीय जहाज़ का डिज़ाइन और उसके बारे में अपनी गणना प्रकाशित की। बाद में उसने ऐसे बहुस्तरीय रॉकेट के निर्माण की रूपरेखा तैयार की, जो पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण पर विजय पा सकता था। यह रॉकेट कई भिन्न-भिन्न भागों से बना हुआ है। शुरू में सबसे निचले भाग में ईंधन जलता है और इससे रॉकेट ऊपर उठता है, किन्तु काफ़ी तेज़ गति से नहीं। जब नीचे के भाग का सारा ईंधन जल जाता है, तब वह अलग होकर पृथ्वी पर गिर पड़ता है। फिर दूसरा भाग कार्य करने लगता है और इससे अब कुछ हल्का हो गया रॉकेट अधिक तेज़ी से आगे बढ़ता है। इस दूसरे भाग के भी गिर जाने के बाद फिर तीसरा भाग अपना कार्य आरम्भ कर

देता है और रॉकेट की गति और भी तेज़ हो जाती है... सबसे आख़िरी भाग इतनी तेज़ गति से बढ़ सकता है कि उसके पृथ्वी पर गिरने का प्रश्न ही बाक़ी नहीं रह जाता। इस तरह हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पृथ्वी के आकर्षण की ज़ंजीर केवल बहुत ही तेज़ गति से तोड़ी जा सकती है।

ऊपर की ओर उछलने वाला पृथ्वी पर आ गिरता है, 'हैमर' फेंकने वाले का 'हैमर' क्रीड़ा-स्थल में आ गिरता है। गोले के टुकड़े पृथ्वी पर गिरकर बिखर जाते हैं। ऐसा क्यों होता है? वह केवल इसलिए कि उनकी गति इतनी अधिक नहीं होती कि वे विश्व-अन्तरिक्ष में उड़ते रह सकें।

परन्तु ज़रा इस बात पर भी ध्यान दो कि उछलने वाला पृथ्वी से केवल दो-एक मीटर ऊपर उछला, 'हैमर' दस-बीस मीटर ऊपर उठा और गोले ने तो कुछ किलोमीटर तक की ऊँचाई प्राप्त की। इनमें यह अन्तर क्यों? इसलिए कि 'हैमर' की गति कूदने वाले की गति से काफ़ी अधिक है और गोले की गति 'हैमर' की गति से बहुत गुना अधिक है।

सबसे दूर की मार करने वाली तोपों के गोले लगभग दो किलोमीटर प्रति सेकण्ड की गति से चलते हैं। यह गति बहुत ही अधिक है। ऐसी गति से तो पाँच मिनट में अमृतसर से दिल्ली तक पहुँचना सम्भव है। ऐसा होते हुए भी यह गति इतनी अधिक नहीं है कि गोला पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र से बाहर निकल सके। वायुमण्डल में एक विशाल वृत्तांश बनाते हुए वह पृथ्वी पर आ गिरता है।

त्सीओल्कोव्स्की ने गणना की कि यदि गोले को 8 किलोमीटर प्रति सेकण्ड की गति से छोड़ा जाये, तो वह नीचे नहीं गिरेगा, बल्कि वह पृथ्वी का कृत्रिम उपग्रह बनकर पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाने लगेगा। पृथ्वी के पहले कृत्रिम उपग्रह – 'स्पुतनिक' – इसी गति से छोड़े गये। इस गति को 'प्रथम कॉस्मिक' अथवा 'चक्कर काटने वाली गति' कहते हैं।

किन्तु यदि रॉकेट को द्वितीय कॉस्मिक गति से – अर्थात् 11.2 किलोमीटर प्रति सेकण्ड की गति से – छोड़ा जाये तो वह पृथ्वी से अलग हो जायेगा और फिर उसे चन्द्रमा, मंगल अथवा किसी दूसरे ग्रह की ओर भेजना सम्भव होगा।

अब हम यह कल्पना करते हैं कि चन्द्रमा की प्रथम यात्रा का दिन आ ही पहुँचा है। लोग चन्द्रमा की प्रथम यात्रा के लिए रवाना होते हैं और हम तुम्हारे साथ प्रथम अन्तरग्रहीय यात्री-जहाज़ में उड़ रहे हैं।

हमारा रॉकेट-जहाज़ वायुमण्डल की सीमा तक पहुँचने के बाद भी आगे बढ़ता जायेगा। वह तब भी अन्तरिक्ष में रुकेगा नहीं। इसके विपरीत, उसकी गति बढ़ जायेगी। कारण कि वायु की प्रतिक्रिया अब हमारे जहाज़ का विरोध नहीं करेगी। अब हमें केवल गति को धीरे-धीरे बढ़ाने की और तेज़ धक्के या धचके से बचने की

आवश्यकता है। याद करो कि रेलगाड़ी के यात्रियों के साथ क्या होता है। जब गाड़ी एकाएक तेज़ी से आगे को भागने लगती है तो यात्री ज़ोर से पीछे की ओर ढह पड़ते हैं।

हमारे रॉकेट का संचालन रेडियो के संकेतों द्वारा पृथ्वी से हो रहा है। अन्तरग्रहीय जहाज़ के यन्त्र इन संकेतों का आज्ञा पालन कर रहे हैं और रॉकेट क्रम से अपनी गति बढ़ाता हुआ अपने निश्चित मार्ग में उड़ा चला जा रहा है।

हमारा रॉकेट अधिकाधिक गति से आगे चला जा रहा है। पृथ्वी बहुत पीछे छूट गयी है। रॉकेट 25 हज़ार किलोमीटर प्रति घण्टे की रफ़्तार से उड़ा चला जा रहा है। यह तो बहुत ही तेज़ गति है! इससे यात्रियों को कोई हानि तो न पहुँचेगी? बिल्कुल ही नहीं। यदि कोई गति हर समय एक जैसी रहती है तो मनुष्य को गति का भान नहीं होता है। वह गति चाहे कितनी ही अधिक क्यों न हो। ख़तरनाक है केवल आगे को ज़ोर से धचका लगना अथवा ऐसे जहाज़ का अचानक रुक जाना।

अन्त में रॉकेट की गति गणना के अनुसार हो गयी और इंजनों ने एकाएक कार्य करना बन्द कर दिया, क्योंकि हमारे लिए ईंधन की बचत करना आवश्यक है। अब तो हमारा रॉकेट-जहाज़ लगभग समान गति से वैसे ही चलने लगा, जैसे कि किसी पॉलिश किये हुए शीशे की भाँति चमकती बर्फ़ की सतह पर कोई तेज़ी से स्केटिंग करता है।

पर स्केटिंग करने वाले का तो हवा विरोध करती है। उसकी गति स्केट्स के बर्फ़ पर रगड़ खाने से भी कम हो जाती है। बर्फ़ के बहुत ही चिकने होने पर भी ऐसा होता है।

परन्तु शून्य में भला कौन सी वस्तु हमारे रॉकेट का विरोध करती है? यह वस्तु है विश्वव्यापी गुरुत्वाकर्षण। यद्यपि रॉकेट पृथ्वी से दूर पहुँच गया है, तथापि वह उसके आकर्षण से पूर्णतः मुक्त नहीं हो चुका है। कारण कि विश्वव्यापी गुरुत्वाकर्षण की शक्ति अपना प्रभाव तो डालती ही रहती है। यह सही है कि जैसे-जैसे दोनों वस्तुएँ एक-दूसरे से दूर होती है, यह आकर्षण-शक्ति भी कम होती जाती है। रॉकेट जब शुरु-शुरू में पृथ्वी से ऊपर उठा तो पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति का बहुत अधिक प्रभाव था। अब वह प्रभाव पहले से कई गुना कम है। किन्तु आकर्षण अभी भी क़ायम है और इसी कारण रॉकेट की गति में बाधा हो रही है।

यदि रॉकेट-जहाज़ सूर्य और पृथ्वी की आकर्षण-सीमा के बाहर चला गया होता तो वह अन्तरिक्ष में सदियों व हज़ारों वर्ष तक तीव्र गति से चक्कर लगाता रहता। उसका यह क्रम तब तक जारी रहता जब तक कि वह किसी दूसरे आकाशीय पिण्ड द्वारा आकर्षित होकर उसके समीप न पहुँच जाता।

फिर भी चन्द्रमा तक की हमारी सारी यात्रा में लगभग 36 घण्टे लगते हैं – इस समय में रॉकेट का पृथ्वी से उठकर धीरे-धीरे ऊपर जाना, फिर तेज़ी पकड़ना और चन्द्रमा पर उतरने के समय उसकी गति का धीमा हो जाना, सभी कुछ शामिल है।

यात्री लोग जहाज़ के अगले भाग में बनी गोल खिड़की से देख रहे हैं। रॉकेट की खिड़कियाँ एक विशेष प्रकार के मोटे शीशे की बनी हैं, जो इस्पात से भी कई गुना अधिक मज़बूत है। सभी निकट आते हुए चन्द्रमा का सुन्दर दृश्य देखने को लालायित हैं।

चलो हम भी खाली खिड़की के पास चलते हैं। यहाँ तो चन्द्रमा की सतह का मानचित्र भी दीवार

पर हमसे क़रीब ही लगा हुआ है। यह तो बहुत ही अच्छा हुआ! हम लोग चन्द्रमा का निरीक्षण करेंगे और मानचित्र में दिये हुए स्थानों को ढूँढ़ेंगे।

हम चन्द्रमा को ध्यानपूर्वक देखते हैं। जब हम इसे पृथ्वी से देखते थे तो यह छोटा-सा लगता था। मगर अब तो कहीं अधिक बड़ा दिखायी दे रहा है किन्तु ऐसा होना तो स्वाभाविक ही है। अब हम उसके समीप जो आते जा रहे हैं। और अपनी उड़ान का लगभग आधा मार्ग तय कर चुके हैं।

चन्द्रमा अभी भी चाँदी के एक विशाल सिक्के की भाँति समतल दीख पड़ रहा है। उस पर काले धब्बे भी नज़र आ रहे हैं। किन्तु चन्द्रमा के समीप आने के साथ-साथ उसका उभार स्पष्ट होता जा रहा है – बीच वाला भाग जैसे कि थोड़ा-थोड़ा ऊपर उठता जा रहा है और किनारे पीछे हटते जा रहे हैं। और लो! अब तो हमें इसका रूप बिल्कुल स्पष्ट दिखायी देने लगा है – यह तो काले शून्य अन्तरिक्ष में लटकता हुआ एक अत्यन्त विशाल गोला है, और उसके पीछे अपरिमेय दूरी तक हज़ारों तारे जगमगा रहे हैं।

लो हमें अभी एक और दिलचस्प निरीक्षण करने में सफलता मिली – वह यह कि तारे आकाश में टिमटिमा नहीं रहे हैं, उज्ज्वल बिन्दुओं की भाँति नज़र आ रहे हैं। उनका व्यास इतना छोटा है कि उसे नापना सम्भव नहीं है। केवल पृथ्वी से पर्यवेक्षण करने वालों को ही तारे टिमटिमाते-से लगते हैं।

सम्भवतः ग्रीष्मकाल के किसी अत्यधिक उष्ण दिन में तुमने यह अनुभव किया होगा, कि वायु पारदर्शक लहरों की भाँति हिलती-डुलती है तुम्हें लगा होगा कि उसके पीछे जो वस्तुएँ हैं वे काँप-सी रही हैं और उनकी बाह्य रेखाएँ कुछ-कुछ फैली हुई सी हैं।

तारों को देखने पर बिल्कुल ऐसी ही अनुभूति होती है। पृथ्वी के ऊपर की वायु कभी भी बिल्कुल शान्त नहीं होती है। इसी कारण तारे जैसे कि आकाश में फैल जाते हैं और वास्तविक की अपेक्षा कहीं अधिक बड़े मालूम पड़ते हैं। किन्तु ऐसी दशा में वे कम उज्जवल ज़रूर नज़र आते हैं।

रॉकेट की खिड़की से तारों के संसार का जो दृश्य हम देख रहे हैं, वह अद्भुत है। ऐसी कोई भी वस्तु ध्यान में नहीं आती, जिससे हम इसकी सुन्दरता की तुलना करें। परन्तु हम सभी अपना पूरा ध्यान चन्द्रमा के धीरे-धीरे बढ़ते हुए गोले ही पर लगाये हुए हैं।

हाँ, हम व्यर्थ ही में इस असामान्य यात्रा पर नहीं चल पड़े हैं – यहाँ तो हर क्षण ही हमें कोई न कोई नयी बात मालूम हो रही है।

जब तुम खाली आँखों से पृथ्वी पर से चन्द्रमा को देखते हो तो तुम्हें उस पर कुछ काले धब्बे दिखायी देते हैं। दूरबीन के आविष्कार के समय तक लोग यह अच्छी तरह नहीं समझ सकते थे कि चन्द्रमा पर ये काले धब्बे कैसे हैं, और लोग इनकी भिन्न-भिन्न तथा ऊटपटांग व्याख्याएँ करते थे। उदाहरणार्थ, बहुत-से लोगों ने मनुष्य के चेहरे के रूप में चन्द्रमा की कल्पना की। चन्द्रमा के पुराने समय के चित्रों में उसकी नाक, आँखें तथा मुँह तक भी दिखाया जाता था।

रॉकेट-जहाज़ की खिड़की से हमें पर्वत-श्रेणियाँ नज़र आ रही हैं। उनकी चोटियाँ सूर्य की किरणों में जैसे नहायी-सी हुई है। यहाँ हमें बहुत ही अजीब-अजीब पर्वत दिखायी दे रहे हैं। हमारी आँखें पृथ्वी पर ऐसे पर्वत देखने की अभ्यस्त नहीं हैं – ये हैं क्रेटर और सर्क।

चन्द्रमा के क्रेटर हमारी पृथ्वी के ज्वालामुखी पर्वतों के मुँहों से मिलते-जुलते तो हैं, परन्तु वे कई
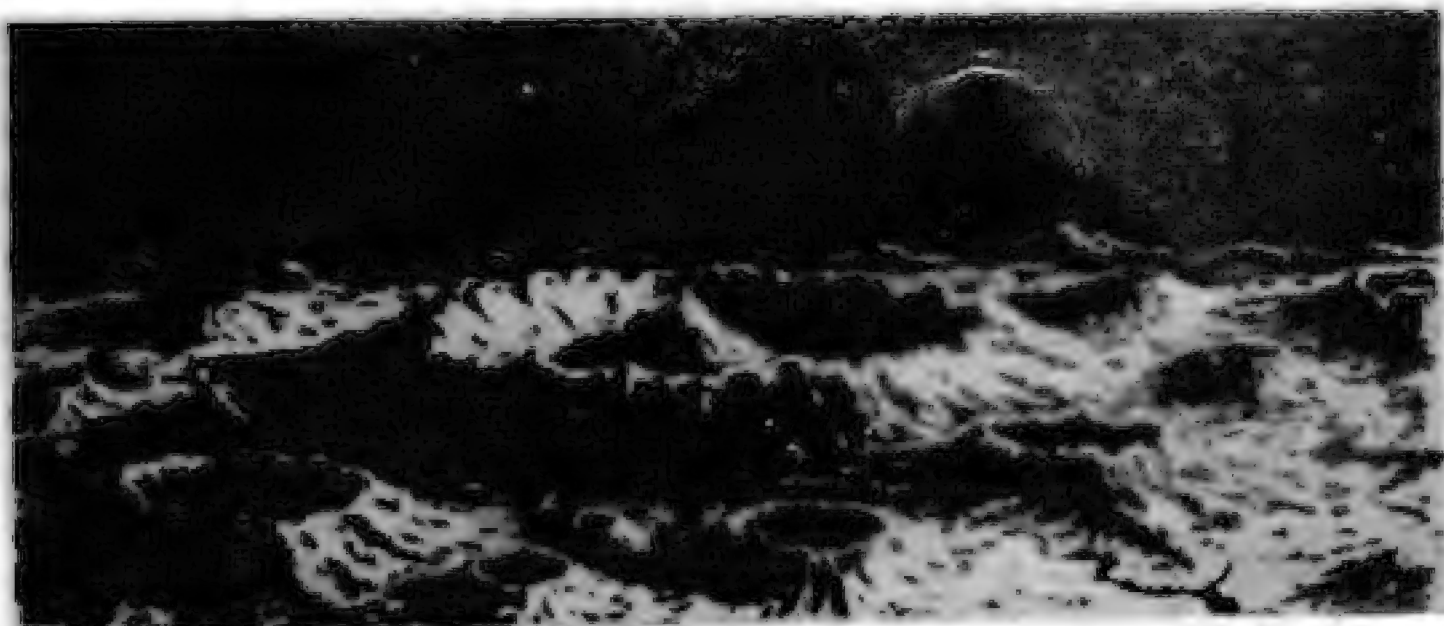
चन्द्रमा के क्रेटर

गुना बड़े हैं। ये क्रेटर अजीब आकार के पर्वत हैं। ये ऐसे लगते हैं कि जैसे इनकी चोटियाँ काट दी गयी हों और उनकी जगह ले ली हो बड़े-बड़े गोल गड्ढों ने। बीच में कहीं-कहीं नुकीली पहाड़ियाँ भी हैं।

सर्क, क्रेटरों से भी कहीं अधिक बड़े हैं। आकार में वे गोल मैदान ही दीख पड़ते हैं जो गोल छल्ले के आकार के ऊँचे बाँध द्वारा घिरे हुए हों। इन सर्कों में कुछ तो इतने बड़े हैं कि उनके अन्दर स्वीट्ज़रलैण्ड जैसे छोटे-छोटे प्रदेशों का समा जाना बिल्कुल सम्भव है।

आओ, दिखायी देने वाले क्रेटरों तथा सर्कों को गिनने का प्रयत्न करें।

एक, दो, तीन... दस... बीस... पचास...

बेकार होगी हमारी यह कोशिश – वे तो हज़ारों हैं! परन्तु सभी क्रेटर तथा सर्क चन्द्रमा के मानचित्र पर बड़ी सूक्ष्मता से अंकित हैं और हरेक के समीप उसका नाम लिखा हुआ है।

हम पढ़ते हैं – 'कॉपरनिकस' क्रेटर, 'गैलीलिओ' क्रेटर 'टोलेमी' सर्क इत्यादि। क्रेटरों तथा सर्कों में से अधिकांश को खगोलविज्ञानियों तथा दूसरे वैज्ञानिकों के नाम दिये गये हैं।

परन्तु यह क्या हुआ? रॉकेट-जहाज़ में अब पहले जैसी शान्ति नहीं रही – रॉकेट विस्फोटों के कारण हिल रहा है और ये विस्फोट अब तो ठीक हमारे पैरों के नीचे ही सुनायी दे रहे हैं। मगर हम इसका कारण जानते हैं। रॉकेट के अगले भाग के इंजनों को चालू कर दिया गया है – जहाज़ की गति को कम करने के लिए यह आवश्यक है। यदि रॉकेट 2.4 किलोमीटर प्रति सेकण्ड की चाल से (यह चाल रॉकेट के चन्द्रमा के समीप आने के समय की है) चन्द्रमा से जा टकराया, तो वह चूर-चूर हो जायेगा।

रॉकेट की चाल कम होती जा रही है और हम लोग ज़ोर से आगे की ओर खिंचते जा रहे हैं। हम रॉकेट की दीवारों में लगी हुई मोटी पेटियों को कसकर पकड़ लेते हैं।

अब तो चन्द्रमा चमक नहीं रहा है – वह एक विशाल काले बादल की भाँति हमारी ओर आता जा रहा है। आकाश का अधिकतर भाग अब हमारी आँखों के सामने से हटता जा रहा है।
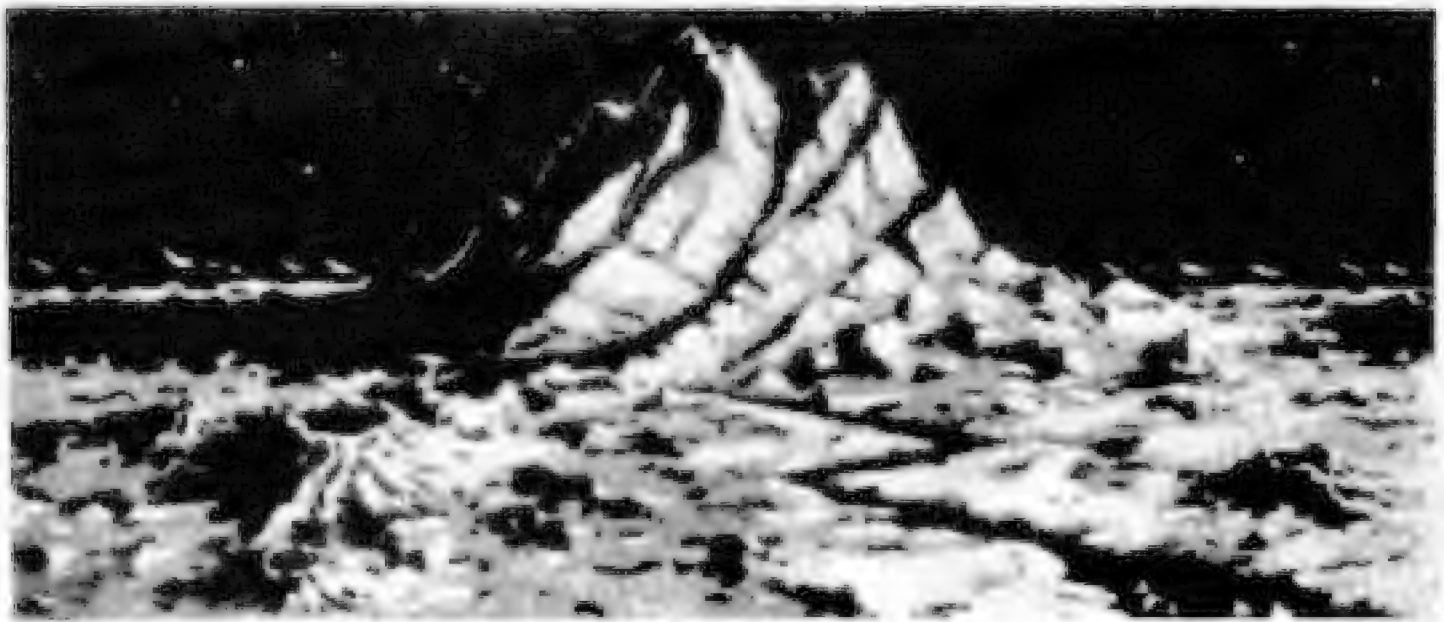
चन्द्रमा स्थित पीको पर्वत

हम सब डर महसूस कर रहे हैं – चन्द्रमा पर प्रथम यात्री-जहाज़ उतरेगा कैसे?

चन्द्रमा की सतह अब धीरे-धीरे हमारी ओर आती जा रही है। लो, अब तो वह ठीक हमारे पैरों के नीचे ही आ गयी है। चन्द्रमा का निरीक्षण करने के लिए अब यह आवश्यक है कि हम जहाज़ के बिचले भाग में जायें और केबिन के फ़र्श पर बनी खिड़कियों द्वारा उसे देखें।

रॉकेट अब हमें चन्द्रमा की सतह पर उतरता नज़र आ रहा है।

लो, अब तो हम चन्द्रमा से केवल कुछ किलोमीटर ही की ऊँचाई पर हैं। हमारे पैरों के नीचे विशाल काला मैदान है जो कहीं-कहीं दरारों से कटा हुआ है और इनी-गिनी छोटी-छोटी पहाड़ियों से ढँका हुआ है।

लाउडस्पीकर से कप्तान की आवाज़ सुनायी देती है – "साथियो, हमारे नीचे 'तूफ़ानों का महासागर' है! उसी के ऊपर हम उतरेंगे। उतरने के लिए तैयार हो जाओ! पेटियों को ज़ोर से पकड़े रहना!"

तूफ़ानों का महासागर!... मालूम देता है कि हम पानी में उतरेंगे? किन्तु ऐसा प्रतीत तो नहीं होता क्योंकि नीचे तो सूखा मैदान है और कहीं भी कोई झील अथवा नदी दिखायी नहीं पड़ रही है।

यात्रियों में से एक हैं पके बालों वाले खगोलविज्ञान के प्रोफ़ेसर। वे समझा रहे हैं –

"खगोलविज्ञानियों ने दूरबीन जब चन्द्रमा की ओर की तो उन्होंने देखा कि चन्द्रमा तो पूरा एक संसार है – ऐसा संसार जहाँ पर्वत-श्रेणियाँ, क्रेटर और विशाल काले क्षेत्र हैं। ये काले क्षेत्र – अर्थात् चन्द्रमा के मैदान – उस समय के खगोलविज्ञानियों को समुद्र व महासागर जैसे मालूम पड़े। इसलिए चन्द्रमा के मानचित्र पर ऐसे नाम आ गये : 'तूफ़ानों का महासागर', 'वर्षा का समुद्र', 'स्पष्टता का समुद्र', भीषण दलदल'... परन्तु वास्तव में चन्द्रमा पर जल है ही नहीं। अब तो हम अपनी आँखों से यह देखेंगे भी।"

अब तो हमारा रॉकेट सचमुच में ही चन्द्रमा की सतह के बिल्कुल समीप आ गया है। रॉकेट में से

टेक लेने वाले पाये निकल आये हैं – रॉकेट उन्हीं पर नीचे उतरेगा और इन पायों में लगे हुए मज़बूत स्प्रिंग आघात का ज़ोर कम करेंगे। ज़ोर का झटका!... हमारी पेटियाँ खोली गयीं और हम उल्टे-पुल्टे हो गये... लो, रॉकेट-जहाज़ रुक गया!

"साथियो," लाउडस्पीकर पर कप्तान का खुशी से गदगद स्वर सुनायी देता है – "आप सबको हार्दिक बधाई है। पहला यात्री-दल चाँद पर पहुँच गया है। अब आप नीचे उतरने के लिए तैयार हो जायें।"

हमारे दिमाग़ में अब यही एक प्रश्न है कि इस पूर्णत: नये तथा पराये संसार में क्या वस्तुएँ देखने को मिलेंगी?...

चन्द्रमा पर

कप्तान के कथनानुसार अब हम नीचे उतरने की तैयारी कर रहे हैं। परन्तु यह तैयारी क्या है?

हमें चेतावनी दी गयी कि चन्द्रमा पर वायु लगभग नहीं के बराबर है। अन्तरग्रहीय यात्रियों में से यदि कोई चन्द्रमा की सतह पर घूमने के विचार से रॉकेट के बाहर निकल आयेगा तो वह तुरन्त ही मर जायेगा। वह वायु, जो मनुष्य के भीतर है, फैलने और चारों ओर के शून्य में उड़ने का प्रयत्न करेगी। वह ऐसा करती हुई मनुष्य के फेफड़ों तथा दूसरे भीतरी अंगों को चीर डालेगी।

परन्तु किसी भी यात्री के दिमाग़ में यह नासमझी का विचार नहीं आयेगा। इस यात्रा में भाग लेने वाले हर यात्री के लिए उसके शरीर की नाप के अनुसार समुद्री गोताख़ोरों की पोशाकों की सी एक विशेष पोशाक तैयार की गई है। परन्तु शून्य में उतरने के लिए ये पोशाकें गोताख़ोरों की तुलना में कहीं अधिक बेहतर हैं। गोताख़ोर को पानी में उतारने तथा बाहर निकालने के लिए उसकी पोशाक से रस्सी बँधी रहती है। इस प्रकार गोताख़ोर सदा 'बँधा हुआ' रहता है।

शून्य में पहने जाने वाली हमारी ये पोशाकें वैज्ञानिकों का विलक्षण आविष्कार हैं। इन पोशाकों में हम जहाँ भी चाहें, वहाँ जा सकते हैं। उनके भीतर रासायनिक पदार्थों द्वारा ऑक्सीजन गैस उत्पन्न होती रहती है। साँस लेते समय जो कार्बोनिक एसिड गैस बाहर निकलती रहती है, उसका शोषण दूसरे रासायनिक पदार्थों द्वारा होता रहता है। पोशाक के भीतर की वायु सदा स्वच्छ तथा साँस लेने के लिए सुविधापूर्ण रहती है।

सिर के टोप का अगला भाग पतले, किन्तु अत्यन्त ही मज़बूत, न टूटने वाले शीशे का बना हुआ है। छोटा-सा रेडियो ट्रांसमीटर तथा उसी प्रकार का रिसीवर, जो कि एक निश्चित वेव मीटर पर मिलाया हुआ है, यात्रा-दल के साथियों का आपसी वार्तालाप सम्भव करता है। बिजली के उन तारों में, जो पोशाक के अभेद्य कपड़े में ही गुथे हुए हैं, छोटी, किन्तु शक्तिशाली बैटरियों से बिजली जाती है और पोशाक को गरम करती है ताकि बाहर की बर्फ़ कर देने वाली सर्दी भी भयानक न मालूम दे। गरम करने वाले यन्त्र का स्विच खोला अथवा बन्द किया जा सकता है।

कितनी बढ़िया पोशाक है यह! परन्तु हम उसे सन्देह की दृष्टि से देख रहे हैं, क्योंकि वह बहुत

भारी है। लगता है कि इसे पहनकर हमें कछुए की भाँति रेंगना पड़ेगा।

खगोलविज्ञान के प्रोफ़ेसर हमारी ओर देखकर हँस रहे हैं –

"डरो नहीं, निडर होकर इसे पहन लो। सिर्फ़ चलने की ही क्या बात है, इस पोशाक में तो आप लोग टिड्डे की भाँति कूद सकेंगे!.."

अब सारी तैयारी हो चुकी है और हम बाहर निकलने के लिए क़दम बढ़ा रहे हैं। सचमुच यहाँ चलना तो बहुत ही आसान है। हमें सारे शरीर में एक विशेष प्रकार की स्फूर्ति का आभास हो रहा है, मांस-पेशियाँ जैसे पहले से बहुत अधिक शक्तिशाली हो गयी हैं।

अब हमारे सामने बाहर निकलने वाला द्वार है। यह वैसा साधारण द्वार नहीं है, जैसाकि रेलगाड़ी अथवा यात्री-वायुयान में होता है। यह तो पूरा एक कमरा ही है। हम इसमें भीतर के कमरे से प्रवेश करते हैं और हमारे द्वार के कमरे में आते ही कप्तान अपने पीछे द्वार को अच्छी तरह से बन्द कर देता है।

वह ऐसा इसलिए करता है कि रॉकेट के अन्दर की वायु बाहर निकलकर उड़ न जाये। फिर पम्पों ने बहुमूल्य वायु को निकास-कक्ष से निकालने का काम करना शुरू कर दिया। अब बाहर का द्वार खुलता है और हम जहाज़ से बाहर आते हैं। सामने निकली हुई सीढ़ी से नीचे उतरते हैं और चन्द्रमा की मिट्टी पर पाँव रखते हैं...

अरे, यह क्या है? तो क्या कोई हमसे भी बाज़ी मार ले गया? चन्द्रमा पर उतरने वालों में हम ही सबसे पहले नहीं हैं! वह देखो, दूरी पर हमारे जैसा ही रॉकेट दिखायी दे रहा है। उसका पॉलिश किया हुआ बड़ा ढाँचा सूर्य की किरणों में चमक रहा है...

"साथी कप्तान!" हम उबल पड़ते हैं, "आपने भला यह कैसे विश्वास दिलाया कि..."

हमको चुप हो जाने का संकेत करते हुए कप्तान ने हाथ उठाया। देखें तो हमारे कप्तान किस तरह इस बात की व्याख्या करते हैं। हमारे नज़दीक ही यह दूसरा रॉकेट कैसे उतरा है।

"साथियो, शान्त हो जाओ!" कप्तान ने कहा। अपने टोपों के अन्दर हमें उसकी आवाज़ बिल्कुल स्पष्ट सुनायी दी। "सब कुछ ठीक है। यह रॉकेट अपना ही है और यह तो यहाँ लगभग आधे वर्ष से मौजूद है।"

"इतने समय से? परन्तु इसमें आये हुए लोगों का क्या हाल है?" हमने प्रश्न किया।

कप्तान ने हँसकर उत्तर दिया –

"उसमें एक भी मनुष्य नहीं है। यह स्वचालित रॉकेट शक्तिशाली रेडियो-संकेतों का पालन करते हुए हमारे रॉकेट की भाँति ही पृथ्वी से चन्द्रमा तक पहुँचा है। स्वचालित ढंग से वह पृथ्वी से रवाना हुआ। रॉकेट में एक विशेष केबिन था। बिल्कुल वैसा ही एक केबिन धरती पर था। धरती के केबिन में बैठा हुआ कप्तान रॉकेट का संचालन करता रहा। कप्तान के आदेशानुसार मार्ग में उस रॉकेट की गति अपनेआप ही बढ़ती और घटती रही..."

"कौन था वह कप्तान?"

"...वह कप्तान मैं ही था! मित्रो, मैं तुम्हारे सामने स्वीकार करता हूँ कि स्वचालित रॉकेट के उतरने के समय मैं बहुत ही घबराया था। यह अत्यन्त गम्भीर परीक्षा थी। कारण कि यदि रॉकेट नष्ट हो जाता तो हमारी यात्रा कई वर्षों के लिए स्थगित हो जाती। तब फिर से सभी गणनाएँ, प्रयोग और परीक्षात्मक उड़ानें

करनी पड़तीं। लोगों की जानों को ज़रा-सा ख़तरा होने पर भी हमारी सरकार उन्हें कभी चाँद पर न भेजती। किन्तु सभी कुछ सकुशल सम्पन्न हो गया है। कुछ ही सेकण्ड बाद इसके विषय में लोगों ने रॉकेट के स्वयं ही लिखने वाले यन्त्रों से संकेत प्राप्त किये..."

"अहा, यह कितना मनोरंजक वर्णन है! साथी कप्तान, अपना यह वर्णन ज़ारी रखिये। हमें क्षमा कीजिये कि हमने आपको बीच ही में टोक दिया..."

"अन्तरग्रहीय आवागमन विज्ञान-अनुसन्धानशाला के अध्यक्ष ने मुझे सफलता के लिए बधाई दी और मुझे कॉस्मिक जहाज़ों के उड़ाके का डिप्लोमा दिया। इसीलिये हम लोग यहाँ हैं। परन्तु मैं अपनी कथा जारी रखता हूँ। हाँ तो, स्वचालित रॉकेट ने मेरी रेडियो-आज्ञाओं का पालन करते हुए अपने ढाँचे से एक छोटी टैंकगाड़ी निकाली। इस टैंकगाड़ी में कई सौ घण्टों के आवागमन के लिये ईंधन संचित है। मेरे द्वारा संचालित यह टैंकगाड़ी आसपास के क्षेत्र में चारों ओर गयी। इसके टेलीविजन-यन्त्र ने हमको 'तूफ़ानों का महासागर' क्षेत्र का ठीक-ठीक मानचित्र दिया और तभी हमें पता चला कि चन्द्रमा पर उतरने के लिए यह स्थान बड़ा ही उपयुक्त है। इस समय तो मैं जान-बूझकर ही इस स्वचालित रॉकेट के समीप उतरा हूँ। उसी में तो हमारी वापसी उड़ान के लिए ईंधन, खाद्य-पदार्थ व पानी संचित है। हमारा यात्री रॉकेट-जहाज़ अधिक बोझ नहीं ले सकता था। इसके अतिरिक्त सबसे मुख्य बात तो यह है कि वह टैंकगाड़ी बिल्कुल ठीक-ठाक है और चन्द्रमा की सतह पर यात्रा करने में हमारी पूरी सेवा करेगी..."

"वाह, वाह!" हम सभी साथ मिलकर चिल्ला पड़े, "आओ अब हम अपने प्रिय पड़ोसी रॉकेट के पास चलें। उसने तो अब तक भी हमारी बहुत मदद की है।"

"और भविष्य में भी करता रहेगा," कप्तान ने कहा।

हम आगे बढ़ते हैं। किन्तु एकाएक हमारे मार्ग में एक भारी बाधा आ गयी। हमें अपने सामने एक दरार नज़र आयी है। इस दरार की गहराई तीस मीटर और चौड़ाई सात-आठ मीटर है। जहाँ तक हमारी दृष्टि जाती है, यह दरार दूर तक फैली हुई है। न तो इसे पार किया जा सकता है और न इसके किनारे-किनारे ही आगे बढ़ा जा सकता है... अब क्या किया जाये? क्या हम इस पर पुल बाँधें? परन्तु किस सामग्री से?...

किन्तु यह क्या हो रहा है?

वृद्ध खगोलविज्ञानी दरार की ओर तेज़ी से दौड़ रहा है। लगता है कि जैसे उसने छलांग लगाकर दरार फाँदने का निर्णय कर लिया है।

"साथी प्रोफ़ेसर रुक जाइये! क्यों अपनी जान के दुश्मन हुए हैं!" हम चिल्ला पड़ते हैं और उन्हें हाथ हिला-हिलाकर आगे जाने से मना करते हैं।

परन्तु यह क्या? प्रोफ़ेसर तो शून्य में छलांग लगाते हैं, दरार के ऊपर से तैरते हुए से उड़ते हैं और धीरे-धीरे दरार के बेहद ढालू किनारे के क़रीब पाँच मीटर पीछे जा पहुँचते हैं।

फिर खगोलविज्ञानी हमारी तरफ़ मुड़ते हैं और खुशी-खुशी चिल्ला पड़ते हैं –

"मित्रो, तुम लोग भी बेफ़िक्र होकर मेरी नक़ल करो!"

हम तो फिर भी कुछ-कुछ डरते हुए कूदते हैं। किन्तु इस गह्वर के ऊपर तो हम पक्षियों की भाँति उड़ते हुए मालूम देते हैं। हममें से एक नवयुवक खिलाड़ी तो ऐसी दूरी पर कूदा कि एक दूसरी लेकिन पहली से कम गहरी दरार में जा गिरा। यह पहली दरार से लगभग आठ मीटर दूर थी। किन्तु उसे चोट नहीं लगी और वह हँसते-हँसते उसमें से बाहर निकला।

हमने खगोलविज्ञानी से प्रश्न किया –

"साथी प्रोफ़ेसर, कृपा करके हमें समझाइये कि आख़िर क्या यह मामला है! अचानक ही आज ऐसे कूदने-फाँदने वाले किस तरह बन गये?"

प्रोफ़ेसर महोदय ने उत्तर दिया –

"पृथ्वी की अपेक्षा चन्द्रमा कई गुना छोटा है और इसलिए वह वस्तुओं को छः गुना कम शक्ति से आकर्षित करता है। सरल भाषा में इसका अर्थ यह है कि पृथ्वी की अपेक्षा चन्द्रमा पर हर वस्तु का भार छः गुना कम है। पृथ्वी पर मेरा वज़न साठ किलोग्राम, परन्तु यहाँ तो केवल दस ही हैं किन्तु हमारी मांस-पेशियाँ तो पहले की ही भाँति हैं। अतएव पृथ्वी की अपेक्षा मैं यहाँ छः गुना लम्बी छलांग मार सकता हूँ। इसके अतिरिक्त यहाँ वायु तो लगभग नहीं के बराबर है – वह वायु, जो हर वस्तु की गति का प्रतिरोध करती है।"

चन्द्रमा पर मनुष्य का भार (स्प्रिंग वाली तराज़ू पर)

यह तो ख़ूब मज़ा रहा। बिना किसी जतन-परिश्रम के हम अपने आप ही छः गुना अधिक शक्तिशाली हो गये।

अब हम उत्साह से और खुशी-खुशी चन्द्रमा की सतह पर पग बढ़ाते हैं और कुतूहल से इधर-उधर देखते हैं। हमारे चारों ओर अनाकर्षक और धूल भरा मैदान ही मैदान है। हमारे पैरों द्वारा उड़ायी वह धूल चारों तरफ़ उड़ती है और बहुत धीरे-धीरे नीचे बैठती है। कारण कि धूल के बादलों से खिलवाड़ करने वाली वायु तो यहाँ है ही नहीं! काली-भूरी मिट्टी सूर्य की किरणों में इस तेज़ी से चमक रही है कि उसे देखने से आँखों में दर्द होने लगता है।

हम दृष्टि उठाकर आकाश की ओर ताकते हैं। लो, वह रहा हमारा चिर-परिचित सूर्य! वह वैसा ही प्रतीत होता है, जैसा कि हम उसे पृथ्वी पर से देखने के अभ्यस्त हैं। लेकिन यह तो स्पष्ट ही है क्योंकि पृथ्वी और चन्द्रमा के बीच की दूरी सूर्य से उनकी दूरी की तुलना में तुच्छ है। यदि तार के एक ही खम्भे को एक निरीक्षक 1,000 मीटर और दूसरा 998 मीटर की दूरी से देखता है तो दोनों को वह बराबर ही नज़र आयेगा।

हम यहाँ के आकाश के दृश्य के अभ्यस्त नहीं हैं। चन्द्रमा का आकाश काला है, यह तो हमें पहले ही मालूम था। किन्तु उस पर असंख्य तारे चमक रहे हैं और वे सूर्य के प्रकाश के कारण अदृश्य नहीं हो रहे हैं। सबसे छोटे और यहाँ तक कि सूर्य के गोले के बिल्कुल समीप वाले तारे भी स्पष्ट ही दिखायी पड़ रहे हैं। पृथ्वी पर सूर्य की किरणों से प्रकाशित वायुकण तारों की धीमी किरणों को फीका कर देते
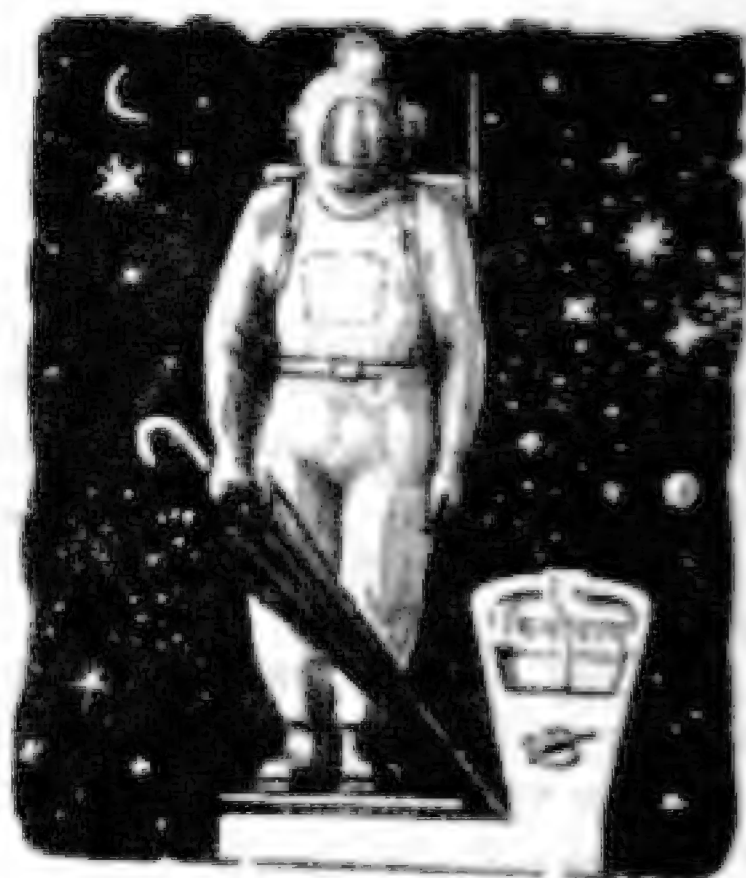
हैं और इसी कारण हम उन्हें दिन में नहीं देख पाते हैं। परन्तु चन्द्रमा पर ऐसी कोई बाधा नहीं है और इसीलिए सबसे मद्धिम तारों की किरणें भी हमारी दृष्टि तक पहुँच रही हैं।

परन्तु क्षितिज के ऊपर चमकता हुआ यह उज्जवल हँसिया क्या है? पृथ्वी से जैसे चन्द्रमा का हँसिया मालूम पड़ता है, यह उसी ढंग का किन्तु उससे कई गुना बड़ा है।

भला यह कौन-सा ग्रह है?

वाह, यह तो हमारी जननी पृथ्वी ही है! उसे हम कुछ दिनों के लिए छोड़कर यहाँ आये हैं। सूर्य की किरणें उसकी सतह से प्रतिबिम्बित होकर हम तक पहुँच रही हैं। अब हम स्वयं अपनी ही आँखों से देख रहे हैं कि हमारी पृथ्वी भी अन्य आकाशीय प्रकाशग्रहों – जैसे कि चन्द्रमा, मंगल, बृहस्पति इत्यादि – जैसी ही है।

हम पृथ्वी के हँसिये के सुन्दर दृश्य को काफ़ी समय तक देखते रहते हैं और फिर स्वचालित रॉकेट के पास पहुँचते हैं।

यह रॉकेट आगे की ओर निकली हुई टेकों पर मज़बूती से खड़ा है। कप्तान एक टेक का बटन दबाता है और ऊपर से नीचे तक लटक आने वाली हल्की डुरालुमिनियम की सीढ़ियों द्वारा ऊपर के द्वार तक चढ़ता है। वह उसे अपने साथ लायी हुई कुंजी से खोलता है और फिर रॉकेट में प्रवेश करता है। हम मन में जिज्ञासा लिये हुए उसके पीछे-पीछे जाते हैं।

रॉकेट का भीतरी भाग हमारे रॉकेट जैसा ही है। अन्तर है तो केवल इतना ही कि इसके यात्रियों वाले कमरों में ईंधन तथा खाने-पीने की सामग्री है।

इस रॉकेट का संचालन-केबिन हमारे रॉकेट के संचालन-केबिन जैसा ही है। इसके यन्त्र भी विशेष रिले यन्त्रों द्वारा सुसज्जित हैं, जो पृथ्वी से रेडियो-संकेत ग्रहण करते हैं और उन्हें शक्तिशाली बनाकर रॉकेट के यन्त्रों में भेजते हैं।

"घर चलना चाहिए! खाने और सोने का समय हो गया!" कप्तान ने कहा।

"सोने का समय हो गया? किन्तु सूर्य तो अभी आकाश में काफ़ी ऊँचा है!"

प्रोफ़ेसर ने हँसकर उत्तर दिया –

"यदि हम सूर्यास्त की प्रतीक्षा करते रहें तो काफ़ी समय तक जागते ही रहेंगे। चन्द्रमा का दिन पृथ्वी के लगभग साढ़े तीन सौ घण्टों के बराबर होता है। यद्यपि सूर्य ने क्षितिज की ओर नीचे जाना आरम्भ कर दिया है, फिर भी चन्द्रमा की रात होने के लिए हमें पृथ्वी के कई दिनों और कई रातों तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।"

हम खगोलविज्ञानी से इसकी व्याख्या करने की प्रार्थना करते हैं कि चन्द्रमा पर दिन इतना लम्बा क्यों होता है। प्रोफ़ेसर रॉकेट पर लौटने तक बातचीत स्थगित कर देते हैं।

हम अपने बहुत विशाल जहाज़ के पास आते हैं। कप्तान छोटा-सा बाहरी द्वार खोलता है। यह जानने के लिए कि सभी लौट आये अथवा नहीं वह हमारी गिनती करता है। फिर बाहरी द्वार बन्द कर लेता है। इसके बाद वह प्रवेश कमरे को वायु से भरता है और फिर भीतरी द्वार खोलता है। सभी लोग गोताखोरों

की सी पोशाकें उतार देते हैं और बड़े मज़े से अँगड़ाई लेते हैं। हमारी पोशाकों में यूं तो सभी सुविधाएँ हैं फिर भी अपनी गतिविधि में हमें बाधा तो अनुभव होती ही है। इसीलिये कई घण्टों तक इस पोशाक में रहना कठिन है।

भोजन करने के बाद जब हम आरामदेह और हल्के कोचों पर लेटे, तब प्रोफ़ेसर ने कहना शुरू किया –

"चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर घूमता है। मगर वह अपना एक ही भाग पृथ्वी के सामने करता है, इस भाग को हम चन्द्रमा का मुख कहने का निश्चय करते हैं। चन्द्रमा का दूसरा भाग उसके मुख के पीछे का भाग है। पर चन्द्रमा सदा पृथ्वी को अपना मुख ही क्यों दिखलाता है? क्योंकि पृथ्वी के चारों ओर एक चक्कर पूरा करने के समय में चन्द्रमा अपनी धुरी पर केवल एक ही बार घूमता है! यदि तुम्हें यह स्पष्ट नहीं हुआ, तो एक साधारण प्रयोग करो। दो रंगों में रँगा हुआ – लाल व नीले रंगों में रँगा हुआ – एक गेंद लो। मेज़ पर रखी हुई दवात ही को पृथ्वी मान लो। गेंद को दवात के चारों ओर इस प्रकार घुमाओ कि हर समय उसका लाल अर्द्ध भाग ही दवात की ओर रहे। तुम देखोगे कि उतने समय में, जब तक कि तुम गेंद को दवात के चारों ओर घुमाओगे, तुम्हारे हाथ में वह अपनी धुरी पर एक बार घूम चुकेगा। यह प्रयोग दूसरी वस्तुओं से भी किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, जेब-घड़ी को इस प्रकार पकड़े हुए दवात के चारों ओर घुमाया जा सकता है कि दवात की ओर उसका छः अंक वाला भाग ही हर समय रहे। उतने समय को, जिसे हम पृथ्वी निवासी चन्द्रमास कहते हैं चन्द्र-निवासी – अगर वे वास्तव में चन्द्रमा पर रहते तो – चन्द्रमा का एक दिन-रात कहते। चन्द्रमा के इस दिन-रात की अवधि पृथ्वी के साढ़े उनतीस दिन-रातों के बराबर होती है। चन्द्रमा के दिन-रात का एक अर्द्धभाग दिन होता है और दूसरा अर्द्ध-भाग रात।"

"अर्थात् यहाँ की रात्रि भी तीन सौ चौवन घण्टे तक जारी रहती है?"

"बिल्कुल ठीक! अब हम इसे अपनी आँखों से देख सकेंगे।"

साधारण गणना करने पर हमें मालूम हुआ कि पूरे एक वर्ष में चन्द्रमा के केवल तेरह दिन और तेरह रातें होती हैं। यदि चन्द्रमा पर निवासी होते, तो एक वर्ष की अवधि में वे केवल तेरह ही बार सूर्योदय और तेरह ही बार सूर्यास्त देख सकते।

हम लोगों ने बहुत-सी नयी बातें देखी और सुनी थीं। हम उन्हीं के बारे में सोचते रहे और इसीलिये हमें देर तक नींद न आयी।

चन्द्रमा का अन्वेषण

कप्तान ने सभी लोगों के लिए 16 घण्टे तक जागने और 8 घण्टे सोने का कठोर नियम निर्धारित किया।

चन्द्रमा का अन्वेषण-कार्य आरम्भ हुआ। भूगर्भविज्ञानिओं ने चन्द्रमा के भूगर्भ में खनिज पदार्थों की खोज करनी शुरू कर दी। खगोलविज्ञानी तारों और पृथ्वी के निरीक्षण में जुट गया। कप्तान, दल के एक

सदस्य के साथ सबसे गहरी दरारों और क्रेटरों में उतरता था।

सन् 1948 में वैज्ञानिक यू. न. लीप्स्की ने पता लगाया कि चन्द्रमा पर वायुमण्डल है। उसने हिसाब लगाया कि चन्द्रमा का वायुमण्डल पृथ्वी की अपेक्षा दो हज़ार बार कम घना है। सूक्ष्म यन्त्रों द्वारा ऐसी कम घनी गैसों का पता लगाना सम्भव है।

चन्द्रमा की ये गैसें कहाँ हैं?

यदि हम पानी के गिलास में पारे की कुछ बूँदें डालें तो वे तुरन्त ही उसके पेंदे पर चली जायेंगी, क्योंकि पारा पानी से भारी है।

गैसों को भी अवश्य ही नीचे चला जाना चाहिए और घाटियों और क्रेटरों की गहराइयों में संचित होना चाहिए। और उन गहराइयों में जाने पर हमारे कप्तान को वे गैसें मिलीं।

इसके विषय में एक रेडियोग्राम द्वारा तुरन्त ही पृथ्वी को सूचित किया गया। हम हर रोज़ पृथ्वी को कई रेडियोग्राम भेजते थे।

अब चन्द्रमा के दिन का अन्त हो रहा है। सूर्य क्षितिज की ओर नीचे और अधिक नीचे ही जा रहा है। उसकी किरणें अब तिरछी पड़ने लगी हैं, अतएव चन्द्रमा की सतह तक अब पहले जैसी गर्मी नहीं पहुँच रही है। घाटियों तथा दरारों में तो अँधेरा छा चुका है, किन्तु मैदान और पर्वत अभी पहले की ही भाँति प्रकाशित हैं।

आकाश में लटकता हुआ पृथ्वी का हँसिया बड़ा ही होता जा रहा है और अब तो वह और भी तेज़ी से चमकने लगा है...

हम लोगों ने चन्द्रमा के मैदानों और पर्वतों की काफ़ी सैर की। दूर की यात्रा के लिए हमने भलीभाँति बन्द की हुई टैंकगाड़ी का प्रयोग किया – उसमें तो गोताख़ोरों जैसी पोशाक के बिना भी बैठना सम्भव था।

चन्द्रमा पर एक उदास तथा निर्जीव संसार है। यहाँ का अत्यधिक घनत्वहीन वायुमण्डल ध्वनि को प्रसारित करने में असमर्थ है – यहाँ की सभी वस्तुएँ जड़ और ध्वनिरहित हैं। यदि हमारे पास रेडियो न होता तो हम अपनी पैदल यात्राओं के समय एक दूसरे से बातचीत भी न कर पाते। परन्तु यहाँ रेडियो भी केवल सीधी दीख पड़ने वाली दूरी तक काम करता है, क्योंकि चन्द्रमा पर वह 'आइनोसफ़ीयर' नहीं है, जो रेडियो-तरंगों को मोड़ती है और उन्हें पृथ्वी के किसी भी स्थान पर पहुँचा देती है।

यहाँ निकलते अथवा डूबते हुए सूर्य के प्रकाश में चमकते हुए लाल, बैंगनी अथवा गुलाबी बादल चन्द्रमा के ऊपर नहीं तैरते हैं। जल न होने के कारण यहाँ घास तथा वृक्षों की हरियाली नहीं है। वायुमण्डल की अनुपस्थिति के कारण चन्द्रमा पर केवल दो ही रंगों का आधिपत्य है – चमकते हुए सफ़ेद तथा काले रंग का। सूर्य की किरणों में तो सब कुछ चमकता है और छाया पड़ने पर सभी वस्तुओं पर कालेपन की चादर छा जाती है।

सूर्य द्वारा प्रकाशित चन्द्रमा के अर्द्ध भाग में तो भीषण गर्मी का साम्राज्य है। हमारे रॉकेट का ढाँचा गर्मी को अन्दर नहीं घुसने देता है, अतएव केबिनों में साधारण तापमान है। लेकिन बाहर निकलने से पहले सूर्य की निर्दय तथा झुलसा देने वाली किरणों से बचने के लिए हरेक को एक विशाल छतरी लेनी पड़ती
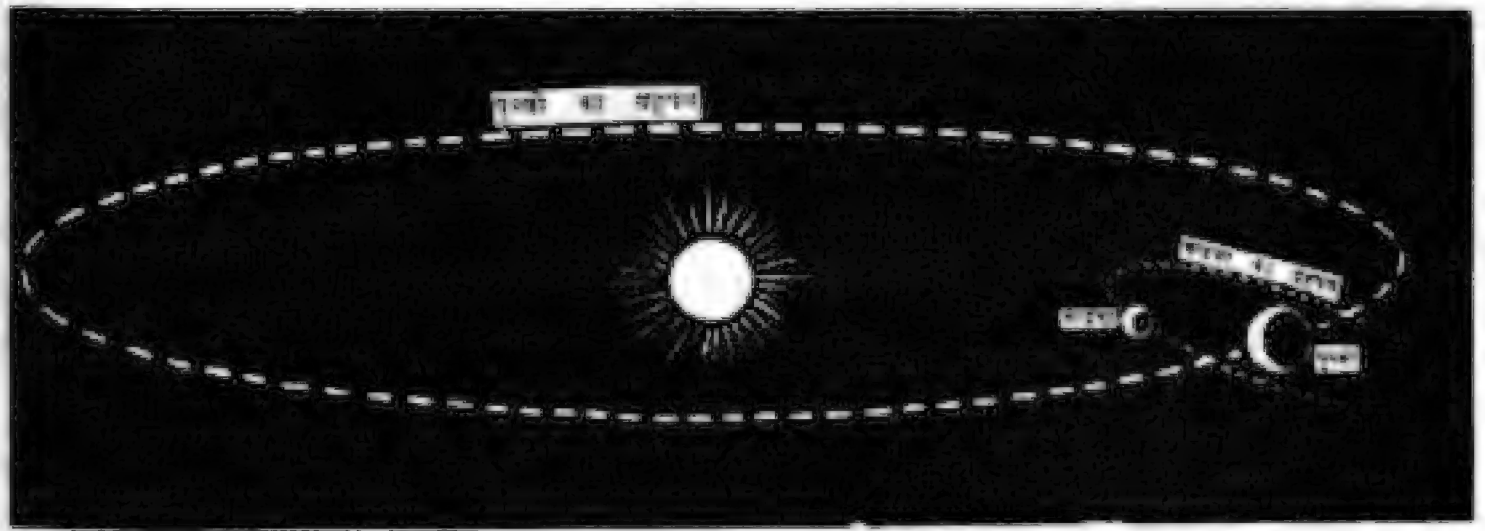
पृथ्वी चन्द्रमा के साथ सूर्य के चारों ओर घूम रही है।

है। वैसी छतरी हाथ में लेकर पृथ्वी पर दूर तक नहीं चला जा सकता – हवा का पहला ही झोंका उसे बरबस दूर उड़ा ले जायेगा। परन्तु चन्द्रमा पर तो हम इस छतरी को, कम घने वायुमण्डल होने के नाते बिना किसी विरोध के प्रयोग में लाते हैं। पैदल चलने अथवा छलांग मारने में यह बिल्कुल रुकावट नहीं डालती है। हमारी पोशाकों में अन्दर की ओर ऐसे पदार्थ के बहुत ही मोटे तले लगे हुए हैं जिनमें से गर्मी प्रवेश नहीं कर सकती है। इस तरह 100 सेण्टीग्रेड तक तपी हुई चन्द्रमा की मिट्टी हमारे पैर झुलसने में असमर्थ है। ये सब सावधानियाँ होने पर ही दिन में चन्द्रमा पर घूमा जा सकता है।

लो, अब तो सूर्य धीरे-धीरे क्षितिज के नीचे आ गया है। सूर्यास्त की अवधि कई घण्टों की थी। अचानक ही अन्धकार ने सभी कुछ ढँक लिया है, केवल दूर के पर्वतों की चोटियाँ ही अभी तक चमक रही हैं – वे सबसे उज्ज्वल तारों से भी कहीं अधिक उजली दिखायी दे रही हैं। लो, अब तो उन पर भी कालिमा छा गयी है। शीघ्र ही तापमान शून्य से 150 सेण्टीग्रेड नीचे आ गया है। हमारे रॉकेट को बिजली के शक्तिशाली स्टोव गरम करने लगे हैं। जहाज़ से बाहर निकलते ही हरेक अपनी पोशाक में लगे गरम करने वाले यन्त्र को क्रियाशील कर देता है, नहीं तो तुरन्त जम जाने की सम्भावना है।

पृथ्वी का हँसिया हर घण्टे बढ़ता ही चला जाता है और अन्त में एक पूर्ण गोले का रूप धारण कर लेता है। पृथ्वी का गोला भी पूर्णचन्द्र की भाँति गोल हो गया है। पृथ्वी के आकाश में पूर्णिमा का चन्द्रमा जितना चमकता है, उसकी तुलना में पृथ्वी लगभग अस्सी गुना अधिक चमक रही है। ऐसे प्रकाश में चन्द्रमा पर बहुत दूर तक सैर की जा सकती है। हमें ठण्ड का भय तो है ही नहीं।

यदि चन्द्रमा के अदृश्य गोलार्द्ध में इन्सान रहते होते, तो हमें उन पर तरस आता, क्योंकि उन्हें असंख्य तारों से भरे काले आकाश में हल्के नीले प्रकाश से चमकती हुई पृथ्वी की अनुपम छवि देखने का अवसर कभी न मिलता!

अन्तरग्रहीय यात्राओं की काल्पनिक कहानियों में हमें अक्सर अपनी धरती के चित्र देखने को मिलते हैं। इन चित्रों में पृथ्वी को गोलक पर दिखाये गये मानचित्रों की भाँति चित्रित किया जाता है। वहाँ सागर

भी होते हैं और महाद्वीप भी।

परन्तु अब हमने अपनी आँखों से जो कुछ देखा उससे पता चला कि ये चित्र ठीक नहीं हैं – विश्व अन्तरिक्ष से देखने पर पृथ्वी भी हल्के नीले रंग का एक चमकता हुआ गोला ही दिखायी देती है और उस पर न तो महाद्वीप दिखायी पड़ते हैं और न महासागर ही।

खगोलविज्ञानी ने हमें बताया कि इसका कारण पृथ्वी का वायुमण्डल ही है। यह वायुमण्डल बहुत ही घना तथा काफ़ी ऊँचा है। इसमें बादल तैरते रहते हैं और बहुत बड़ी संख्या में धूल के कण उड़ते रहते हैं। यह उन किरणों को रोकता है, जो पृथ्वी की सतह से आती हैं। इस तरह महाद्वीप व महासागर देखने की सम्भावना नहीं रह जाती।

जब हमने स्वयं अपनी आँखों से चन्द्रमा के आकाश में पृथ्वी के रूपों का परिवर्तन देखा, तब स्पष्ट रूप से हमारी समझ में यह आया कि चन्द्रमा के आकार के परिवर्तनों के – जिन्हें चन्द्रमा की कलाएँ कहते हैं – क्या कारण हैं। जब चन्द्रमा का वह भाग, जो सदा हमारी तरफ़ रहता है, सूर्य की किरणों द्वारा प्रकाशित नहीं होता, तब उसे 'नया चाँद' कहते हैं। इस समय चन्द्रमा की सतह से सूर्य की प्रतिबिम्बित किरणें हम तक नहीं पहुँचती हैं और हम उसे देख नहीं पाते हैं। इसके बाद धीरे-धीरे चन्द्रमा का मुख एक तरफ़ से सूर्य द्वारा प्रकाशित होना आरम्भ होता है – उस समय आकाश में चन्द्रमा का पतला हँसिया निकल आता है। फिर वह हँसिया धीरे-धीरे बढ़ना शुरू करता है, क्योंकि चन्द्रमा अपने मुख को सूर्य की किरणों की ओर अधिकाधिक मोड़ता जाता है। चन्द्रमा की वह कला जिसमें उसके गोले का आधा भाग प्रकाशित हो जाता है, 'पहला चतुर्थांश' कहलाती है। अन्त में चन्द्रमा का पूरा मुख सूर्य की किरणों द्वारा प्रकाशित हो उठता है – इसको 'पूर्णिमा' कहते हैं। इसके बाद चन्द्रमा अपना मुख सूर्य की ओर से फेरना आरम्भ करता है। फिर से वह अवस्था आ जाती है, जब हम चन्द्रमा के गोले का केवल आधा भाग देखते हैं – यह 'अन्तिम चतुर्थांश' होता है। अन्त में फिर चन्द्रमा पूर्णत: लुप्त हो जाता है। इस समय सूर्य, चन्द्रमा के हमें न दिखायी पड़ने वाले पिछले भाग को प्रकाशित करता है, फिर से 'नया चाँद' हो जाता है। इस प्रकार पूरा चन्द्रमास बीत जाता है। यह क्रम इसी भाँति चलता जाता है।

चन्द्रमा पर दिखायी देने वाली नयी पृथ्वी

चन्द्रमा पर दिखायी देने वाली पृथ्वी की कलायें, पृथ्वी पर दिखायी देने वाली

चन्द्रमा की कलाओं के बिल्कुल विपरीत हैं। पृथ्वी पर जब पूनम का चाँद नज़र आता है, उस समय चन्द्रमा पर नयी पृथ्वी नज़र आती है। इसी तरह पृथ्वी पर जब नया चाँद दीख पड़ता है, चन्द्रमा पर उस समय पूर्ण पृथ्वी दिखायी देती है।

चन्द्रमा की रात का आधा भाग बीत चुका तो हमारे अन्तरग्रहीय जहाज़ ने पृथ्वी पर वापस जाने की तैयारी शुरू की। हमने अपने रॉकेट में ईंधन ले लिया और उन बाक़ी सब वस्तुओं को, जिनकी हमारी वापसी यात्रा के लिए आवश्यकता नहीं थी, स्वचालित रॉकेट में रख दिया।

पृथ्वी से चन्द्रमा की ओर उड़ने की अपेक्षा चन्द्रमा से पृथ्वी की तरफ़ उड़ना अधिक सरल है। चन्द्रमा पर तो हमारे रॉकेट का भार छः गुना कम हो गया है, और इसके लिए 24,000 मीटर प्रति सेकण्ड की गति प्राप्त करना ही पर्याप्त है, ताकि हमारा रॉकेट चन्द्रमा से उठ सके और उड़कर विश्व-अन्तरिक्ष में जा सके।

अति दूर की मार करने वाली तोप, जो कि गोले को 2 किलोमीटर प्रति सेकण्ड की गति से छोड़ती है, चन्द्रमा पर तो बिल्कुल बेकार ही सिद्ध होती। छूटने के बाद उसका गोला लौटकर चन्द्रमा पर वापस न आता – वह चन्द्रमा का उपग्रह बनकर एक अति ही छोटे ग्रह के रूप में उसके चारों ओर घूमता।

चलने का समय हो गया। सभी लोगों ने मुख्य केबिन में अपना-अपना स्थान ले लिया। कप्तान ने पृथ्वी पर रेडियोग्राम भेजा।

विस्फोटों के कारण रॉकेट का ढाँचा काँपने लगा और – लो! चन्द्रमा का काला मैदान पीछे बहुत दूर छूट गया।

चन्द्रमा, हम तुमसे विदा लेते हैं, नमस्कार! हम तुम्हारे पास फिर आयेंगे। हम फिर से तुम्हारे धूल-धूसरित मैदानों की सैर करेंगे, तुम्हारे पर्वतों पर चढ़ेंगे और पुनः तुम्हारे गहरे दर्रों में उतरेंगे।

और अब हम अपनी मातृभूमि पृथ्वी की ओर लौट रहे हैं! पृथ्वी का गोला हर क्षण बड़ा, किन्तु साथ ही साथ पीला भी नज़र आ रहा है।

लो, अब तो पृथ्वी के विशाल काले घेरे ने पूरे आकाश को घेर लिया है। रॉकेट की गति बहुत पहले ही कम कर दी गयी थी, किन्तु फिर भी गति काफ़ी अधिक है। ऐसी गति से पृथ्वी की सतह पर उतरना असम्भव है। परन्तु यहाँ हमारी सहायता के लिए सर्वोत्तम ब्रेक आ गया – ऐसा ब्रेक, जो चन्द्रमा पर नहीं है। और वह ब्रेक है पृथ्वी के वायुमण्डल का घनत्व।

अब हमारा अन्तरग्रहीय जहाज़ वायुमण्डल के ऊपरी स्तर में आ पहुँचा। रॉकेट ने वक्र रेखा बनाते हुए बहुत धीरे-धीरे इस वायुमण्डल में प्रवेश किया। वायु का विरोध रॉकेट की गति पर कड़ा नियन्त्रण किये था। जैसे-जैसे हम नीचे आते जाते थे, वायु का घनत्व बढ़ता ही जाता था। इस तरह रॉकेट की गति और भी कम होती जाती थी। जब रॉकेट की गति एक सामान्य वायुयान की गति के बराबर हो गयी, तब कप्तान ने उसे कूइबिशेव सागर के मध्य में उतार दिया और वह लहरों पर एक विशाल तिरेंदे की भाँति झूलने लगा।

और इस तरह हमारी चन्द्रमा की यह अद्‌भुत यात्रा समाप्त हुई। कितना अच्छा होता यदि न केवल कल्पना में ही, बल्कि वास्तव में हम यह यात्रा कर पाते!

शायद वह समय दूर नहीं है, जब कि ऐसी यात्राएँ साधारण-सी बात हो जायेंगी।

वैज्ञानिक विश्व-अन्तरिक्ष सम्बन्धी अनुसन्धान कार्यों को लगन से करते हुए इस समय को समीप ला रहे हैं।

सन् 1955 में मास्को में एक समिति का संगठन हुआ। इस समिति में महान वैज्ञानिक – भौतिकविज्ञानी, यन्त्रविज्ञानी, खगोलविज्ञानी और गणितविज्ञानी – सम्मिलित हैं।

समिति ने कॉस्मिक प्रयोगशाला के निर्माण-कार्य को सबसे पहला स्थान दिया। कोंस्तान्तीन एदुआर्दोविच त्सीओल्कोव्स्की ने ऐसी प्रयोगशाला बनाने का विचार बहुत पहले ही प्रस्तुत किया था।

कॉस्मिक प्रयोगशाला पृथ्वी का नया उपग्रह होगी और वह पृथ्वी की सतह से लगभग 40 हज़ार किलोमीटर की दूरी पर वायुमण्डल के बाहर पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगायेगी। चारों ओर से विश्व-अन्तरिक्ष द्वारा घिरे हुए इस अनुसन्धान स्टेशन पर वैज्ञानिक रहेंगे और वहाँ से वे ऐसे निरीक्षण करेंगे, जो पृथ्वी से नहीं किये जा सकते हैं। वहाँ से चन्द्रमा तथा दूसरे ग्रहों का पर्यवेक्षण अब की अपेक्षा कहीं अच्छी भाँति हो सकेगा।

पृथ्वी से दूर स्थित यह स्टेशन अन्तरग्रहीय यात्राओं का स्टेशन होगा। यहाँ से चन्द्रमा, शुक्र और मंगल की ओर उड़ने वाले रॉकेटों को पृथ्वी की सतह की अपेक्षा कहीं कम प्रारम्भिक गति की आवश्यकता होगी।

वह समय दूर नहीं है जब ऐसे स्टेशन की स्थापना सम्भव होगी। पृथ्वी के कृत्रिम उपग्रहों को हम ऐसे स्टेशन का नमूना कह सकते हैं।

चाँद पर पहले मानव चिह्न

हमने पहले एक काल्पनिक अन्तरग्रहीय यात्रा का वर्णन किया है। अभी कुछ ही समय पहले तक इसे बहुत दूर भविष्य की बात माना जाता था। दूसरों का तो ज़िक्र ही क्या, अन्तरग्रहीय यात्रा के क्षेत्र में खोज करने वाले वैज्ञानिक भी ऐसा ही समझते थे। मगर अब ऐसी बात नहीं रही। हाल ही में विज्ञान और तकनीक ने बहुत तेज़ी से लम्बे-लम्बे डग भरे हैं। इसलिए अब समीप भविष्य में ही मनुष्य की चन्द्र-यात्रा का पूर्वानुमान लगाना सम्भव है।

12 सितम्बर 1959 को, धरती से चाँद की दिशा में एक कॉस्मिक रॉकेट छोड़ा गया। 24 सितम्बर को जब मास्को की घड़ियों में रात के 12 बजकर 2 मिनट 24 सेकण्ड हुए तो यह रॉकेट चाँद पर जा पहुँचा। जूल्स वेरने और एच. जी. वेल्स ने तो ऐसी अन्तरग्रहीय यात्राओं की कोरी कल्पना ही की थी, मगर इस रॉकेट की यात्रा एक ठोस हक़ीक़त बनी। मानव-इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ।

इस नयी साधना ने संसार भर के वैज्ञानिकों के मन पर गहरी छाप अंकित की।

जाडरेल बैंक बेधशाला के डायरेक्टर प्रोफ़ेसर लोवेल ने कहा कि रॉकेट की चन्द्र-यात्रा, "विज्ञान और तकनीक के बहुत ही ऊँचे स्तर का एक उज्ज्वल उदाहरण है...ढाई लाख मील की दूरी पर रॉकेट का

निर्देशन करना, दंग कर देने वाली सफलता है।"

अन्तरराष्ट्रीय खगोल समाज के सदस्य और चन्द्र-अध्ययन के विशेषज्ञ फ्रांसीसी प्रोफ़ेसर अनानोव ने कहा – "रूसियों की जानी-मानी क्षमताओं को ध्यान में रखते हुए तो उनके और भी आगे जाने की आशा की जा सकती है। वे चाहते तो रॉकेट में एक आदमी बिठाकर दुनिया को और भी ज़्यादा हैरत में डाल सकते थे।"

पश्चिमी जर्मनी की बोख़ूम बेधशाला के डायरेक्टर हेन्ज़ कामिन्स्की ने कहा – "रूसियों की तुलना 10 किलोमीटर की दूरी पर मक्खी की आँख का निशाना बनाने वाले निशानेबाज़ से की जा सकती है..."

कामिन्स्की की तुलना बहुत ही सही है। बात बढ़ा-चढ़ाकर भी बिल्कुल नहीं कही गयी है। तुम खुद भी इस चीज़ का तजुरबा कर सकते हो। कागज़ का एक टुकड़ा लो और दस सेण्टीमीटर का घेरा काट लो। इसे टाँगकर ग्यारह मीटर की दूरी से देखो। इस घेरे में तुम्हें एक बिन्दु उतना ही बड़ा दिखायी देगा जितना कि आकाश में चाँद है। 43 घण्टों में 3,80,000 किलोमीटरों की यात्रा करके इस रॉकेट को, ऐसे ही बिन्दु को निशाना बनाना था। जब रॉकेट छोड़ा गया उस वक़्त चाँद, जो खुद भी एक घूमता हुआ पिण्ड है, इन दोनों के लक्षित मिलन-बिन्दु से 1,50,000 किलोमीटर की दूरी पर था। और इसलिए वहाँ तक चाँद के पहुँच जाने के समय का अनुमान करके ही यह निशाना साधना था।

सोवियत रॉकेट द्वारा चन्द्रमा पर पहुँचाया गया चिह्न

खगोलविज्ञानियों ने ख़ूब ही हिसाब-किताब लगाया। रॉकेट का निर्देशन करने वाले उपकरणों ने भी बस कमाल ही कर दिखाया। रॉकेट पूर्वानुमानित समय से लगभग दो मिनट पहले लक्षित क्षेत्र में जा पहुँचा। यह तो सचमुच ग़जब के निशानेबाज़ का सा काम है।

निर्धारित पथ से ज़रा भी दायें-बायें हो जाने पर यह रॉकेट अपने मार्ग से हज़ारों किलोमीटर दूर हट जाता। फिर तो यह कभी भी चाँद पर न पहुँचता। रॉकेट की रफ़्तार भी बिल्कुल सही रखने की ज़रूरत थी। यदि प्रति सेकण्ड में इसकी रफ़्तार चन्द

मीटर भी बढ़ जाती तो वह सौर जगत के अपार विस्तार में जा पहुँचता। तब वह 2 जनवरी 1959 को छोड़े गये पहले कृत्रिम ग्रह की तरह सूर्य का उपग्रह बनकर रह जाता (इस कृत्रिम ग्रह के बारे में तुम आगे पढ़ोगे)। अगर इस रॉकेट की रफ़्तार ज़रा भी धीमी होती तो वह चाँद की उड़ान कभी न कर पाता। अमेरिकी रॉकेट 'पायनियर-1' और 'पायनियर-3' की तरह धरती पर वापस आ जाता।

इस बहुस्तरीय रॉकेट के अन्तिम स्तर का ईंधन जलने के बाद का वज़न 1,511 किलोग्राम था। इसमें वैज्ञानिक उपकरणों का एक कन्टेनर था। इस कन्टेनर का वज़न 390.2 किलोग्राम था। रॉकेट के अपनी कक्षा पर पहुँचते ही यह कन्टेनर, कैरियर रॉकेट से अलग हो गया था। इस कन्टेनर के स्वचालित यन्त्रों ने बड़ा अनुसन्धान कार्य किया और रेडियो द्वारा धरती पर उसकी सूचना दी। कन्टेनर के चाँद पर उतरने तक ये यन्त्र सही काम करते रहे।

यह रॉकेट स्पष्टता और निश्चलता के सागरों के क्षेत्र में पहुँचा। रॉकेट जब चाँद से टकराया तो कुछ पर्यवेक्षकों ने इसके द्वारा उड़ायी गयी धूल भी देखी।

'स्पुतनिक' – पृथ्वी के प्रथम कृत्रिम उपग्रह

'पृथ्वी से चन्द्रमा तक' की कहानी में धरती से छोड़े गये कृत्रिम उपग्रहों का उल्लेख किया गया है। विज्ञान की इस अद्‌भुत सफलता के विषय में यहाँ विस्तृत वर्णन देना आवश्यक है।

पृथ्वी के ऊपर का स्टेशन बनाने के लिए इसके भिन्न-भिन्न अंगों की सामग्री के साथ सैकड़ों रॉकेट भेजने पड़ेंगे। ये भिन्न-भिन्न अंग फिर अन्तरिक्ष में इकट्ठे किये जायेंगे। ऐसे जटिल कार्य के लिए प्रारम्भिक तैयारी की आवश्यकता है। अलग-अलग रॉकेट भेजने का ढंग जानना ज़रूरी है – ऐसे रॉकेट, जो पृथ्वी के कृत्रिम उपग्रह बनकर उसके ऊपर चक्कर लगायें।

4 अक्टूबर 1957 को पृथ्वी का पहला कृत्रिम उपग्रह छोड़ा गया। पृथ्वी मण्डल के सारे देशों में यह समाचार फैल गया। इस छोटे-से चाँद को दुनिया भर के लोग रूसी शब्द 'स्पुतनिक' के नाम से पुकारने लगे और संसार भर के बच्चे व बूढ़े इस शब्द को समझने लगे।

यह नया आकाशीय पिण्ड बहुत ही छोटा था। उसका व्यास 58 सेण्टीमीटर और भार 83 किलोग्राम से कुछ थोड़ा ही अधिक था। परन्तु इतने छोटे आकार के बावजूद इंजीनियरों ने इसमें शार्ट वेव के दो रेडियो-ट्रांसमीटर रख दिये। उनके 'बीप-बीप-बीप' संकेतों को संसार के सभी रेडियो-प्रेमियों ने सुना।

संसार अभी विस्मय तथा आनन्दोल्लास में ही था कि वैज्ञानिकों ने उसे और भी बड़े आश्चर्य में डाल दिया। 3 नवम्बर 1957 को दूसरा कृत्रिम उपग्रह छोड़ा गया। यह रॉकेट का अगला भाग था। इसका भार 508 किलोग्राम था। इसके भीतर बहुत-से वैज्ञानिक उपकरण थे तथा एक कुत्ता बैठाया गया था। यह कुत्ता, जिसका नाम लायका था, विश्व-अन्तरिक्ष में बहुत ही ऊँचाई पर उड़ाया गया। इससे यह सिद्ध किया गया कि जीवित प्राणी आसमान में उड़ने की अत्यधिक तीव्र गति को सहन कर सकता है।
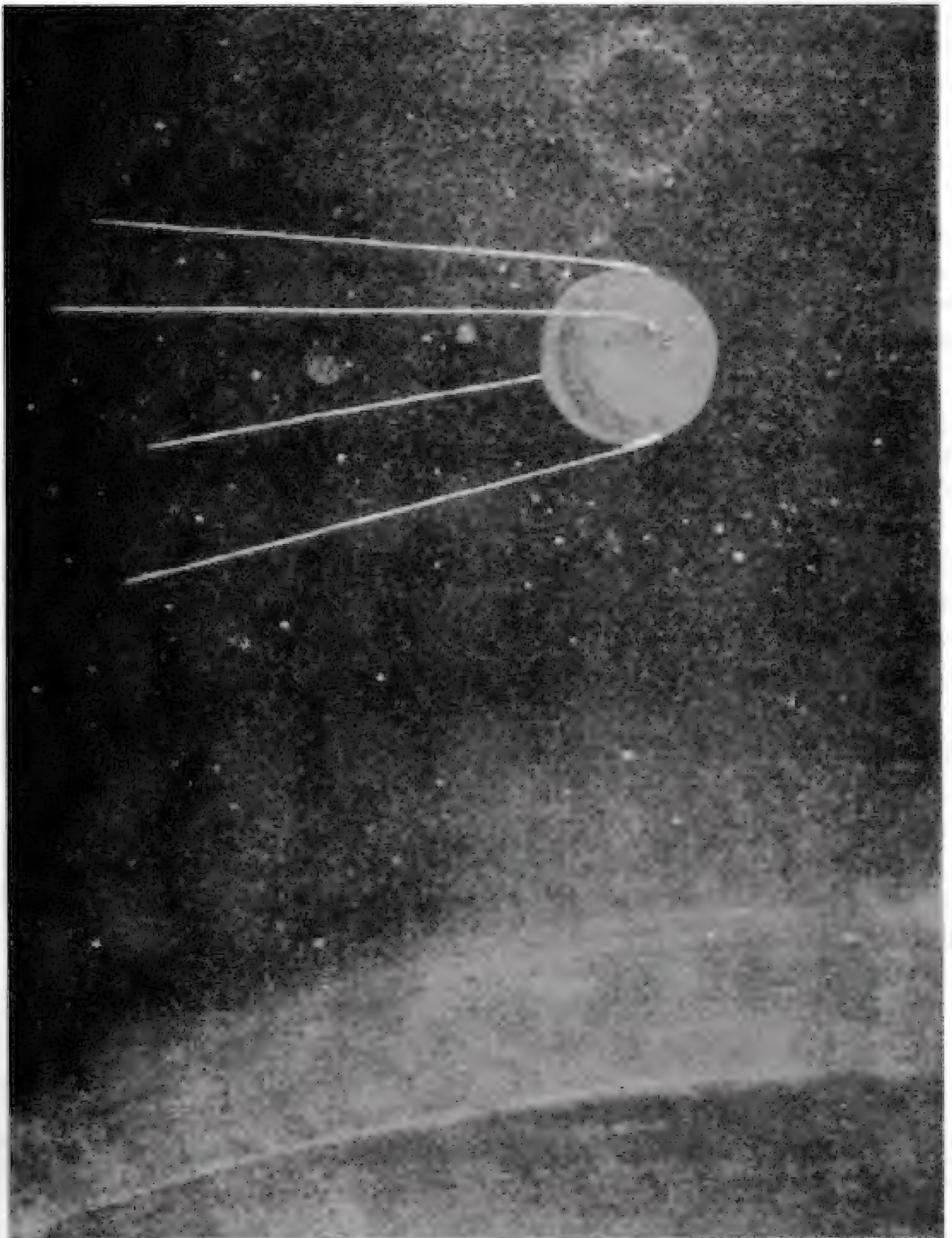
पृथ्वी का प्रथम कृत्रिम उपग्रह

दूसरे 'स्पुतनिक' के छोड़े जाने के आधे वर्ष से कुछ ही अधिक समय के बाद 15 मई 1958 को वैज्ञानिकों ने तीसरा उपग्रह छोड़ा। इसे 'स्पुतनिक' के विषय में विदेशों में लिखा गया कि यह तो उड़ने वाली एक अच्छी-खासी मोटरकार है और वास्तव ही में इस तीसरे 'स्पुतनिक' का भार 1,327 किलोग्राम था और उसमें मनुष्य तक बैठ सकता था।

इन प्रथम उपग्रहों का अन्त में हुआ क्या?

यद्यपि बड़ी ऊँचाई पर वायु का घनत्व बहुत कम है, फिर भी वह इन कृत्रिम चन्द्रमाओं की गति को रोकती है; वे धीरे-धीरे नीचे उतरते हैं, हवा की सघन परतों में तैरते हैं और वहाँ उल्काओं की भाँति जल जाते हैं। परन्तु इस बात से हमें अफ़सोस न होना चाहिए – ये 'स्पुतनिक' विज्ञान के लिए बड़े लाभदायक सिद्ध होते हैं। दूरबीनों द्वारा इनका निरीक्षण करते हुए तथा इनके रेडियो-संकेतों को सुनते हुए वैज्ञानिक लोग वायुमण्डल की ऊँची सतह के बारे में बहुत कुछ नयी जानकारी प्राप्त करते हैं।

हर एक नया उपग्रह पिछले की अपेक्षा अधिक ऊँचाई पर उड़ाया जाता है। पहले उपग्रह की ऊँचाई 900 किलोमीटर, दूसरे की 1,700 किलोमीटर और तीसरे की 1,880 किलोमीटर थी। उपग्रह को जितना ही ऊँचा उड़ाया जाता है, उतनी ही अधिक देर तक वह चक्कर लगाता है, क्योंकि हवा का प्रतिरोध कम होता जाता है।

पहला 'स्पुतनिक' 92 दिन तक अन्तरिक्ष में रहा, पृथ्वी के चारों ओर उसने 1400 चक्कर लगाये और 6 करोड़ किलोमीटर की उड़ान की। यदि यह 'स्पुतनिक' सीधे मंगल ग्रह की ओर गया होता, तो वह इस ग्रह तक उस समय पहुँच गया होता, जबकि वह पृथ्वी के सबसे निकट आ जाता है। दूसरा 'स्पुतनिक' 162 दिन से अधिक समय तक उड़ा और उसने 10 करोड़ किलोमीटर से अधिक की दूरी – अर्थात् पृथ्वी से सूर्य तक की दूरी का दो तिहाई भाग – तय की।

पृथ्वी का तीसरा कृत्रिम उपग्रह 691 दिन भ्रमण करता रहा। इस अवधि में उसने पृथ्वी की 10,036 परिक्रमाएँ कीं और 44 करोड़ 80 लाख किलोमीटर की दूरी तय की। यह दूरी पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी के तीन गुना के बराबर है। 6 अप्रैल 1960 को इस 'स्पुतनिक' ने अपनी विजयशाली जीवन-यात्रा समाप्त की।

इसके बाद, जब कि लोग बीसियों कृत्रिम उपग्रह छोड़ेंगे और रॉकेट-तकनीक पर पूरा अधिकार प्राप्त कर लेंगे तब पृथ्वी के ऊपर के प्रथम स्टेशन का निर्माण-कार्य सम्भव हो जायेगा। इस तरह हमारे लिए सौर-जगत के ग्रहों की ओर का मार्ग खुल जायेगा।

चाँद के गिर्द

विज्ञान के इतिहास में 4 अक्टूबर 1959 का दिन कभी न भुलाया जायेगा। यह पहले स्पुतनिक की दूसरी वर्षगाँठ का दिन था। उस दिन तीसरा कॉस्मिक रॉकेट अपने सफ़र पर रवाना हुआ। इस रॉकेट को चाँद के गिर्द चक्कर लगाकर पृथ्वी के क्षेत्र में वापस आना था।
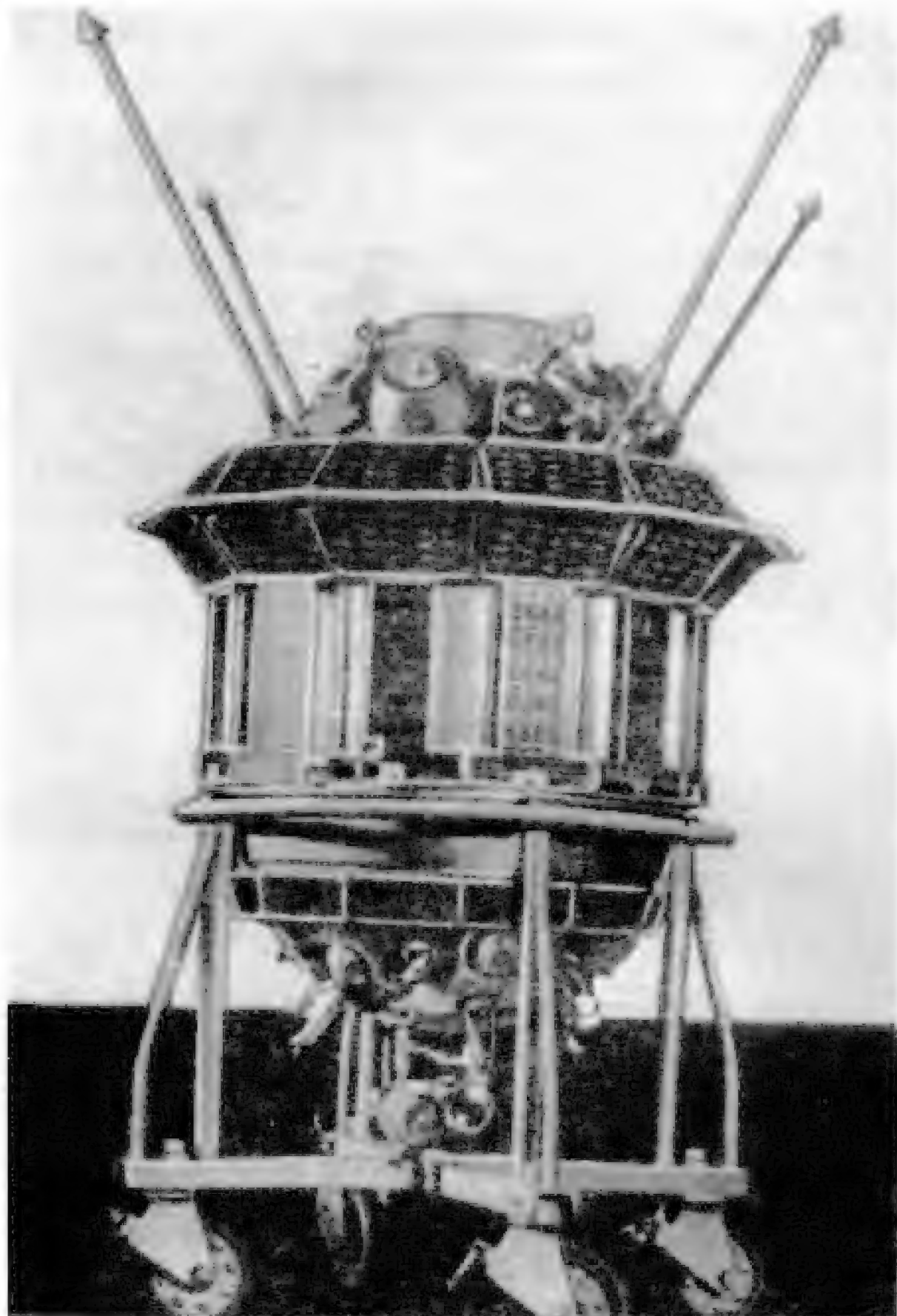
सोवियत स्वचालित अन्तरग्रहीय स्टेशन असेम्बलिंग के ठेले पर

रॉकेट जब अपनी कक्षा पर पहुँचा तो एक स्वचालित अन्तरग्रहीय स्टेशन इससे अलग हो गया। इस स्टेशन का वज़न 278.5 किलोग्राम था। को. ए. त्सीओल्कोव्स्की ने इस शताब्दी के आरम्भ में ही ऐसे स्टेशन का डिज़ाइन तैयार किया था। इस तरह उनका सपना साकार हो गया।

इस स्टेशन में बहुत-से जटिल और सूक्ष्म स्वचालित उपकरण थे। इन उपकरणों और रेडियो ट्रांसमीटरों को चलाने के लिए उसमें बैटरियाँ भी थीं। रासायनिक बैटरियों के अलावा सौर-बैटरियों की भी व्यवस्था थी। ये बैटरियाँ सूरज की शक्ति को सीधे तौर पर बिजली में बदलकर देर तक काम कर सकती हैं।

स्पुतनिकों और अन्तरग्रहीय स्टेशन में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण अन्तर था – स्पुतनिकों के रेडियो-ट्रांसमीटर लगातार काम करते थे और रुके बिना ही धरती को संकेत भेजते थे। स्वचालित अन्तरग्रहीय स्टेशन इससे भिन्न था। इसके उपकरण ऐसे बनाये गये थे कि जो धरती से आदेश प्राप्त होने पर ही काम करते थे।

धरती से आदेश प्राप्त होने पर स्टेशन चालू हो जाता, उपकरण काम करने लगते और रेडियो की 'सभा' आरम्भ हो जाती। ये उपकरण जो निरीक्षण और मापन करते, रेडियो द्वारा धरती को उसकी सूचना दी जाती। हर सभा धरती से नया आदेश प्राप्त होने तक एक या दो घण्टे चालू रहती। हर सभा कई दिनों के बाद होती।

पहले रॉकेट को ही चाँद तक पहुँचाने के लिए कितना सही-सही हिसाब-किताब जोड़ना ज़रूरी था, हम इसकी चर्चा कर चुके हैं। अन्तरग्रहीय स्टेशन के लिए तो और भी अधिक सही हिसाब-किताब की ज़रूरत थी। कुछ विदेशी समाचारपत्रों ने तो इसे "अकल्पनीय सीमा तक सही" कहा।
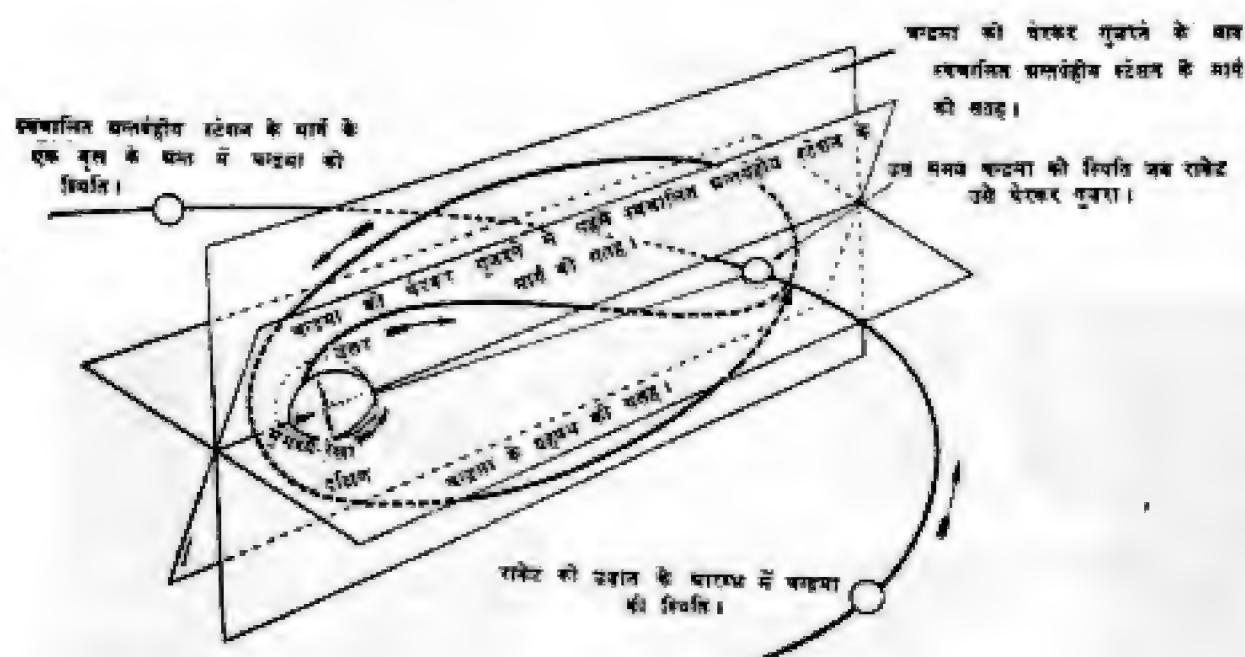
स्वचालित अन्तरग्रहीय स्टेशन इस प्रकार उड़ा और उसने चाँद के अदृश्य हिस्से के फ़ोटो खींचे
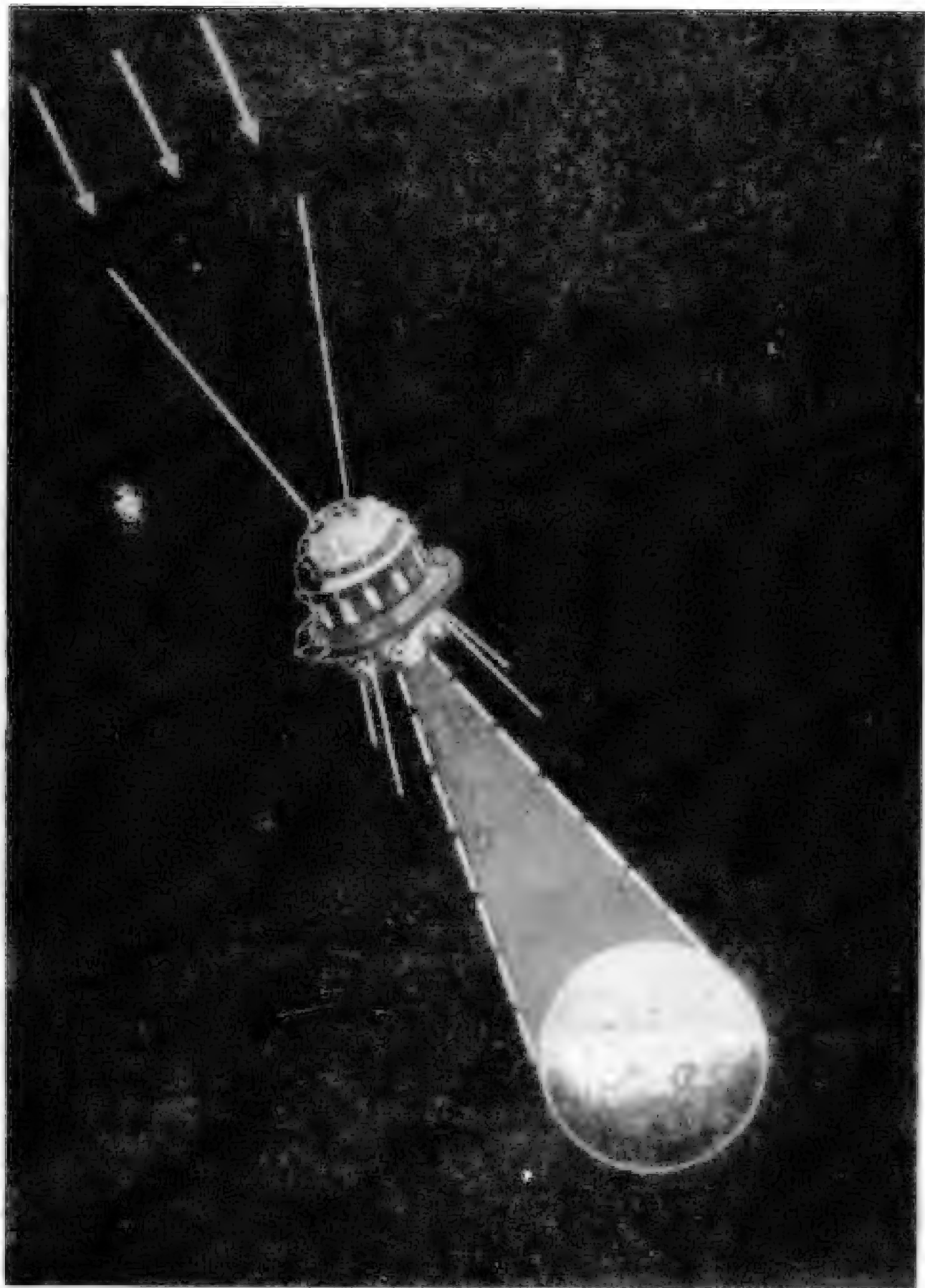
चाँद के अदृश्य हिस्से के फ़ोटोग्राफ़ लेने का काम 40 मिनट जारी रहा

ऐसा दिखायी देता है चाँद का पृथ्वी पर से अदृश्य हिस्सा

पहले रॉकेटों की तुलना में अन्तरग्रहीय स्टेशन छोड़ने का उद्देश्य कहीं अधिक जटिल था। इसे चाँद तक पहुँचकर वहाँ उतर ही नहीं जाना था। इसे तो चाँद के गिर्द चक्कर लगाकर वापस पृथ्वी की सीमा में पहुँचकर हमारे ग्रह का चौथा कृत्रिम उपग्रह बनना था। यह काम ख़ासा मुश्किल था, पर पूरा हुआ। यह स्टेशन ठीक योजनानुसार अपने पूर्व निश्चित मार्ग से गुज़रा और 18 अक्टूबर 1959 को शाम के 7 बजकर

50 मिनट पर (मास्को समय के अनुसार) इसने धरती के गिर्द पहला चक्कर पूरा किया। इस सफ़र में इसे लगभग दो हफ़्ते लगे।

इस स्टेशन ने एक और वैज्ञानिक कमाल किया। चाँद के गिर्द चक्कर लगाते हुए इसने हमारे उपग्रह के कभी न दिखायी देने वाले पक्ष के फ़ोटो लिए और रेडियो द्वारा इन्हें धरती पर पहुँचाया।

ऐसी साहसिक योजना को साकार बनाने के लिए कई जटिल प्राविधिक समस्याएँ हल करनी थीं, फोटो-टेलीविज़न उपकरणों को निश्चित नपे-तुले समय में चन्द्रमा के अदृश्य गोलार्द्ध का निशाना साधना था। उपकरणों को भाररहित स्थितियों में काम करना था। हानिकर कॉस्मिक विकिरण से उनकी रक्षा करनी थी। फ़ोटो ली गयी फ़िल्म को स्वचालित साधनों से डेवलप करना, सुखाना और कई दिन सुरक्षित रखने की दृष्टि से एक विशेष रील पर लपेटना आवश्यक था ताकि रेडियो सिगनलों के ज़रिये धरती पर भेजा जा सके...

बहुत ही बढ़िया ढंग से इन सभी शर्तों का पालन हुआ। विशेष उपकरणों की सहायता से, धरती पर से दिये गये रेडियो सिगनलों का अनुसरण करते हुए स्वचालित उड़ते स्टेशन ने चक्कर लगाना छोड़ दिया, उसकी धुरी सूर्य-चन्द्र रेखा पर स्थिर हो गयी और स्वचालित यन्त्रों ने 40 मिनटों की अवधि में चन्द्रमा की सतह के अदृश्य भाग का छायाचित्र दो नापों में ले लिया : जहाँ चन्द्रमा के पूरे मण्डल का चित्र अंकित करना था वहाँ छोटी नाप में और सतह की तफ़सीलों के चित्र बड़ी नाप में।

धरती पर के रेडियो सेटों ने अन्तरग्रहीय स्टेशन के टेलीविजन प्रसारकों के सिगनल प्राप्त किये और उन्हें चित्र रूप में परिवर्तित कर दिया। ध्यान रहे कि इन सिगनलों की क्षमता धरती पर के साधारण टेलीविजन सेट द्वारा प्राप्त की जाने वाली मध्यम तरंगों की अपेक्षा 1,000 लाख गुना सूक्ष्म थी। उल्लसित वैज्ञानिकों की आँखों के सामने चन्द्रमा के अदृश्य गोलार्द्ध का मानचित्र उपस्थित हुआ। मानवजाति के जन्मकाल ही से पृथ्वी के इस उपग्रह का अदृश्य भाग निरन्तर एक पहेली बना रहा था, पर मानव की प्रतिभा ने अब यह पहेली सुलझा दी है।

अक्तूबर 1959 के अविस्मरणीय दिनों में चन्द्रमा के भूगोल ने अपने विकास क्षेत्र में ज़ोरदार क़दम बढ़ाया। सम्भवतः वह क्षण अब बहुत दूर नहीं है जब अन्वेषक का चरण चन्द्रमा के अदृश्य गोलार्द्ध में प्रवेश कर सकेगा। हाँ, वहाँ के लिए रवाना होते समय लोगों के पास प्रथम उड़ते स्टेशन और उसके अनुगामियों द्वारा बनाया गया उस क्षेत्र का सही मानचित्र होगा।

चन्द्र-ग्रहण

इन्सान प्राचीन काल से ही सूर्य और चन्द्र-ग्रहण से भयभीत होता आया है।

स्वच्छ आकाश में चन्द्रमा काफ़ी तेज़ चमक रहा है। उसके चारों ओर एक भी बादल नहीं है। परन्तु न जाने कहाँ से उसके उज्जवल मुख पर एकाएक एक काली छाया आ जाती है। यह छाया बढ़ती ही जा रही है... और लो, चन्द्रमा की सतह का एक बड़ा भाग लुप्त हो गया और फिर बचा हुआ भाग भी

ओझल हो गया। परन्तु यह कहना ठीक न होगा कि अन्तरिक्ष में अब चन्द्रमा रह ही नहीं गया – इतना होने पर भी वह एक गाढ़े बैंगनी रंग के गोले के रूप में दिखायी पड़ रहा है।

चन्द्र-ग्रहण का कारण यह है कि उस पर पृथ्वी की छाया पड़ जाती है। यदि पृथ्वी की छाया पूरे चन्द्रमा को ढँक लेती है, तो – जैसा कि कहा जाता है – पूर्ण-ग्रहण होता है। यदि वह छाया पूरे चन्द्रमा को नहीं ढँकती, तो केवल खण्ड-ग्रहण होता है।

पर्यवेक्षण करने वालों पर खण्ड-ग्रहण का उतना प्रभाव नहीं पड़ता, जितना कि पूर्ण-ग्रहण का। वह इसलिए कि बहुधा हम चन्द्रमा को हँसिये के रूप में देखते हैं अथवा – यूं कहें – कि हम इस दृश्य को देखने के अभ्यस्त हैं।

पुराने समय में लोगों का ऐसा विश्वास था कि ग्रहण के समय एक भयानक, विकटाकार अजगर चन्द्रमा को निगल जाता है। कुछ देशों के लोग तो इसमें इतना विश्वास करते थे कि अजगर को डराने-भगाने के लिए वे नगाड़ों अथवा दूसरी ध्वनिजनक वस्तुओं को ज़ोर-ज़ोर से पीटते थे। चन्द्रमा जब फिर से आकाश में
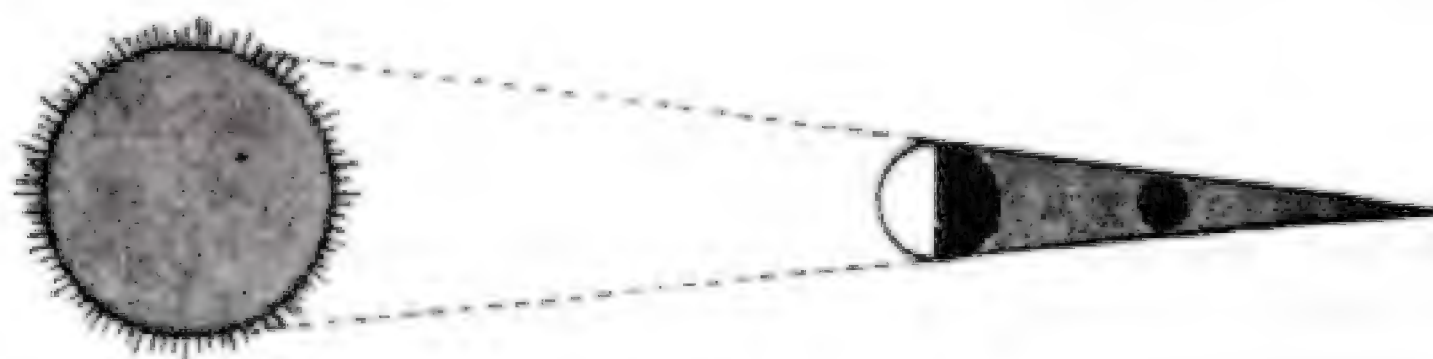
चन्द्र-ग्रहण क्यों होते हैं।

प्रकट होता था, तो लोग बहुत खुशी मनाते थे। वे सोचते थे कि अजगर ने ध्वनि से भयभीत होकर अपना शिकार छोड़ दिया है।

प्राचीन समय के रूस में चन्द्र-ग्रहण को भयानक विपत्ति का अग्रदूत समझा जाता था।

सन् 1248 में एक इतिहासकार ने लिखा –

"चन्द्रमा पर एक निशान नज़र आया – वह रक्त-सा लाल हो उठा और फिर ग़ायब हो गया... और ठीक उसी वर्ष ज़ार बाती अपनी सेना लेकर चढ़ आया..."

हमारे पूर्वज सोचते थे कि चन्द्र-ग्रहण ने तातार खान बाती के आक्रमण की पूर्व सूचना दी थी।

सन् 1471 में इतिहास में लिखा गया – "आधी रात के समय सभी ओर अँधेरा-सा छाया था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे कि चन्द्रमा पर लहू पुत गया हो; अँधेरा काफ़ी समय तक रहा और फिर धीरे-धीरे हट गया..." इस प्रकार इतिहास में हर ग्रहण जनता के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना के रूप में लिखा जाता था।

चन्द्रग्रहण के लिए आवश्यक है कि सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा एक सीधी रेखा में हों और पृथ्वी हो सूर्य और चन्द्रमा के बीच में। आकाश में निश्चित समय के अन्तर पर इन तीन प्रकाश-ग्रहों की इस अवस्था की पुनरावृत्ति होती रहती है।

आदिकाल में ही खगोलविज्ञानियों ने देखा कि हर 18 वर्ष 11 दिन और 8 घण्टे के अन्तर पर चन्द्र-ग्रहण की पुनरावृत्ति उसी क्रम से होती है। ग्रहण के क्रमों का लिख लेना ही काफ़ी है और तब भविष्य के ग्रहणों के विषय में विश्वास के साथ भविष्यवाणी की जा सकती है।

अब तो ग्रहण की भविष्यवाणी करने की कला बहुत ही पूर्ण और निश्चित है और बहुत-से वर्षों के लिए चन्द्र-ग्रहणों की समयसारिणी तैयार कर ली गयी है।

सौर जगत

हमारी पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाने वाला एक आकाशीय पिण्ड है। सूर्य तथा उसके चारों ओर घूमने वाले सभी आकाशीय सौर जगत का निर्माण करते हैं।

पृथ्वी हमारा जन्म-गृह है और सौर जगत हमारा जन्म-नगर, जिसमें उपरोक्त गृह स्थित है।

हमारे इस नगर में बृहस्पति और शनि जैसे विशाल भवन हैं और हमारी पृथ्वी, शुक्र तथा मंगल के समान मध्यम आकार के; कई अत्यन्त छोटे-छोटे भवन भी हैं – ये हैं छोटे-छोटे ग्रह जिन्हें 'एस्टेरॉयड' कहते हैं; और अत्यन्त ही छोटे आकाशीय पिण्ड भी हैं, जिन्हें उल्काएँ कहते हैं। ये उल्काएँ, सम्भवतः नष्ट हुए ग्रहों के बचे हुए भाग हैं। इसके अतिरिक्त एक कृत्रिम ग्रह भी है – वह ग्रह, जिसके बारे में हम कुछ ही आगे चलकर कहेंगे।

हमारे इस सूर्य नगर के ये भवन अपने स्थान पर स्थिर नहीं रहते – शताब्दियों से वे मध्यस्थित प्रकाशग्रह सूर्य के चारों ओर अदृश्य मार्गों में चलते जा रहे हैं। किन्तु यह पूरा सूर्य नगर ही – अर्थात् स्वयं

सूर्य अपने सभी उपग्रहों के साथ – अति विशाल गति से अनन्त विश्व-अन्तरिक्ष में चलता जा रहा है। हमारा सूर्य नगर इस विश्व के अन्य सूर्य-नगरों की भाँति एक घूमता-फिरता नगर है।

मैं तुम्हारा परिचय अपने सूर्य नगर के भवनों से कराऊँगा और यह परिचय सूर्य के निकटतम ग्रह – बुध – से आरम्भ करूँगा।

बुध (मरकरी)

प्राचीन रोम-निवासियों का यह विश्वास था कि उनके भाग्य पर बहुत-से देवताओं का अधिकार है। सभी देवताओं का पिता तथा स्वामी शक्तिशाली जुपिटर (बृहस्पति) माना जाता था। उसकी पत्नी थी जूनो देवी। उनका पुत्र – उज्ज्वल फ़ीबस (यूनान निवासी उसे अपोलो कहते थे) – सूर्य का देवता समझा जाता था। जुपिटर और जूनो की पुत्री थी वीनस (शुक्र) जिसे सुन्दरता की देवी कहा जाता था। देवताओं का सन्देशवाहक – साधारणत: जिसे हरकारा कहते हैं – था फुर्तीला मरकरी यानी बुध। रोम-निवासी मरकरी का चित्र उसकी एड़ियों में छोटे पंख लगाकर बनाते थे।

लोगों ने बहुत समय से मूर्तिपूजकों के देवताओं में विश्वास करना छोड़ दिया है, परन्तु इन देवताओं का नाम विचारशील वैज्ञानिक किताबों में देखा तथा अकादमीशियनों के भाषणों में सुना जा सकता है।

आखिर ऐसा क्यों हुआ? वह इसलिए कि प्राचीन काल के लोगों ने आकाश के प्रकाशग्रहों को अपने देवताओं के नामों से पुकारा। जुपिटर (बृहस्पति), वीनस (शुक्र), मरकरी (बुध) – ये सभी अब तो आकाश-मण्डल में उपस्थित हैं। यहाँ तक कि सबसे 'दरिद्र', द्वितीय व तृतीय श्रेणी के देवता और देवियाँ भी नहीं भूली गयीं। खगोलविज्ञानियों ने नये खोजे गये ग्रह अथवा एस्टेरॉयडों को उन्हीं का नाम दिया।

प्राचीन काल में आकाशीय प्रकाशग्रहों के अध्ययन के साथ मिथ्या विज्ञान 'फलज्योतिष' (एस्ट्रोलॉजी) का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था।

फलज्योतिषी कहते थे कि "मनुष्य के जन्मकाल के समय ग्रहों की स्थिति लिखनी आवश्यक है क्योंकि उनकी पारस्परिक स्थिति का मनुष्य के भाग्य पर प्रभाव पड़ता है।"

इस प्रकार, मनुष्य के जन्मकाल में ग्रहों की जैसी स्थिति होती थी, उसके अनुसार फलज्योतिषी लोग उस मनुष्य के भाग्य और स्वभाव के विषय में भविष्यवाणी करते थे।

उदाहरण के लिए – किसी मनुष्य का जन्म "बुध ग्रह के चिह्न", में हुआ, अर्थात् उस समय, जब कि बुध आकाश के एक निश्चित स्थान पर दिखायी पड़ रहा था। तब फलज्योतिषी भविष्यवाणी करता था कि "यह मनुष्य सौदागर होगा," क्योंकि बुध व्यापार का स्वामी माना जाता था। "मंगल ग्रह के चिह्न" के अन्तर्गत जन्म लेने वालों के बारे में यह भविष्यवाणी की जाती थी कि वे क्रूर तथा खून-खराबा पसन्द करने वाले होंगे, सैनिक, योद्धा बनेंगे... ऐसा इसलिए कहा जाता था कि रोम-निवासियों के लिए मार्स देवता (जिसके नाम पर मार्स – अर्थात् मंगल-ग्रह का नाम रखा था) युद्ध का स्वामी समझा जाता था।

यह मिथ्या विज्ञान - फलज्योतिष – बहुत समय तक प्रचलित था। दो सौ वर्ष पहले तक फलज्योतिषी
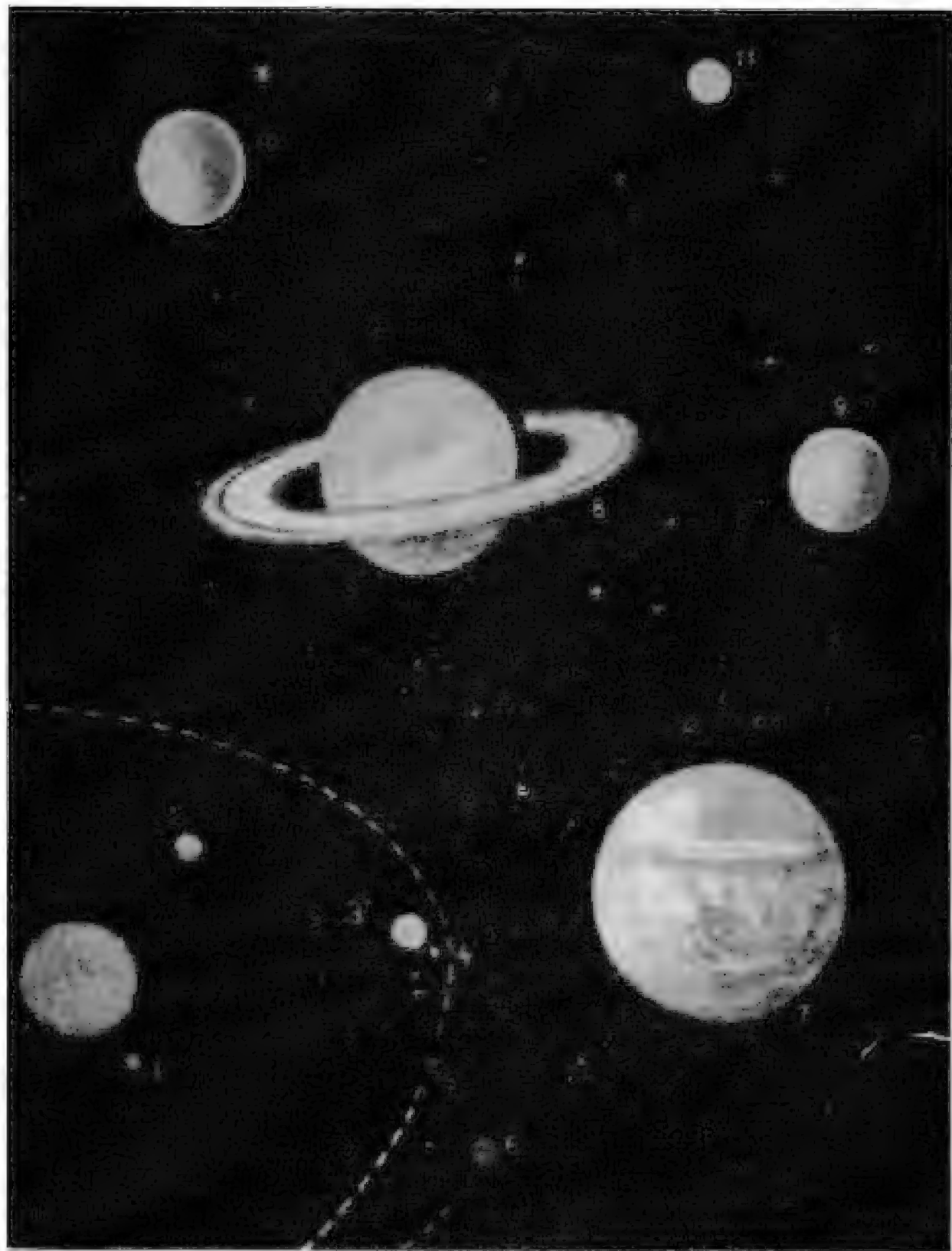
सौर जगत (सूर्य ग्रहों के आकारमान और उनके बीच के अन्तर को ध्यान में न लेते हुए)।
(1) बुध। (2) शुक्र (3) पृथ्वी। (4) चाँद। (5) पहला कृत्रिम ग्रह। (6) मंग्रल। (7) बृहस्पति।
(8) शनि। (9) यूरेनस। (10) नेप्च्यून। (11) प्लूटो

बुध पर सूर्य विशाल ज्वालाधारी मण्डल लगता है।

ज़ारों, राजाओं तथा अन्य कुलीन परिवारों के लोगों के लिए भविष्यवाणी करते थे। इतना ही नहीं, अब भी कुछ अनभिज्ञ व्यक्ति, बहकावे में डालने वाले इन फलज्योतिषियों में विश्वास करते हैं।

भला बुध ग्रह को क्यों देवताओं के सन्देशवाहक अथवा हरकारे के नाम से – मरकरी – पुकारा जाता था?

वह इसलिए कि यह ग्रह सूर्य के सबसे निकट है और वह सूर्य के चारों ओर बहुत तेज़ी से चक्कर लगाता है – पृथ्वी के केवल 88 दिनों में यह अपना चक्कर पूरा कर लेता है। बुध को अपने ग्रहपथ पर एक चक्कर पूरा करने में पृथ्वी की अपेक्षा बहुत कम दूरी तय करनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त उसकी गति पृथ्वी से कहीं अधिक है।

पृथ्वी के वर्ष की अवधि की अपेक्षा बुध का वर्ष एक चौथाई से भी कम है। इसी शीघ्र गति और इसी तेज़ी के कारण, जिससे यह छोटा ग्रह आकाश में दौड़ता है, इसे मरकरी – आकाशीय सन्देशवाहक कहते हैं।

बुध एक छोटा ग्रह है। इसका व्यास केवल 5,000 किलोमीटर है। घनफल में यह पृथ्वी का बीसवाँ भाग है। इसका अर्थ यह है कि पृथ्वी के गोले में से, बुध के आकार के बीस गोले बनाये जा सकते हैं। पृथ्वी की तुलना में बुध की आकर्षण-शक्ति एक चौथाई है – अर्थात् जिस मनुष्य का भार पृथ्वी पर 60 किलोग्राम है, बुध पर उसका भार केवल 15 किलोग्राम ही होगा।

पर्यवेक्षणों द्वारा यह मालूम हुआ कि जिस प्रकार चन्द्रमा का केवल एक ही भाग सदा पृथ्वी की ओर रहता है, उसी प्रकार बुध का भी केवल एक ही भाग सूर्य की ओर रहता है। हम यह भलीभाँति समझ सकते हैं कि यदि हमारी पृथ्वी भी इसी अवस्था में होती, तो क्या होता। बुध के लिए तो ऐसी दशा और भी ख़राब है। वह इसलिए कि बुध सूर्य के कहीं अधिक निकट है और उसके प्रकाशित भाग को पृथ्वी की अपेक्षा सात गुना अधिक प्रकाश और गर्मी मिलती है।

बुध के प्रकाशित भाग – उसके मुख – पर जिस गर्मी का आधिपत्य है, उसका तापमान 400 सेण्टीग्रेड तक पहुँच जाता है। इतने तापमान में तो सीसा और राँगा भी पिघल जाते हैं। यदि बुध पर सीसे ओर राँगे के पर्वत होते, तो वे पिघली हुई धातुओं के महासागर में परिवर्तित हो जाते।

बुध के प्रकाशित भाग पर जो नारकीय गर्मी है, उसके मुक़ाबले में हमारी पृथ्वी की सबसे भीषण गर्मी भी अत्यन्त शीतल मालूम देगी।
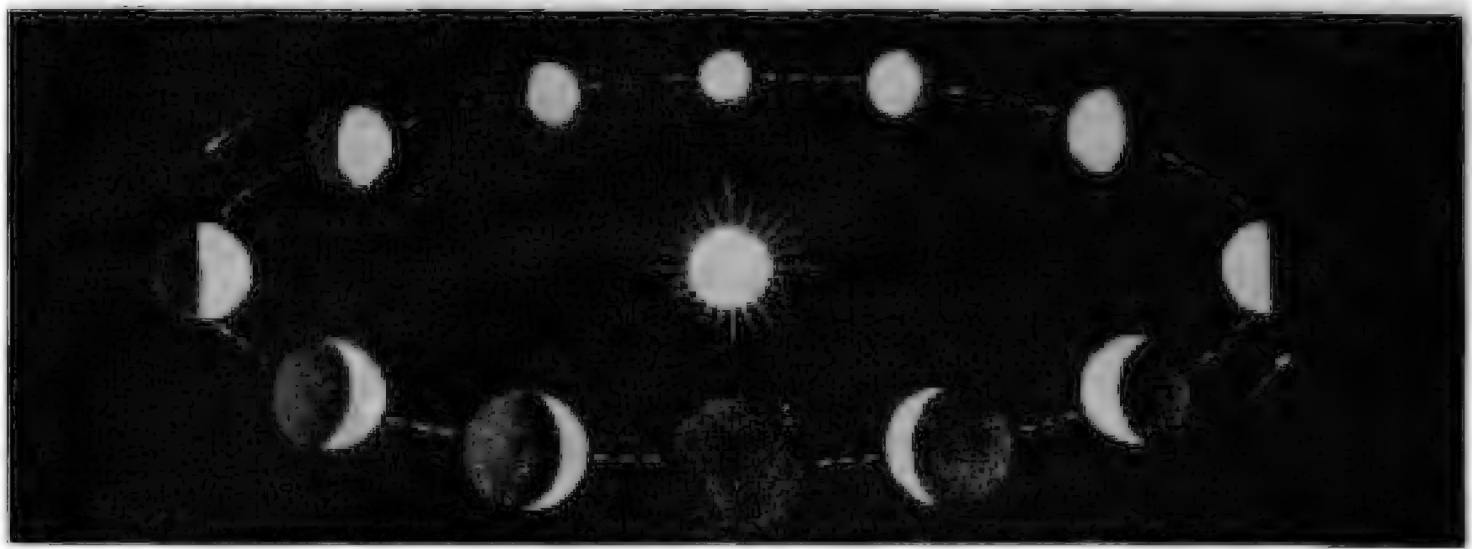
पृथ्वी पर निरीक्षक को बुध और शुक्र की कलाएँ इस प्रकार दिखायी देती है।

लेकिन बुध के पिछले भाग अर्थात् उसकी अप्रकाशित तथा अँधेरी सतह पर भयानक ठण्ड का राज्य है और इस ठण्ड का तापमान अन्तरग्रहीय अन्तरिक्ष के तापमान के लगभग बराबर ही है। वैज्ञानिकों का विचार है कि वहाँ का तापमान शून्य से लगभग – 200 सेण्टीग्रेड नीचे होगा। यदि कभी बुध पर जल रहा होगा, तो प्रकाशित भाग में वह भाप बन गया होगा और तेज़ हवा के झोंकों ने उसे उड़ाकर ठण्डे गोलार्द्ध में भेज दिया होगा, जहाँ वह बर्फ़ बनकर जम गया होगा। परन्तु वास्तव में वहाँ पानी कभी था ही नहीं, क्योंकि बुध के उच्च तापमान में पानी का होना असम्भव है।

कदाचित बुध पर किसी प्रकार का वायुमण्डल नहीं है।

स्पष्ट है कि ऐसी दशा में बुध पर कोई जीवन नहीं हो सकता।

बुध के उपग्रह नहीं हैं।

चन्द्रमा की भाँति बुध की भी कलाएँ हैं जिनका पर्यवेक्षण केवल दूरबीन द्वारा ही किया जा सकता है।

जब पृथ्वी तथा बुध सूर्य के एक ही तरफ़ होते हैं, तब बुध का अप्रकाशित भाग हमारी ओर मुड़ जाता है (इस पृष्ठ का चित्र देखिये); उस समय हम उसे बिल्कुल नहीं देख पाते हैं।

हम बुध को पूर्ण रूप से उस समय देखते हैं, जब वह पृथ्वी के ठीक विपरीत, सूर्य के परे होता है। परन्तु उस समय वह काफ़ी दूर होता है। बुध जब अपने पहले अथवा आख़िरी चतुर्थांश अर्थात् जब वह सूर्य के दाहिने अथवा बायें होता है, उस समय उसे सबसे अच्छी तरह देखा जा सकता है।

बुध का पर्यवेक्षण करना कठिन कार्य है – वह सूर्य के बहुत ही समीप है और सूर्य की किरणें उसे चकाचौंध किये रहती हैं।

शुक्र (वीनस)

कभी-कभी सूर्यास्त होते ही आकाश के पश्चिमी भाग में एक बहुत ही उज्ज्वल तारा निकल आता है। यह सायंकाल का तारा है और आकाश में प्रकाश रहते हुए भी वह सबसे पहले नज़र आने लगता है। इसके बाद धीरे-धीरे वह नीचे उतरना प्रारम्भ करता है और फिर क्षितिज के नीचे चला जाता है – वहाँ जहाँ सूर्य छिपता है।

ऐसा भी होता है कि प्रातः, सूर्योदय के पहले, पूरब में प्रातःकाल का तारा चमकने लगता है। यह तारा अन्य तारों से अधिक देर तक आकाश में रहता है। सभी तारे लुप्त हो जाने के बाद भी यह प्रातःकालीन तारा दिखायी देता रहता है। और केवल उस समय ही, जबकि सूर्योदय होने ही वाला होता है, सूर्य अपनी प्रखर किरणों द्वारा प्रातःकाल के इस तारे को भी लुप्त कर देता है।

सायंकाल – सूर्यास्त के आधे घण्टे बाद – घर से बाहर जाओ और पश्चिमी आकाश में इस सायंकालीन तारे को ढूँढ़ो यदि तुम उसे पा जाओ तो यह देखो, कि किस प्रकार वह धीरे-धीरे पश्चिम की ओर नीचे उतरता है।

परन्तु यदि आकाश के पश्चिमी भाग में इस सायंकालीन तारे को तुम नहीं देख पाते हो, तो किसी से प्रार्थना करो कि सूर्योदय से आधे घण्टे पहले ही वह तुम्हें जगा दे। फिर कमरे से बाहर जाओ और पूरब की ओर देखो। बहुत सम्भव है कि तुम वहाँ प्रातःकाल का उज्ज्वल तारा देख पाओ।

आख़िर यह कौन-सी पहेली है? इस रहस्य का हल तो बहुत ही आसान है – ये सायं तथा प्रातःकाल के दो अलग-अलग तारे नहीं हैं। यह तो केवल एक ही तारा है जिसे कभी सायंकाल और वर्ष के किसी दूसरे भाग में प्रातःकाल में देखा जा सकता है। किन्तु ऐसा भी समय होता है, जबकि उसे आकाश में बिल्कुल ही नहीं देखा जा सकता। इस उज्ज्वल प्रकाशग्रह को तारा कहकर सम्बोधित किया गया, पर ऐसा करना ठीक नहीं है। यह तारा है ही नहीं, यह तो है शुक्र ग्रह। रोम-निवासियों ने अपनी सुन्दरता की देवी के सम्मान में इसे 'वीनस' का नाम दिया।

यह शुक्र ग्रह सचमुच में बहुत ही सुन्दर है। उसका प्रकाश कोमल और सफ़ेद है और इसकी उज्ज्वलता की तुलना न तो किसी तारे से और न किसी भी ग्रह से ही की जा सकती है।

"यदि यह ग्रह इतना तेज़ चमकता है, तो सम्भवतः उसका आकार बहुत बड़ा है?" तुम शायद प्रश्न करोगे।

किन्तु नहीं, आकार में वह उतना ही बड़ा है, जितनी कि हमारी पृथ्वी। बहुधा
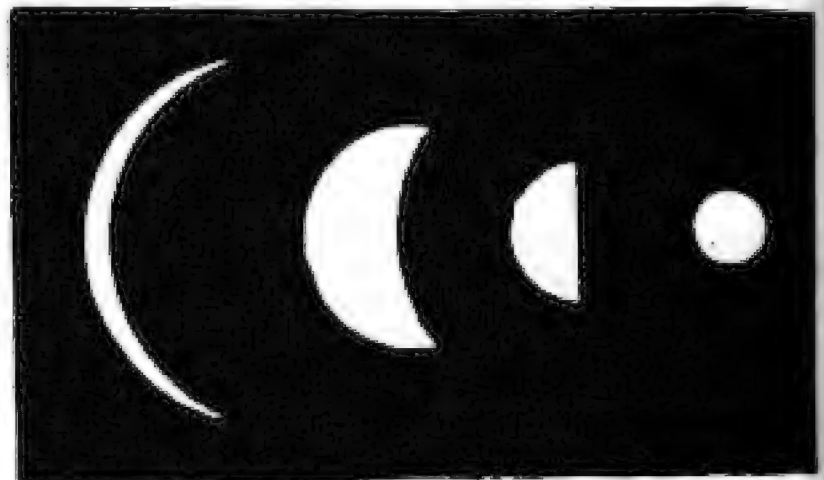
पृथ्वी के बनिस्बत भिन्न-भिन्न स्थितियों में शुक्र का स्वरूप

शुक्र और पृथ्वी को "आकाशीय जुड़वाँ" कहा जाता है।

शुक्र इतना उज्जवल इसलिए मालूम देता है कि विश्व-अन्तरिक्ष में चन्द्रमा को छोड़कर यह पृथ्वी का निकटतम पड़ोसी है। शुक्र पृथ्वी के 4 करोड़ 20 लाख किलोमीटर की दूरी तक समीप आ सकता है, और प्लूटो ग्रह की दूरी की तुलना में, जो सौर जगत का सबसे दूर वाला ग्रह है, यह दूरी बहुत ही कम है।

शुक्र का वर्ष पृथ्वी के वर्ष की तुलना में कहीं अधिक छोटा होता है – उसकी अवधि पृथ्वी के 225 दिनों के बराबर होती है अर्थात् पृथ्वी के साढ़े सात महीनों के बराबर।

चन्द्रमा तथा बुध की तरह शुक्र की भी कलाएँ होती हैं।

यदि शुक्र को किसी अच्छी दूरबीन द्वारा देखा जाये तो उसकी सतह पर केवल कुछ गोल-गोल-से धब्बे दिखायी देते हैं – उनमें कुछ अधिक उज्ज्वल और कुछ अधिक धुँधले, बादलों से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। परन्तु बादल तो केवल वायुमण्डल ही में तैर सकते हैं; इसका अर्थ तो यह है कि शुक्र पर वायुमण्डल है और यह वायुमण्डल काफ़ी घना और ऊँचा है।

शुक्र पर वायुमण्डल है – सबसे पहले यह खोज महान रूसी वैज्ञानिक मिखाइल वसील्येविच लोमोनोसोव ने की। लोमोनोसोव की यह खोज 200 वर्ष पहले – सन् 1761 में – हुई। लोमोनोसोव ने एक बहुत ही असाधारण घटना का निरीक्षण किया – यह घटना थी सूर्य के गोले पर से शुक्र का गुज़रना। यह घटना उस समय होती है, जब शुक्र पृथ्वी और सूर्य की ठीक सीधी रेखा में आता है। उस समय उसका प्रकाशित भाग सूर्य की ओर होता है और अप्रकाशित भाग हमारी तरफ़। सूर्य के चमकते हुए गोले पर से गुज़रते हुए शुक्र एक छोटा-सा काला वृत्ताकार धब्बा मालूम पड़ता है।

मिख़ाईल वसील्येविच लोमोनोसोव
(1711-1765)

शुक्र ग्रह जब सूर्य के किनारे पर आया तो उस क्षण उसके चारों ओर क्षीण प्रकाश देता हुआ एक घेरा-सा दीख पड़ा। लोमोनोसोव ने ठीक ही अनुमान लगाया कि यह घेरा शुक्र ग्रह के वायुमण्डल का है, जो सूर्य की किरणों के उसमें से गुज़रने के कारण कुछ-कुछ चमकता है।

उस समय दूसरे खगोलविज्ञानी भी लोमोनोसोव की ही भाँति सूर्य के गोले पर से शुक्र की गति का निरीक्षण कर रहे थे। लेकिन वे इतने सूक्ष्मदर्शी नहीं थे।

उन्होंने भी प्रकाश देने वाले उस घेरे को देखा, किन्तु यह न समझ सके कि वह है क्या। उन्होंने केवल इस बात पर दुःख प्रकट किया कि इस घेरे के कारण वे उस समय का ठीक-ठीक अंकन न कर सके, जब कि शुक्र के किनारे ने सूर्य का छोर छुआ।

सूर्य के गोले पर से शुक्र का गुज़रना

परन्तु लोमोनोसोव ने लिखा – "...शुक्र ग्रह हमारी पृथ्वी की भाँति ही विस्तृत वायुमण्डल से घिरा हुआ है। हो सकता है कि वह वायुमण्डल हमारी पृथ्वी के वायुमण्डल की अपेक्षा अधिक बड़ा हो।"

लोमोनोसोव की सूक्ष्मदर्शिता और भी आश्चर्यजनक है, क्योंकि उन्होंने शुक्र ग्रह की इस गति का निरीक्षण किसी बेधशाला से नहीं, किन्तु अपने घर की खिड़की से स्वयं अपने हाथों के बनायी हुई दूरबीन द्वारा किया!

सूर्य के गोले पर से शुक्र ग्रह का गुज़रना एक बहुत ही बिरली घटना है। पिछली बार यह सन् 1882 में हुई थी और भविष्य में फिर यह घटना सन् 2004 में होगी। हो सकता है कि तुम – इस किताब के पाठक – अपनी वृद्धावस्था में स्वयं इस घटना को अपने टेलीस्कोप से देख पाओ...

लोमोनोसोव के समय से अब तक विज्ञान ने काफ़ी प्रगति की है। अब तो वैज्ञानिक न केवल यही जानते हैं कि किसी ग्रह पर वायुमण्डल है या नहीं, अपितु वे यह भी बता सकते हैं कि वह वायुमण्डल किन-किन गैसों से बना है।

वैज्ञानिक यह जानते थे कि शुक्र के वायुमण्डल में नाइट्रोजन है, किन्तु अभी तक यह स्पष्ट नहीं हुआ है कि वहाँ ऑक्सीजन है या नहीं। इसका क्या अर्थ होता है, यह तुम शीघ्र ही समझ जाओगे। इसका अर्थ यह है कि या तो शुक्र पर वनस्पतियाँ बिल्कुल है ही नहीं, जो वायुमण्डल में ऑक्सीजन निकालती हैं, अथवा वे अभी बहुत ही कम हैं। हाँ, इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि वे वहाँ कम हों। तुम इसका कारण अभी समझ जाओगे।

खगोलविज्ञानियों के पर्यवेक्षणों के अनुसार शुक्र के एक दिन-रात की अवधि हमारी पृथ्वी के 20-24 दिन-रातों के बराबर होती है। (शुक्र के दिन-रात की ठीक-ठीक अवधि का निर्णय अभी तक नहीं हुआ है, क्योंकि सही निर्णय करने में कई कठिनाइयाँ हैं।) शुक्र पर हरेक दिन और हरेक रात की अवधि पृथ्वी के 10-12 दिन-रातों के बराबर – अर्थात् 250-300 घण्टे तक की – होती है। शुक्र पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य के कहीं अधिक समीप है। अतएव उसे हमारे ग्रह की अपेक्षा सूर्य से दो गुना अधिक गर्मी और प्रकाश मिलता है।

चन्द्रमा की यात्रा की कहानी से तुम जानते ही हो कि चन्द्रमा की रात और उसके दिन 354 घण्टे के होते हैं, और उनके तापमान में कितना अधिक अन्तर है।
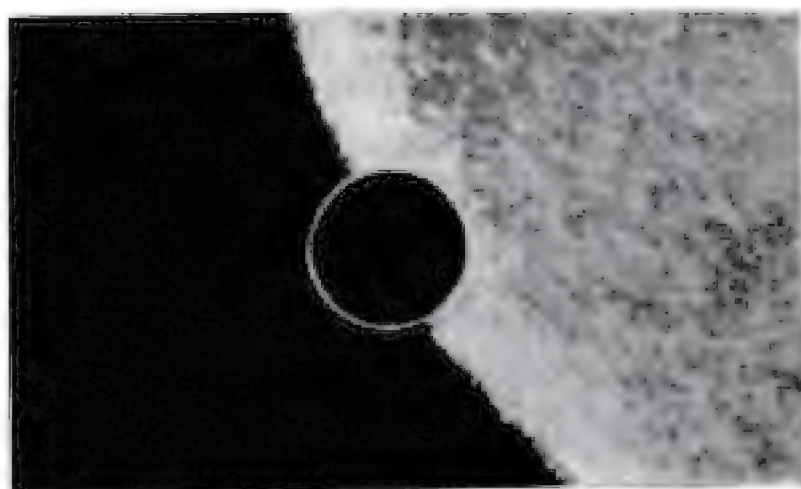
चूँकि शुक्र ग्रह चन्द्रमा की अपेक्षा सूर्य के काफ़ी समीप है, अतएव वायुमण्डल के अभाव में शुक्र पर दिन और रात के बीच तापमान का अन्तर और भी अधिक होता। दिन में उसके वायुमण्डल में तैरते हुए घने बादल सूर्य की तपती हुई किरणों से उसकी सतह की रक्षा करते हैं और रात्रि में वही वायुमण्डल गर्मी को विश्व-अन्तरिक्ष में शीघ्र ही उड़ जाने से रोकता है।

इस पर भी, शुक्र का दिन का तापमान हमारे लिए अनुकूल नहीं हो सकता क्योंकि यह तापमान 100 सेण्टीग्रेड तक ऊपर जाता है! अर्थात् शुक्र के महासागरों – वैज्ञानिकों का विचार है कि वे वहाँ हैं – का पानी दिन में हमारे यहाँ खौलते हुए पानी की तरह गर्म हो जाता है।

खगोलविज्ञानियों ने शुक्र के अँधेरे भाग में – जहाँ रात्रि है – बादलों के स्तर का तापमान मापा। इससे ज्ञात हुआ कि वह – 23 सेण्टीग्रेड के बराबर है। यह तापमान तो पूर्णतया सहनीय है क्योंकि मास्को में – 23 सेण्टीग्रेड का तापमान बहुत अधिक ठण्डा नहीं समझा जाता।

तुम समझ गये होगे कि वनस्पति के लिए शुक्र की परिस्थितियाँ कोई बहुत अच्छी नहीं हैं। किन्तु पूर्ण विश्वास के साथ यह कहना कठिन है कि वहाँ पेड़-पौधे बिल्कुल हैं ही नहीं। हमारी पृथ्वी पर ऐसे पौधे पाये जाते हैं जो गर्म सोतों में जीवित रहते हैं। हमारी पृथ्वी के पेड़-पौधे सर्दी बर्दाश्त करना तो बहुत ही भलीभाँति सीख गये हैं।

बहुत सम्भव है कि शुक्र ग्रह पर कुछ ही समय पहले पेड़-पौधे उगे हों, और उन्होंने अभी उतना अधिक ऑक्सीजन वायुमण्डल में न निकाला हो कि हमारे वैज्ञानिक अपने यन्त्रों की सहायता से उसकी उपस्थिति का ज्ञान प्राप्त कर सकें।

हो सकता है कि शुक्र पर जीवन की उत्पत्ति तथा उसका विकास हमारी ही पृथ्वी के अनुसार हो।

पहला कृत्रिम ग्रह

2 जनवरी 1959 के आठ बजे सायं धरती से एक विशाल बहुस्तरीय रॉकेट आकाश में उठा और रात्रि के अन्धकार में सर्चलाइटों द्वारा प्रकाशित वह वायुमण्डल के घनत्व को चीरता हुआ तेज़ी से ऊपर उड़ चला।

मानव प्रगति के इतिहास में यह घटना सदा अमर रहेगी। पृथ्वी के महान विचारकों ने सदियों से इसका स्वप्न देखा था। जनवरी की इस अँधेरी शाम को ब्रह्माण्ड में प्रथम अन्तरग्रहीय जहाज़ भेजा गया। अभी उसमें मनुष्य नहीं था, उसकी गति का संचालन वैज्ञानिकों तथा मज़दूरों द्वारा निर्मित जटिल यन्त्रों ने किया। इन यन्त्रों की प्रामाणिकता अथवा शुद्धता इतने ऊँचे स्तर की थी कि कॉस्मिक रॉकेट अपने पूर्व निश्चित मार्ग पर गया, पूर्व निश्चित बिन्दु को छूता हुआ चन्द्रमा के समीप से गुज़रा और आगे को उड़ चला, ताकि सूर्य का उपग्रह बन जाये और ग्रहों के परिवार में समानाधिकार वाले सदस्य की भाँति स्थायी रूप से रहे।

नया ग्रह बड़ा नहीं है – उसका भार केवल 1,472 किलोग्राम ही है, जो पृथ्वी के भार से अरबों-खरबों गुना कम है। लेकिन पृथ्वी का यह शिशु सौर जगत के अन्य आकाशीय पिण्डों से एक बात

जिस सोवियत अन्तरिक्ष राकेट के सहारे कृत्रिम ग्रह अन्तरिक्ष में छोड़ा गया था उस राकेट का अन्तिम हिस्सा

में श्रेष्ठ अवश्य है। इसे इन्सान ने यह क्षमता प्रदान की कि वह पृथ्वी से चन्द्रमा तक के अपने मार्ग का वर्णन कर सके। इस रॉकेट में शार्ट वेब के रेडियो-ट्रांसमीटर लगे थे। ये ट्रांसमीटर रॉकेट के मार्ग की सभी बातों की सूचना देते थे और अपूर्व ग्रहणशीलता वाले कुशल यन्त्र रेडियो के इन संकेतों को धरती पर भेजते थे। वैज्ञानिकों ने इन संकेतों की व्याख्या की। उन्हें ज्ञात हुआ कि विश्व-अन्तरिक्ष में कितने अधिक उल्का-कण उड़ते हैं, वहाँ कितनी कम घनी गैसें हैं, सूर्य से हमारी ओर ऊर्जा की कौन-कौन-सी धाराएँ आती हैं, और इसी प्रकार की अन्य भी बहुत-सी बातें मालूम हुईं।

प्रथम कॉस्मिक रॉकेट, 4 जनवरी को, मास्को समय के अनुसार प्रातःकाल 5 बजकर 59 मिनट पर चन्द्रमा के पास से गुजरा। उस समय यह रॉकेट चन्द्रमा की सतह से 5-6 हज़ार किलोमीटर की दूरी पर था, अर्थात् चन्द्रमा के व्यास की डेढ़ गुना दूरी पर।

रॉकेट की पृथ्वी से चन्द्रमा तक की उड़ान 34 घण्टे तक जारी रही। किन्तु इस कॉस्मिक जहाज़ के रेडियो द्वारा भेजे गये कुशल यन्त्रों के संकेतों का अध्ययन करने के लिए वैज्ञानिकों ने महीनों तक अथक प्रयत्न किया।

हो सकता है कि तुम पूछो कि यह भला क्यों हुआ कि रॉकेट पृथ्वी से द्वितीय कॉस्मिक गति – 11.2 किलोमीटर प्रति सेकण्ड की या लगभग 40 हज़ार किलोमीटर प्रति घण्टे की गति से उड़ा परन्तु इसने चन्द्रमा के सबसे समीप बिन्दु तक, जो 370 हज़ार किलोमीटर दूर है, पहुँचने में 9 घण्टे से कुछ अधिक समय के बजाय पूरे 34 घण्टे लगाये?

यह समझने के लिए एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात ध्यान में रखनी चाहिए और वह बात है पृथ्वी के आकर्षण। एक ऐसे प्रयोग की कल्पना करो। मान लो कि खिलौना-तोप से एक भारी गोली छोड़ी जाती है। इस गोली में रबड़ का धागा बँधा हुआ है। गोली तो उड़ती है, किन्तु यह रबड़ का धागा फैलते हुए उस गोली की तेज़ी रोकता है, उसकी गति को कम कर देता है। यदि गोली की गति बहुत अधिक है तो धागा टूट जायेगा, और गोली दूर जा गिरेगी। परन्तु यदि धागा उतना दबाव सह लेता है, तो वह सिकुड़कर फिर से गोली को वापस खींच लेगा।

पृथ्वी के आकर्षण की शक्ति की तुलना अदृश्य रूप से फैलने वाले धागे से की जा सकती है जो रॉकेट की गति को धीमा कर देती है। यदि रॉकेट की गति काफ़ी न हो, तो पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति उसे फिर से पृथ्वी पर खींच लेगी। ठीक यही बात उन चार अमेरिकी रॉकेटों के साथ हुई जो सन् 1958 में चन्द्रमा की ओर छोड़े गये थे। उनमें से एक भी अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच सका। वे सभी पृथ्वी पर वापस आ गिरे, क्योंकि वे पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण की अदृश्य ज़ंजीरों को तोड़ने में असमर्थ रहे।

कॉस्मिक रॉकेट ने ही इस धागे को तोड़ा और सूर्य के चारों ओर अपने पूर्व निश्चित ग्रहपथ में चला गया। किन्तु यह स्पष्ट है कि सब कुछ होते हुए भी पृथ्वी के आकर्षण का प्रभाव उस पर बना रहा। इसी से उसकी गति कम हो जाती थी। परन्तु यह गति इतनी काफ़ी थी कि रॉकेट पृथ्वी और चन्द्रमा के आकर्षण की बाधाओं के बावजूद भी विश्व-अन्तरिक्ष में चला गया।

पृथ्वी और चन्द्रमा के आकर्षण की ज़ंजीर तोड़कर अन्तरिक्ष में जाने वाले इस रॉकेट का आख़िर हुआ क्या?

जैसा कि कहा जा चुका है, वह सूर्य के चारों ओर अपने ग्रहपथ पर, जिसके आकार और स्थिति के विषय में 4 जनवरी 1959 को ही पत्र-पत्रिकाओं में छप चुका था, चक्कर काटने लगा। पिछले वर्षों के महान आविष्कारों में से एक है द्रुत गति से गणना करने वाला यन्त्र। इस यन्त्र ने ही वैज्ञानिकों को इतने
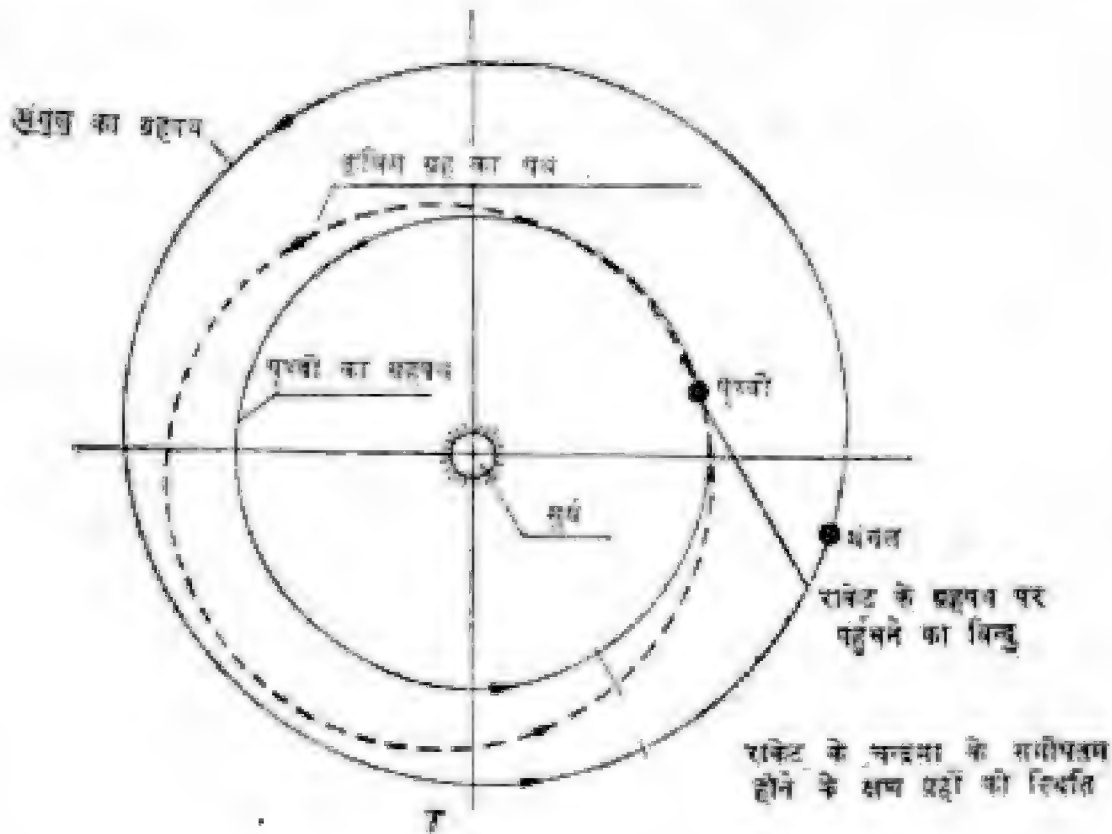
पहले कृत्रिम ग्रह का पथ

कम समय में वे सारी गणना करने में सहायता दी जिसे करने के लिए दर्जनों कुशल गणितज्ञों को कई महीनों तक परिश्रम करना पड़ता। ये यन्त्र कुछ ही घण्टों में यह सारी गणना कर देते हैं।

इस नये ग्रह का पथ क्या है?

यह ग्रहपथ अण्डाकार है। उसके केन्द्र से सूर्य 2 करोड़ 58 लाख किलोमीटर दूर है। इस अण्डाकार चक्र में चलते हुए यह कृत्रिम ग्रह 14 जनवरी 1959 को सूर्य के सबसे निकट आया और उस समय सूर्य से उसकी दूरी 14 करोड़ 60 लाख किलोमीटर के बराबर थी। सूर्य से इस कृत्रिम ग्रह की सबसे अधिक दूरी 19 करोड़ 70 लाख किलोमीटर है और 1959 के सितम्बर के आरम्भ में वह वहाँ पहुँच गया।

इस नये ग्रह का वर्ष – अर्थात् सूर्य के चारों ओर घूमने की उसकी अवधि – 15 महीनों के बराबर है। अतएव इस ग्रह का वर्ष पृथ्वी के वर्ष की अपेक्षा एक चौथाई अधिक है।

नये ग्रह की सूर्य से औसत दूरी 17 करोड़ 20 लाख किलोमीटर है। यह दूरी सूर्य से पृथ्वी की औसत दूरी की अपेक्षा 2 करोड़ 20 लाख किलोमीटर अधिक है। सौर जगत का प्रथम कृत्रिम ग्रह पृथ्वी
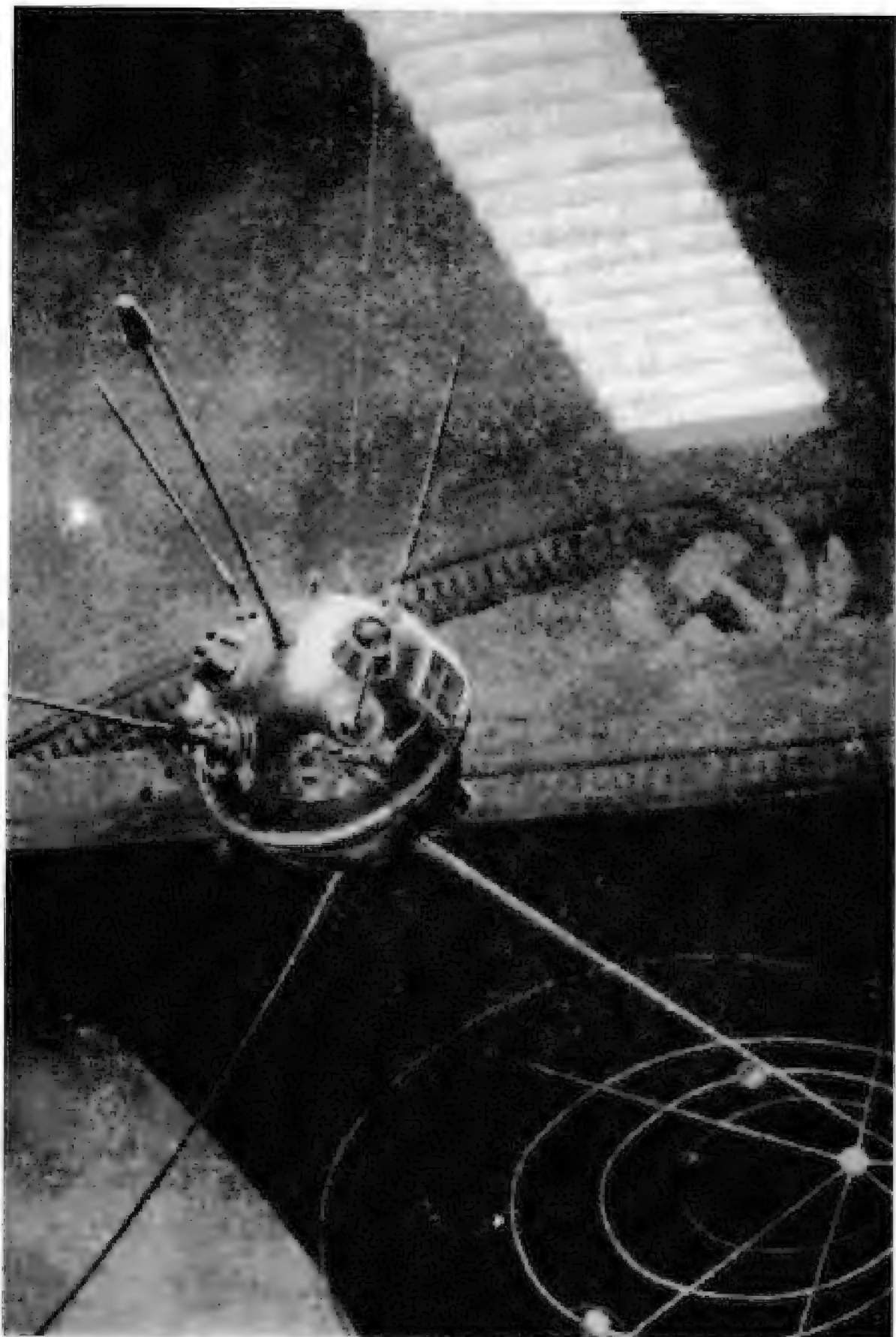
सोवियत कृत्रिम ग्रह 'मेच्ता' (स्वप्न)

तथा मंगल के बीच गतिमान है (148 पृष्ठ का चित्र देखो)। वह थोड़ी ही देर के लिए पृथ्वी के ग्रहपथ के भीतर आता है और फिर उससे दूर चला जाता है। कभी-कभी वह मंगल ग्रह के समीप 1 करोड़ 50 लाख किलोमीटर की दूरी तक आ सकता है। उपरोक्त दूरी पृथ्वी और मंगल ग्रह के अधिकतम सामीप्य की दूरी से चार गुना कम है।

ग्रहपथ में नये ग्रह की गति 32 किलोमीटर प्रति सेकण्ड है और यह ग्रह एक वर्ष में लगभग एक अरब किलोमीटर का फ़ासला तय करता है।

तुम प्रश्न करोगे – यदि रॉकेट पृथ्वी से 11.5 किलोमीटर प्रति सेकण्ड की गति से उड़ा और चन्द्रमा के समीप उसकी गति केवल 2.45 किलोमीटर प्रति सेकण्ड थी, तो फिर उसे इतनी विशाल गति (32 किलोमीटर प्रति सेकण्ड) कहाँ से मिली? इसे बहुत ही आसानी से समझा जा सकता है – जब रॉकेट अपने अड्डे पर ही खड़ा था, तभी उसकी सूर्य के चारों ओर घूमने की गति 30 किलोमीटर प्रति सेकण्ड थी। सचमुच में ऐसा ही है। तुम्हें आश्चर्यचकित नहीं होना चाहिए – हम, तुम और पृथ्वी की सभी वस्तुएँ सूर्य के चारों ओर 30 किलोमीटर प्रति सेकण्ड की गति से, अर्थात् प्रति घण्टे एक लाख से अधिक किलोमीटर की गति से, चल रही हैं। यह सही है कि हम इसे बिल्कुल अनुभव नहीं करते हैं।

इस बात को अच्छी तरह समझो कि वे सारी गतियाँ, जिनके विषय में ऊपर कहा गया है – अर्थात् प्रथम कॉस्मिक गति, द्वितीय कॉस्मिक गति और चन्द्रमा के समीप से गुज़रते हुए रॉकेट की गति – पृथ्वी के, हमारी धरती माता के, केन्द्र के बनिस्बत दी गयी हैं। धरती के साथ हम अटूट सूत्रों में बँधे हुए हैं और यदि हम उसे छोड़ भी दें तो भी सूर्य के बनिस्बत उसकी गति को बनाये रखेंगे।

मेकेनिक्स के नियमानुसार एक दिशा की ओर प्रेरित गतियाँ जुड़ती जाती हैं। उदाहरणार्थ जहाज़ नदी की धारा के बहाव के साथ 30 किलोमीटर प्रति घण्टे की रफ़्तार से जा रहा है, तुम उसके डेक पर उसी की गति की दिशा की ओर 10 किलोमीटर प्रति घण्टे की रफ़्तार से दौड़ते हो। फिर तुम्हारी गति नदी के किनारे स्थिर खड़े बिन्दु के बनिस्बत 40 किलोमीटर प्रति घण्टा है।

जब नया ग्रह सूर्य के चारों ओर अपने पथ पर पहुँचा तो उसकी निजी गति 2 किलोमीटर प्रति सेकण्ड थी। जब यह ग्रह पृथ्वी से ऊपर उड़ा उस समय उसने सूरज के बनिस्बत 30 किलोमीटर प्रति सेकण्ड की गति प्राप्त की। यह गति बराबर बनी रही। इससे उसकी निजी गति जोड़ देने से कुल गति 32 किलोमीटर प्रति सेकण्ड हो जाती है।

प्रथम कृत्रिम ग्रह पर पताकाएँ हैं। यदि किसी विशाल उल्का से टक्कर खा जाने जैसी कोई भारी दुर्घटना न घटी और या भविष्य में धरती के लोग ही अन्तरग्रहीय जहाज़ पर ब्रह्माण्ड में पहुँचकर जनता की ब्रह्माण्ड विजय का यह जीता-जागता प्रमाण वापस धरती पर न ले आये तो वह उन पताकाओं के साथ अपने पथ पर अरबों वर्षों तक चलता रहेगा।

कृत्रिम ग्रह के निर्माण ने विश्व को कॉपरनिकस, गैलीलिओ, गियोर्दानो ब्रूनो के सिद्धान्तों की सच्चाई का सबसे बड़ा तथा विश्वासजनक प्रमाण दिया है।

मंगल (मार्स)

ग्रहों में से एक ग्रह प्राचीन काल के लोगों के लिए भय का कारण था। उन्हें वह ग्रह दूर स्थित पृथ्वी को क्रोध से देखते हुए शक्तिशाली देवता की लाल आँख जैसा लगता था। इस लाल प्रकाशग्रह – मंगल – को रोम-निवासियों ने युद्ध के देवता – मार्स – का नाम दिया।

सूर्य से मंगल की औसत दूरी 22 करोड़ 80 लाख किलोमीटर है। यह दूरी सूर्य से पृथ्वी तक की दूरी की अपेक्षा डेढ़ गुना अधिक है। अत्यधिक दूरी के मापन को सरल बनाने के लिए वैज्ञानिकों ने सूर्य से पृथ्वी तक की दूरी – 15 करोड़ किलोमीटर – को खगोल-इकाई माना। अतएव सूर्य से मंगल की दूरी डेढ़ खगोल-इकाई है।

किस समय मंगल ग्रह का पर्यवेक्षण आसानी से किया जा सकता है? स्पष्टतः उस समय, जबकि पृथ्वी और मंगल सूर्य के एक ही तरफ़ होते हैं। मंगल और पृथ्वी की इस प्रकार की परस्पर स्थिति को
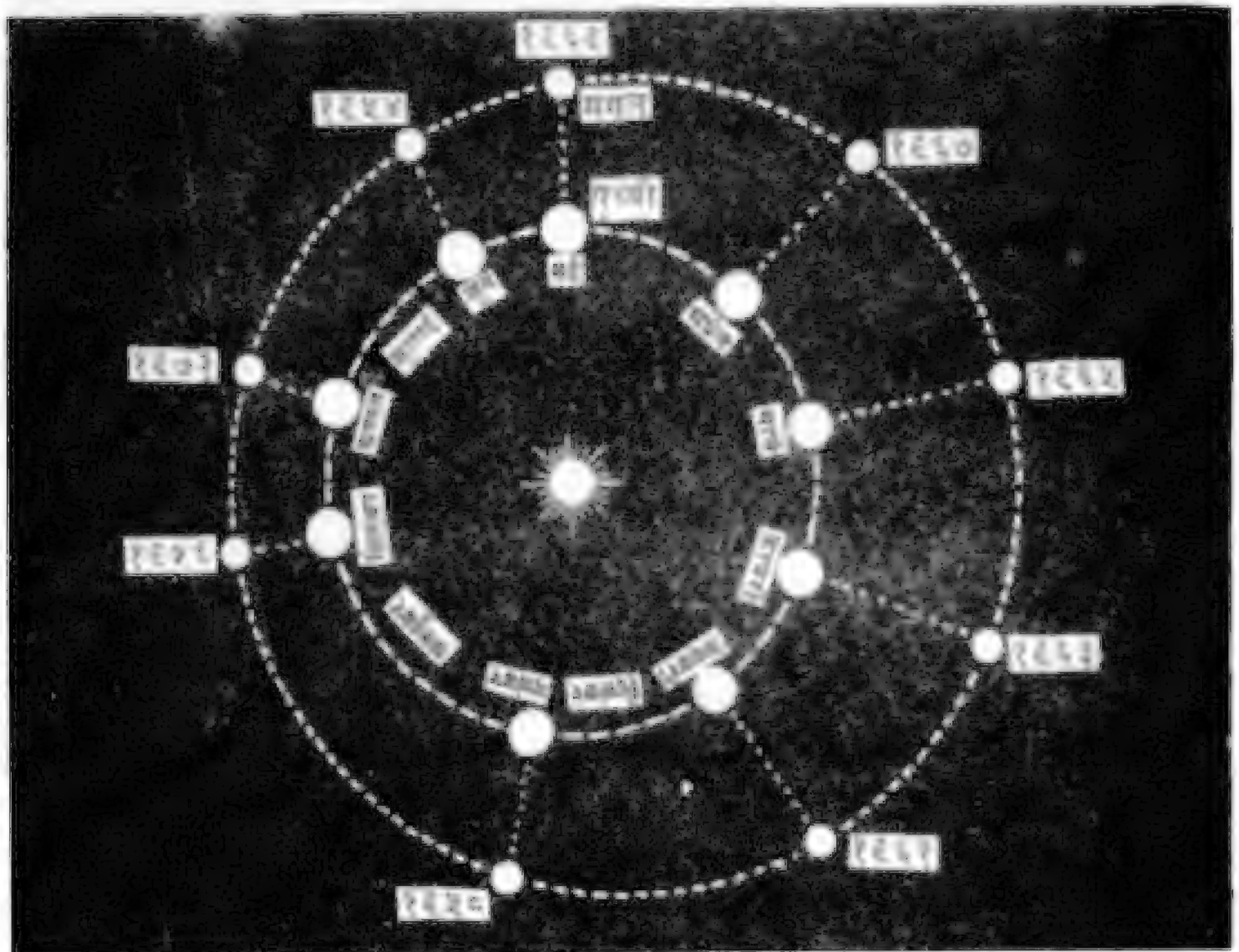
सन् 1954 से 1971 तक मंगल की प्रतिस्थितियाँ
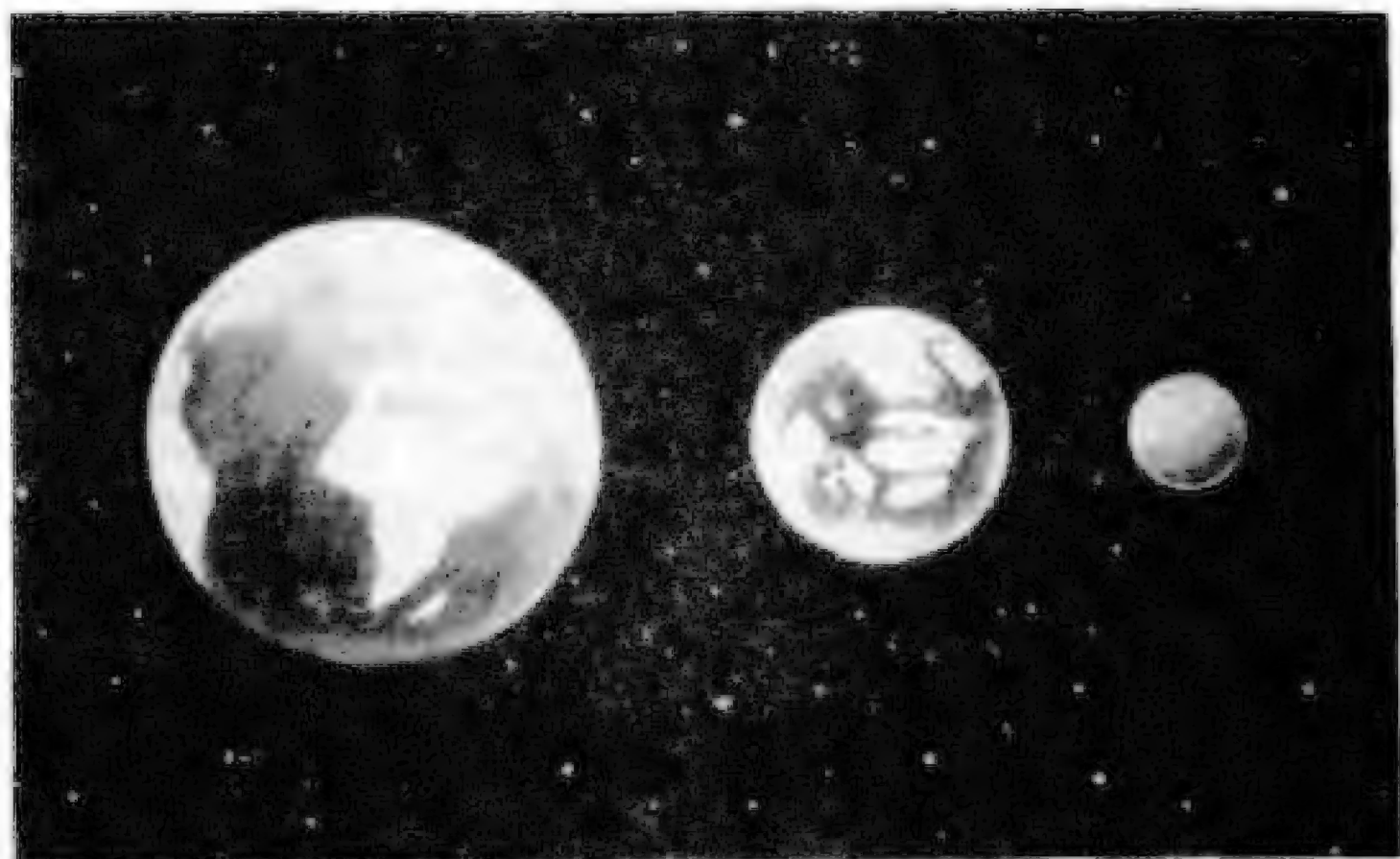
पृथ्वी, मंगल और चन्द्रमा के तुलनात्मक आकारमान

प्रतिस्थिति कह सकते हैं।

उपरोक्त प्रतिस्थिति हर दो वर्ष बाद आती है। ऐसी स्थिति में मंगल पृथ्वी के लगभग 7-10 करोड़ किलोमीटर निकट आ जाता है।

हर पन्द्रह-सत्तरह वर्षो बाद महान प्रतिस्थिति आती है। इस स्थिति के समय मंगल ग्रह और पृथ्वी एक-दूसरे के सबसे अधिक निकट आ जाते हैं। इनके बीच केवल 5 करोड़ 50 लाख किलोमीटर की दूरी रह आती है।

सन् 1956 में मंगल ग्रह इसी महान प्रतिस्थिति में आ गया था। इस स्थिति में इसने दुनिया भर के खगोलविज्ञानियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया।

उपरोक्त विशेष स्थिति में मंगल ग्रह आकाश के सबसे उज्ज्वल प्रकाशग्रहों में से एक होता है।

जब मंगल और पृथ्वी सूर्य की भिन्न-भिन्न दिशाओं में होते हैं तब इस ग्रह का पर्यवेक्षण करना बड़ा ही कठिन होता है। उस समय इन दोनों के बीच की दूरी 40 करोड़ किलोमीटर की हो जाती है। स्पष्ट है कि जब मंगल पृथ्वी से अधिकतम दूरी पर होता है, बहुत ही कम लोग उसका पर्यवेक्षण करते हैं।

मंगल छोटा ग्रह है। उसका व्यास 6,800 किलोमीटर है, अर्थात् चन्द्रमा के व्यास से केवल दोगुना अधिक। मंगल ग्रह घनफल पृथ्वी का लगभग सातवाँ भाग है।

पृष्ठ 154 पर मंगल ग्रह का जो चित्र तुम देखते हो, उसे फ्रांसीसी खगोलविज्ञानी एन्टोनियादी ने 1909
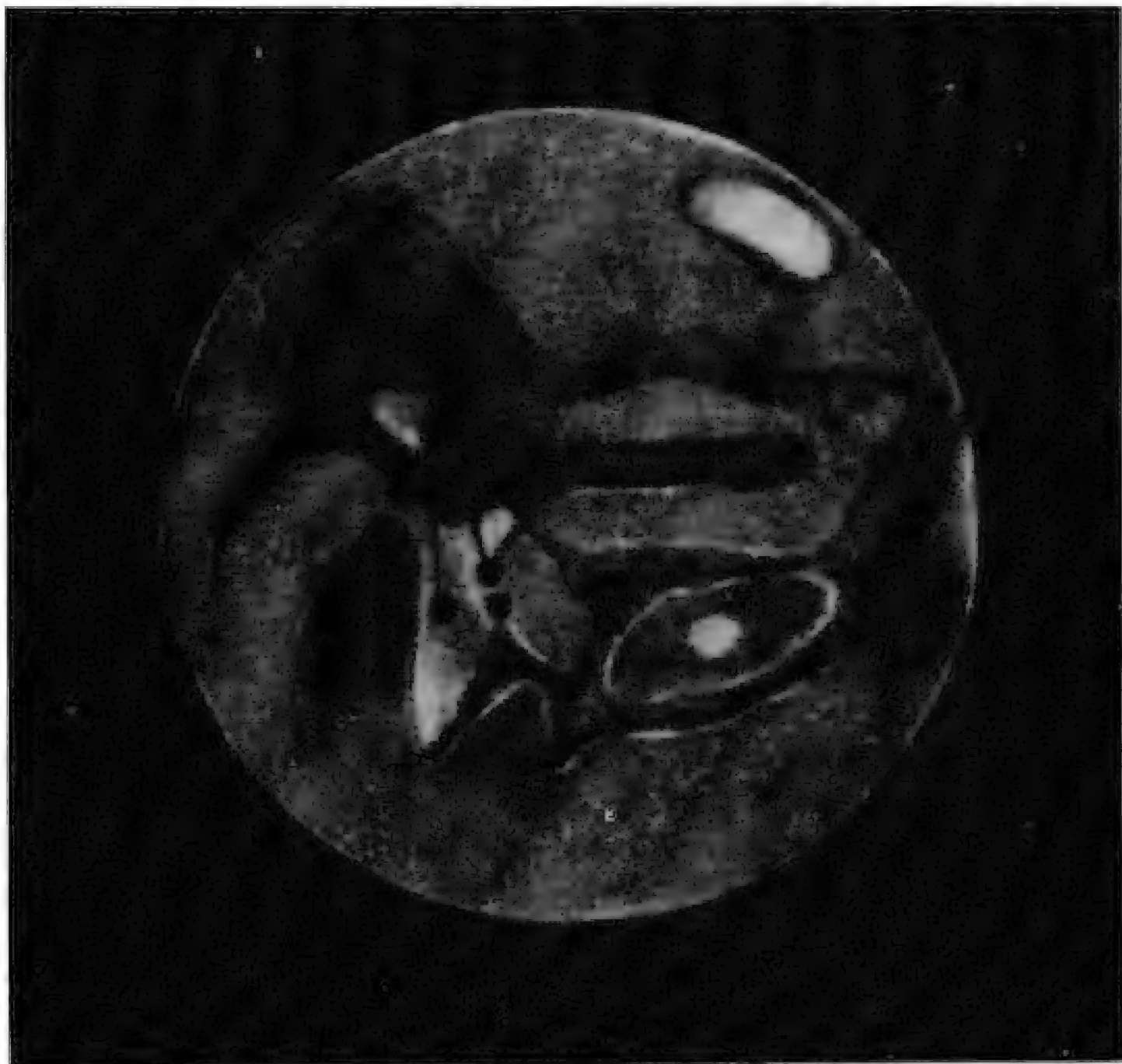
एन्टोनियादी द्वारा बनाया गया मंगल का चित्र

में बनाया था। ग्रह के किनारे पर जो सफ़ेद धब्बा दिखायी देता है, वह उस ग्रह की ध्रुवीय टोपी – अर्थात् हिम का आवरण है। काली धारियों तथा धब्बों को मंगल ग्रह के समुद्र कहते हैं और विशाल लाल-पीले क्षेत्र को उसका सूखा स्थल।

मंगल के अन्वेषण की कहानी बहुत ही मनोरंजक है।

इतालवी खगोलविज्ञानी स्कीयपरेली (1835-1910) ने बहुत वर्षों तक मंगल का बड़े ध्यान से अध्ययन किया। सन् 1877 में, जब मंगल महान प्रतिस्थिति में था, स्कीयपरेली हर रात इस ग्रह का निरीक्षण करता था। (बादल-बरखा की रातों में वह ऐसा न कर पाता था।) स्कीयपरेली ने इन्हीं दिनों में मंगल के

विस्तृत मानचित्र बनाये। इसके पहले किसी दूसरे खगोलविज्ञानी ने ऐसे विस्तृत मानचित्र नहीं बनाये थे।

स्कीयपरेली ने मंगल पर सबसे पहले काले क्षेत्र देखे। सूखे स्थलों की अपेक्षा पानी दूर से सदा काला मालूम देता है। अतएव स्कीयपरेली ने इन काले क्षेत्रों को मंगल का समुद्र कहा। स्कीयपरेली ने समुद्रों के बीच अनेक पतली, काली धारियाँ देखीं, जो ऐसी प्रतीत होती थीं, जैसे कि वे पड़ोसी समुद्रों को एक-दूसरे से जोड़ती हों। उसने इन धारियों को 'कैनल' कहा, क्योंकि इटालियन शब्द 'कैनल' का अर्थ जलडमरूमध्य है।

लेकिन लोगों ने 'कैनल' का अर्थ नहर समझा और इस शब्द को लेकर सारे संसार में कोलाहल मच गया –

"इतालवी स्कीयपरेली ने मंगल पर नहरें ढूँढ़ निकालीं! परन्तु नहरों को तो केवल मनुष्य अथवा कोई बुद्धिमान जीव ही खोद सकते थे! इससे तो स्पष्ट है कि उनकी यन्त्रकला उन्नति की चरम सीमा पर है क्योंकि हम पृथ्वी के निवासी भी अपने ग्रह को नहरों के जाल से उस प्रकार ढँक देने की स्थिति में नहीं हैं, जैसा कि मंगल ग्रह के निवासियों ने कर रखा है। अवश्य ही मंगल की नहरों की चौड़ाई सैकड़ों किलोमीटर की होगी, तभी तो वे हमारे टेलीस्कोपों में दिखायी पड़ सकीं!"

मंगल तथा उसके निवासियों के बारे में समाचारपत्रों और पत्रिकाओं में बहुत-से लेख लिखे गये। लेखकों ने मंगल ग्रह के निवासियों के विषय में झटपट उपन्यास लिख डाले। अधीर स्वभाव वालों ने मंगलवासियों से शीघ्रातिशीघ्र बातचीत करने के प्रस्ताव तक रखे। कुछ लोगों ने विशाल दर्पणों द्वारा प्रकाश-संकेत भेजने की प्रणाली बनाने की बात सोची। अन्य लोगों ने साइबेरिया के विस्तृत मैदानों में ज्यामिति के से रेखा-चित्र खींचने के प्रस्ताव पेश किये जिससे कि मंगलवासी यह समझ सकें कि पृथ्वी पर भी बुद्धि वाले जीव रहते हैं। परन्तु ऐसे चित्रों की तो कई सौ किलोमीटर लम्बी तथा 20-30 किलोमीटर चौड़ी रेखाएँ होनी चाहिए (केवल इन्हीं परिस्थितियों में ही मंगल-निवासी उन्हें टेलीस्कोप से देख सकते हैं)। अतएव यह सुझाव रखा गया कि चित्रों की रेखाएँ गेहूँ के खेतों से बनायी जायें – मंगलवासियों के टेलीस्कोपों द्वारा सुनहरे मैदान काली पृथ्वी से घिरी हुई प्रकाशमय रेखाओं की भाँति अच्छी तरह दीख पड़ेंगे।

मंगलवासियों से बातचीत करने के लिए बहुत ही अधिक ख़र्च करना पड़ता, अतएव किसी ने इसे आरम्भ करने का प्रयत्न नहीं किया। लेकिन सारे संसार के वैज्ञानिक मंगल ग्रह की नहरों का अध्ययन पूरी लगन से करने लगे।

सन् 1909 में मंगल की महान प्रतिस्थिति होनी चाहिए थी और उस समय यह अनुमान किया गया कि नहरों की समस्या किसी न किसी तरह हल हो जायेगी।

विख्यात अमेरिकी खगोलविज्ञानी लोवेल ने तो अरीज़ोना के मरुभूमि के पहाड़ी मैदान में मंगल का पर्यवेक्षण करने के हेतु एक विशेष वेधशाला का निर्माण तक कर डाला। उस स्थान की वायु अत्यन्त स्वच्छ है। वहाँ बड़े-बड़े नगरों के धुएँ अथवा धूल-मिट्टी से निरीक्षण-कार्य में बाधा नहीं पड़ती है। इस वेधशाला के लिए 66 सेण्टीमीटर के लेन्स वाला बहुत ही शक्तिशाली टेलीस्कोप खरीदा गया।

आख़िर 1909 का वर्ष आया। खगोलविज्ञानियों ने बड़ी उत्कण्ठा से इसकी प्रतीक्षा की थी। सारे संसार के टेलीस्कोपों का निशाना, विशालकाय तोपों के समान, मंगल की ओर सध गया।

फिर तो अरीज़ोना के खगोलविज्ञानियों तथा सारे संसार के वैज्ञानिकों के बीच बहुत बड़ा वाद-विवाद उठ खड़ा हुआ। इस वाद-विवाद में केवल पूल्कोवो वेधशाला के खगोलविज्ञानियों ने ही कुछ समय तक भाग न लिया।

लोवेल तथा उसके मित्र दावे के साथ कहते थे कि मंगल पर नहरें हैं। परन्तु वे सदा दृष्टिगत नहीं हैं – वे दृक्पथ में ध्रुवीय बर्फ़ के पिघलने के समय धीरे-धीरे नज़र आती हैं। इसका मतलब यह है कि उस समय वे पानी से भर जाती हैं।

इसके अतिरिक्त अरीज़ोना वालों के पर्यवेक्षणानुसार यह निष्कर्ष निकलता था कि मंगल की नहरों का जल वसन्त ऋतु में तो उत्तर से दक्षिण को बहता है और शरद ऋतु में दक्षिण से उत्तर को।

जल अपने आप तो पहले एक स्थान से दूसरे और फिर दूसरे स्थान से पहले को जा नहीं सकता। अतएव लोवेल तथा उसके समर्थक कहते थे कि नहरों में शक्तिशाली पम्पों द्वारा पानी भेजा जाता है। किन्तु ऐसे शक्तिशाली पम्प तो केवल बुद्धि वाले जीव – मनुष्य – ही बना सकते हैं और वह भी तब जब कि उनके पास बहुत उन्नत यन्त्र हों।

"मंगल पर निवासियों के अस्तित्व का यह तो एक नया प्रमाण है!" लोवेल के सहयोगियों व समर्थकों ने घोषणा की।

परन्तु अधिकांश खगोलविज्ञानी इस मत का समर्थन न करते थे। मतभेद रखने वाले खगोलविज्ञानियों में कई बहुत ही अनुभवी पर्यवेक्षक शामिल थे। वे कहते थे कि उन्हें तो मंगल पर एक भी नहर नज़र नहीं आयी।

नहरों की उपस्थिति के विपक्षी दावे के साथ कहते थे कि मंगल पर नहरें नहीं हैं, यह तो केवल दृष्टिभ्रम है। वे कहते थे –

"किसी कागज़ पर इधर-उधर कुछ धब्बे व रेखाएँ बनाइये और फिर दूर जाकर उसे देखिये। धब्बे और रेखाएँ मिलकर मोटी रेखाओं में बदल जायेंगी।"

अमेरिकी खगोलविज्ञानी, सबसे विशाल, 100 सेण्टीमीटर वाले येर्क्स के टेलीस्कोप का प्रयोग करते थे। वे कहते थे –

"मंगल की नहरें देखने के लिए हमारा टेलीस्कोप कहीं अधिक शक्तिशाली है!..."

नहरों के विपक्षी अपने विचारों की पुष्टि के लिए कहते थे कि नहरें तो केवल मध्यम श्रेणी की शक्ति वाले टेलीस्कोपों द्वारा ही दिखायी पड़ती हैं; अत्यधिक शक्तिशाली दूरबीनों में तो नहरें दिखायी ही नहीं पड़तीं – केवल बेढंगे काले धब्बे ही दीख पड़ते हैं...

टेलीस्कोप द्वारा आकाशीय पिण्डों का निरीक्षण करना एक कठिन कार्य है। यहाँ तक कि बहुत वर्षों से खगोलविज्ञान का अध्ययन करने वाले बड़े ही अनुभवी वैज्ञानिक तक कभी-कभी ग़लती कर जाते हैं और अपने निरीक्षण से ग़लत निष्कर्ष निकाल बैठते हैं।

मंगल पर नहरें हैं अथवा नहीं यह शुद्ध वैज्ञानिक-विवाद-सा लगने वाला प्रश्न उस विस्तृत विवाद का एक अंग मात्र है कि अन्य ग्रहों पर भी जीवन है या नहीं। इस विषय का वाद-विवाद तो उस पुराने काल में भी था जब कि साहसी विचारों वाला गियोर्दानो ब्रूनो जीवित था।

पादरियों के न्यायालय के फ़ैसले के अनुसार ब्रूनो को इसलिए ज़िन्दा जला दिया गया था कि वह शिक्षा देता था : "असंख्य ग्रहों पर जीवन का अस्तित्व है। विश्व में जीवन की अभिव्यक्ति असंख्य और भिन्न-भिन्न रूपों में है। पृथ्वी अनन्त विश्व में एक छोटे-से कण के बराबर है। यह सोचना हास्यास्पद है कि केवल पृथ्वी पर ही बुद्धि वाले जीव रहते हैं..."

मंगल पर नहरों की खोज ने जैसे कि ब्रूनो की प्रतिभासम्पन्न कल्पना की पुष्टि की।

इसी समय पुल्कोवो बेधशाला ने अपने निरीक्षण प्रकाशित किये।

युवा रूसी खगोलविज्ञानी तीख़ोव और कालीतिन, मंगल की नहरों के चित्र लेने में सफल हुए। ये नहरें – चौड़ी और सँकरी, लम्बी तथा छोटी – बहुत बड़ी संख्या में दिखायी पड़ीं।

आजकल तो मंगल का विस्तृत मानचित्र बनाया गया है और उसमें हज़ार से अधिक नहरें हैं। उनकी चौड़ाई 2-3 किलोमीटर से लेकर 300 किलोमीटर तक है। कुछ नहरें ऐसे गोल काले धब्बों में गिरती हैं जिन्हें झील या नख़लिस्तान कहते हैं।

परन्तु आजकल के खगोलविज्ञानी इन नहरों को कृत्रिम नहीं समझते हैं।

अब तो इस विषय में कि वे नहरें आख़िर हैं क्या, विज्ञान अनेक अनुमान लगाता है।

कुछ वैज्ञानिक कहते हैं कि ये नहरें सूखी हुई पुरानी नदियों की तहें हैं।

अन्य लोगों का विचार है कि ये नहरें विशाल घाटियों अथवा नालों जैसी सूखी हुई मिट्टी की दरारें हैं।

तीसरे सोचते हैं कि ये तथाकथित नहरें इर्दगिर्द की ज़मीनों के रंग की अपेक्षा अधिक काली दिखायी देते हुए घने पेड़-पौधों से ढँकी हुई गीली मिट्टी की पट्टियाँ हैं।

सम्भवतः यह अन्तिम अनुमान सबसे ठीक है। मंगल ग्रह पर जब ग्रीष्म ऋतु आती है तो इन नहरों का रंग गाढ़ा हरा हो जाता है और शरद ऋतु में वह काफ़ी हल्का पड़ जाता है।

नहरों व सागरों के इस रंग-परिवर्तन के कारण (वर्ष के मौसमों के अनुसार मंगल के समुद्र भी अपना रंग बदलते हैं) खगोलविज्ञानियों का अनुमान है कि मंगल पर वनस्पतियाँ हैं।

कुछ खगोलविज्ञानियों का विचार है कि मंगल पर ऐसे पेड़-पौधे हैं जिनकी पत्तियाँ हमारे बर्च व बलूत वृक्षों की भाँति शरद-ऋतु में झड़ जाती हैं, और ऐसे भी वृक्ष हैं, जो फ़र वृक्षों की भाँति सदा ही हरे-भरे रहते हैं।

मंगल के समुद्र सम्भवतः केवल हरे पेड़-पौधों से ढँके हुए बड़े-बड़े दलदल हैं।

मंगल का लाल रंग उसके स्थल के हल्के लाल रंग के कारण उत्पन्न होता है।

पृथ्वी पर ऐसा रंग मिट्टी के और रेत के रेगिस्तानों में ही होता है। मंगल की सतह का अधिकांश स्थल सूखा है और यह सोचा जा सकता है कि वहाँ रेगिस्तानों का क्षेत्र बहुत विशाल है।

मंगल पर वायुमण्डल है, किन्तु वह बहुत ही विरल है। इस ग्रह की सतह पर वायुमण्डल का भार उतना ही है, जितना कि पृथ्वी पर 18 किलोमीटर की ऊँचाई पर पाया जाता है। मंगल की सतह पर मनुष्य अपने को ऐसे अनुभव करता है मानो पृथ्वी के ऊपर काफ़ी ऊँचाई तक पहुँचे हुए किसी बैलून के खुले टोकरे में बैठा हो। परन्तु हमारे यहाँ तो बैलून, भलीभाँति बन्द किये हुए केबिनों से सुसज्जित रहते हैं और

जो प्रथम अन्तरग्रहीय यात्रा-दल मंगल पर उतरेगा, उसके सदस्यों को गोताखोरों की सी पोशाकों में चलना पड़ेगा... पृथ्वी की तुलना में मंगल पर आकर्षण-शक्ति ढाई गुना कम है और काफ़ी भारी गोताखोर-पोशाकें भी किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुँचायेंगी।

मंगल की जलवायु बड़ी ही कठोर है। मंगल सूर्य से पृथ्वी की अपेक्षा डेढ़ गुना अधिक दूर है। पृथ्वी की तुलना में यहाँ प्रकाश तथा गर्मी दो गुना कम है।

परन्तु मंगल पर बुध तथा शुक्र की तुलना में कहीं अधिक सुविधा है – यह सुविधा लगभग वैसी ही है जैसी कि हमें पृथ्वी पर प्राप्त है। वह विशेष सुविधा है मंगल के दिन-रात की, अर्थात् मंगल के अपनी निजी धुरी पर घूमने के समय की लम्बाई की।

मंगल का दिन-रात 24 घण्टे 37 मिनट का होता है। यह पृथ्वी के दिन-रात से कुछ ही बड़ा है।
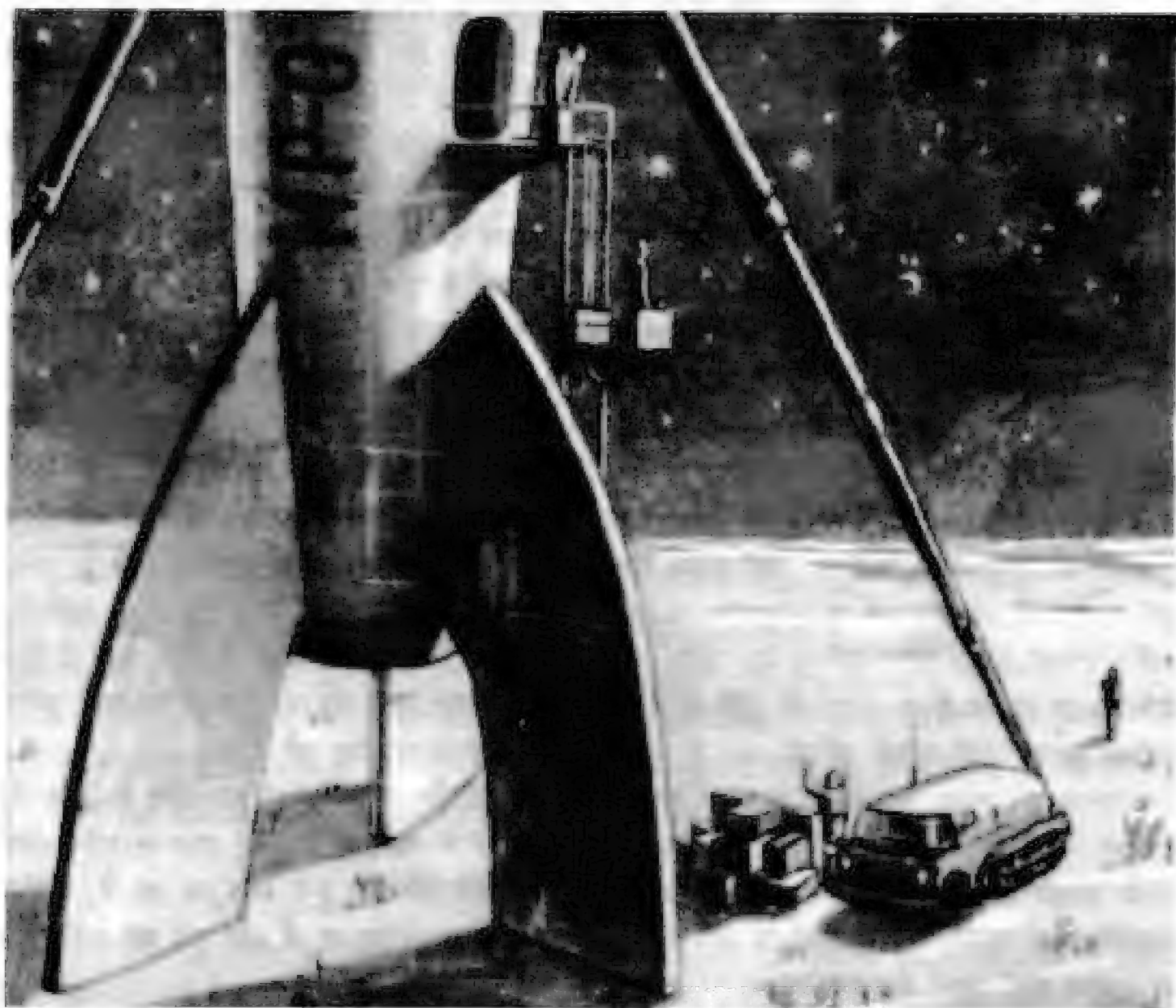
अन्वेषक दल द्वारा मंगल की यात्रा का काल्पनिक चित्र

मंगल पर दिन और रातें लगभग वैसी ही हैं, जैसी कि पृथ्वी पर। इतनी छोटी अवधि के दिन और रात होने के कारण यह ग्रह अधिक गरम अथवा अधिक ठण्डा नहीं हो पाता।

विशेष आश्चर्य की बात तो यह है कि मंगल की धुरी ऊर्ध्व स्थिति से लगभग उतनी ही झुकी हुई हैं, जितनी कि पृथ्वी की धुरी। अतएव मंगल पर पूरे वर्ष के मौसम पृथ्वी जैसे ही होते हैं, अर्थात् वहाँ भी वसन्त, ग्रीष्म, शरद और शीत ऋतुएँ हैं। परन्तु पृथ्वी के मौसमों की तुलना में मंगल के मौसम कहीं अधिक लम्बी अवधि के होते हैं। इसका कारण यह है कि पृथ्वी की अपेक्षा मंगल का सूर्य के चारों ओर का मार्ग काफ़ी लम्बा है। मंगल अपने ग्रहपथ पर पृथ्वी से धीरे चलता है, इसलिए वह पृथ्वी के 687 दिन-रातों के बराबर के समय में सूर्य की एक परिक्रमा करता है अथवा मंगल के 669 दिन-रातों की अवधि में।

मंगल पर तापमान कैसा है?

उसकी मध्य-रेखा पर, अर्थात् उसके सबसे उष्ण कटिबंध में, दिन का तापमान 20 सेण्टीग्रेड से ऊपर नहीं जाता; रात में यह तापमान 0 सेण्टीग्रेड तक नीचे आ जाता है और सूर्योदय तक – 50 सेण्टीग्रेड की सर्दी होती है।

समशीतोष्ण कटिबन्ध में सर्दियों में 70 से 80 सेण्टीग्रेड तक की ठण्ड हो जाती है और ध्रुवों पर लगभग 100 सेण्टीग्रेड तक की।

मंगल पर एक रात-दिन में गर्मी से सर्दी तक के तापमान का अन्तर बहुत बड़ा होता है। यदि हमारी पृथ्वी पर ऐसा होता तो दिन में कमीज़ ही पहनकर खुली हवा में घूमा जा सकता, परन्तु रात में रोयेंदार कोट पहनने पड़ते और घरों में सारा साल स्टोव जलाये रखने पड़ते।

मंगल पर एक बहुत ही मनोरंजक बात होती है और वह है – ध्रुवीय बर्फ़ की टोपियों का पिघलना।

जाड़े में इन टोपियों का व्यास 3,000–4,000 किलोमीटर तक का हो जाता है। गर्मियों में वे काफ़ी छोटी हो जाती हैं और शरद में लगभग अदृश्य, छोटे, श्वेत धब्बों के रूप में बाक़ी रह जाती हैं। कभी-कभी तो ये पूर्णत: लुप्त हो जाती हैं। बर्फ़ के पिघलने से पानी समशीतोष्ण कटिबन्ध में आ जाता है और फिर से मंगल के समुद्र और नहरों का नया जीवन शुरू होता है। वे ताज़ी वनस्पतियों से ढँक जाते हैं। हमारे यहाँ, पृथ्वी पर (उदाहरणार्थ ग्रीनलैण्ड व अंटार्कटिक में) ध्रुवीय बर्फ़ हज़ारों वर्षों तक बनी रहती है, क्योंकि उसकी मोटाई बहुत अधिक है। गर्मियों में यह बर्फ़ थोड़ी-सी पिघल जाती है और जाड़े में फिर उसकी मात्रा बढ़ जाती है। मंगल के ध्रुवों पर बर्फ़ का शीघ्र पिघल जाना यह बतलाता है कि वहाँ ध्रुवीय बर्फ़ के आवरण की मोटाई अधिक नहीं है – केवल कुछ ही सेण्टीमीटर की होगी।

मंगल की सतह का अधिकांश भाग जल रहित, वनस्पतिहीन रेगिस्तानों में परिवर्तित हो गया है। सम्भवत: वहाँ का जल ग्रह की दरारों के रास्ते नीचे गहराइयों में बह गया है और साल-ब-साल सतह पर से उसकी मात्रा कम होती जा रही है। मंगल का वायुमण्डल भी कम घना होता जा रहा है, क्योंकि वायुमण्डल के ऊपरी स्तर से गैसों के कण विश्व-अन्तरिक्ष में उड़ते जा रहे हैं और इस ग्रह की पृथ्वी की अपेक्षा कहीं क्षीण आकर्षण-शक्ति इन कणों को रोक नहीं पाती है।

मंगल के दो छोटे उपग्रह हैं। उनका पता सन् 1877 में लगा और उन्हें 'फोइबस' और 'दीमास' का

नाम दिया गया। इन शब्दों का अर्थ है 'डर' और 'आतंक' – युद्ध के देवता के उपग्रहों के लिए ये कैसे अच्छे नाम हैं!

मंगल पर जीवन के लिए सभी आवश्यक वस्तुएँ हैं – वहाँ जल, ऑक्सीजन और वायुमण्डल, वनस्पतियाँ हैं, रातों और दिनों का परिवर्तन और मौसमों का परिवर्तन है... ये सब परिस्थितियाँ वही हैं, जिनमें पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति हुई। यह सच है कि मंगल पर वे परिस्थितियाँ अधिक कठोर हैं, परन्तु यह पूर्णतः सम्भव है कि अरबों वर्षों की प्रगति में प्राणी इन परिस्थितियों के काफ़ी अभ्यस्त हो गये हों। इन अरबों वर्षों में वहाँ ऐसे प्राणियों का अस्तित्व सम्भव है, जो मनुष्य की भाँति सभ्य हों।

तुम पूछ सकते हो –

"हमें मंगल के नगर क्यों नहीं दिखायी देते?"

हो सकता है कि मंगलवासी भी ऐसे ही सोचते हों –

"हम पृथ्वी के नगरों को क्यों नहीं देख पाते? शायद पृथ्वी निर्जन हो... और हाँ, भला ऐसी भीषण गर्मी में, जिसका कि इस परितप्त ग्रह पर आधिपत्य है, रहना कैसे सम्भव है?..."

इसके लिए कि 10 करोड़ किलोमीटर की दूरी से भवनों को देखा जा सके, यह आवश्यक है कि ये भवन असाधारण आकार के हों – दर्जनों किलोमीटर लम्बे-चौड़े। यह अनुमान करना उचित होगा कि यदि मंगलवासियों का अस्तित्व है और यदि पृथ्वी का वायुमण्डल उनके मार्ग में बाधा न डालता हो, तब भी उनके लिए मास्को, बम्बई अथवा पेरिस देखना अत्यन्त ही कठिन होगा।

मंगल पर बुद्धि वाले जीव हैं या नहीं, यह तो वहाँ भेजा जाने वाला प्रथम अन्तरग्रहीय यात्रा-दल ही बता सकेगा।

बुध अथवा शुक्र की अपेक्षा, मंगल की कहानी काफ़ी लम्बी हो गयी है। पर आख़िर हो ही क्या सकता है – हम पृथ्वी पर रहने वालों के लिए मंगल ही सबसे मनोरंजक ग्रह है।

एस्टेरॉयडों का कटिबन्ध

बहुत समय पहले ही खगोलविज्ञानियों ने मंगल व बृहस्पति के बीच के अन्तरिक्ष में काफ़ी विशाल दूरी की खोज की। वैज्ञानिकों की गणनानुसार इस दूरी में एक और भी ग्रह होना चाहिए।

काफ़ी समय तक खगोलविज्ञानी इस ग्रह को खोजते रहे। कुछ व्यक्तियों ने यह विचार प्रकट किया कि ऐसा कोई ग्रह बिल्कुल है ही नहीं, किन्तु कुछ अन्य लोग निश्चय के साथ कहते थे कि वहाँ ग्रह है, परन्तु वह इतना छोटा है कि टेलीस्कोपों से दिखायी नहीं देता है।

अन्त में, पहली जनवरी सन् 1801 की रात्रि में एक खगोलविज्ञानी ने मंगल व बृहस्पति के बीच की दूरी में एक छोटे ग्रह का पता लगाने में सफलता प्राप्त की।

इस नये ग्रह को लोगों ने 'सीरीज़' का नाम दिया। यह नाम उपजाऊपन की रोमन देवी का है। ग्रह के व्यास को भी नापा गया। यह बहुत अधिक नहीं था – केवल 800 किलोमीटर के लगभग ही इसका

अनुमान लगाया गया।

"यह दूसरे ग्रहों के बीच एक नन्हा-मुन्ना ग्रह है," वैज्ञानिकों ने कहा, "यह चन्द्रमा से अस्सी गुना और पृथ्वी से चार हज़ार गुना छोटा है... पर फिर भी मंगल व बृहस्पति के बीच के खाली स्थान की पूर्ति तो हो ही गयी!..."

एक वर्ष बाद सूर्य से लगभग सीरीज़ की ही दूरी पर, एक दूसरे छोटे ग्रह का पता चला। इससे खगोलविज्ञानी कुछ असमंजस में पड़ गये, क्योंकि उनके विचार में वहाँ दूसरे ग्रह के होने की कोई सम्भावना न थी। परन्तु क्योंकि उसका पता तो लग ही गया था इसलिए उस ग्रह को न्याय की रोमन देवी के नाम पर 'पलास' कहा गया।

शीघ्र ही खगोलविज्ञानियों को और भी अधिक हैरानी हुई क्योंकि 1804 वर्ष में तीसरे छोटे ग्रह जूनो की खोज हो गयी। इसी भाँति फिर तो सन् 1807 में एक और भी, यानी चौथे, ग्रह वेस्टा का भी पता लगा!

अब तो वैज्ञानिक लोग गहरे सोच में पड़ गये। चार छोटे-छोटे ग्रह उस स्थान पर थे, जहाँ कि केवल एक बड़े ग्रह को होना चाहिए था... विवश होकर उन्हें यह सोचना पड़ा कि ये छोटे-छोटे ग्रह किसी नष्ट हुए बड़े ग्रह के टुकड़े हैं। सम्भवत: किसी समय विश्व-अन्तरिक्ष में, मंगल और बृहस्पति के बीच, कोई दुर्घटना घटी और बड़ा ग्रह टूटकर छोटे-छोटे ग्रहों में विभक्त हो गया।

परन्तु उस काल के बहुत-से खगोलविज्ञानियों को यह बात बिल्कुल ही न जँची।

इस विषय पर विख्यात जर्मन गणितज्ञ तथा खगोलविज्ञानी गाउस ने अपने मित्र को ऐसा लिखा – "भले ही हम कुछ वर्षों बाद यह जान भी जायें कि पलास और सीरीज़ पहले एक ही शरीर के अंग थे। मानवता के लाभ की दृष्टि से ऐसा परिणाम निकालना अनुचित होगा। भला विचार तो कीजिये कि लोग कितने असहनीय आतंक से घिर जायेंगे। आस्तिकों और नास्तिकों के बीच ज़ोरदार द्वन्द्व छिड़ जायेगा। कुछ व्यक्ति परमेश्वर की वकालत करेंगे और दूसरे उसका विरोध! ये सभी बातें अवश्यम्भावी हुई होतीं, यदि तथ्यों के आधार पर यह प्रमाणित किया गया होता कि ग्रह नष्ट हो सकता है। उन लोगों ने क्या कहा होता, जो प्रसन्नतापूर्वक अपने सिद्धान्तों की रचना इस आधार पर करते हैं कि सौर जगत दृढ़ तथा अपरिवर्तनशील है! उन लोगों ने भला क्या विचार प्रकट किये होते, जब वे स्वयं देखते कि उन्होंने बालू पर अपनी भीत बनायी है, और यह कि सभी वस्तुओं पर अन्धी व आकस्मिक प्रकृति-शक्ति का राज्य है! मेरा अपना निजी विचार यह है कि ऐसे नतीजे नहीं निकालने चाहिए..."

पलास, जूनो तथा वेस्टा, सीरीज़ की तुलना में छोटे हैं। उनके व्यास इस प्रकार है : पलास का लगभग 500 किलोमीटर, वेस्टा का 400 और जूनो का लगभग 200 किलोमीटर। इन सभी ग्रहों में केवल वेस्टा ही को खाली आँखों से कभी-कभी देखा जा सकता है। बाकी ग्रहों को केवल टेलीस्कोप द्वारा ही देखा जा सकता है और वे केवल उज्ज्वल बिन्दुओं के रूप में ही दिखायी देते हैं। इसी कारण इन्हें 'एस्टेरॉयड' कहते हैं, जिसका अर्थ है 'तारों-नुमा आकाशीय पिण्ड'। इन्हें ऐसा नाम देने का भी एक कारण है। टेलीस्कोप से देखने पर ग्रह तो गोलों की भाँति दिखायी देते हैं और केवल तारे ही चमकते हुए बिन्दु नज़र आते हैं।

हाँ, सीरीज़ और उसके आकाशीय पड़ोसी – ये सभी बौने ग्रह हैं। परन्तु बाद में मालूम पड़ा कि अपने परिवार के दूसरे सदस्यों की तुलना में ये दैत्य हैं और इस परिवार के सदस्यों की संख्या भी बहुत बड़ी निकली। वेस्टा की खोज के 38 वर्ष बाद ही इस परिवार के पाँचवें सदस्य का पता लगा। इन सारे वर्षों में लोग यह सोचते थे कि सभी छोटे ग्रहों की खोज पूरी हो चुकी है। परन्तु सन् 1845 में खगोलविज्ञान के एक अनुरागी ने पाँचवें छोटे ग्रह – एस्ट्रेया – की खोज की।

इसके बाद तो खगोलविज्ञान के बहुत-से अनुरागियों ने अपने-अपने, खास तौर पर स्वनिर्मित छोटे टेलीस्कोपों को आकाश की ओर मोड़ा। विश्व-अन्तरिक्ष में नये ग्रहों का पता लगाना – यह तो बहुत ही आकर्षक काम था! इसके लिए केवल धैर्य की आवश्यकता थी। हर रात्रि को आकाश के विशेष भाग में देखना और मानचित्र पर हरेक तारे की ठीक-ठीक स्थिति आँकना आवश्यक था। और यदि उन्हें यह मालूम देता कि कोई छोटा तारा अपने पड़ोसियों की तुलना में अपने स्थान से कुछ हट-सा गया है, तो यह एस्टेरॉयड होता!

इस कारण कि पहले से यह कहना सम्भव नहीं था कि नया छोटा ग्रह आकाश के किस भाग में दिखायी पड़ेगा, उसकी खोज अटकलबाज़ी से ही की जाती थी। कुछ शौक़ीन खगोलविज्ञानी 'भाग्यशाली' थे – उन्होंने कई एस्टेरॉयडों की खोज की।

इन नये खोजे हुए एस्टेरॉयडों की संख्या हर वर्ष बढ़ती जाती थी। शीघ्र ही उनकी संख्या दर्जनों में
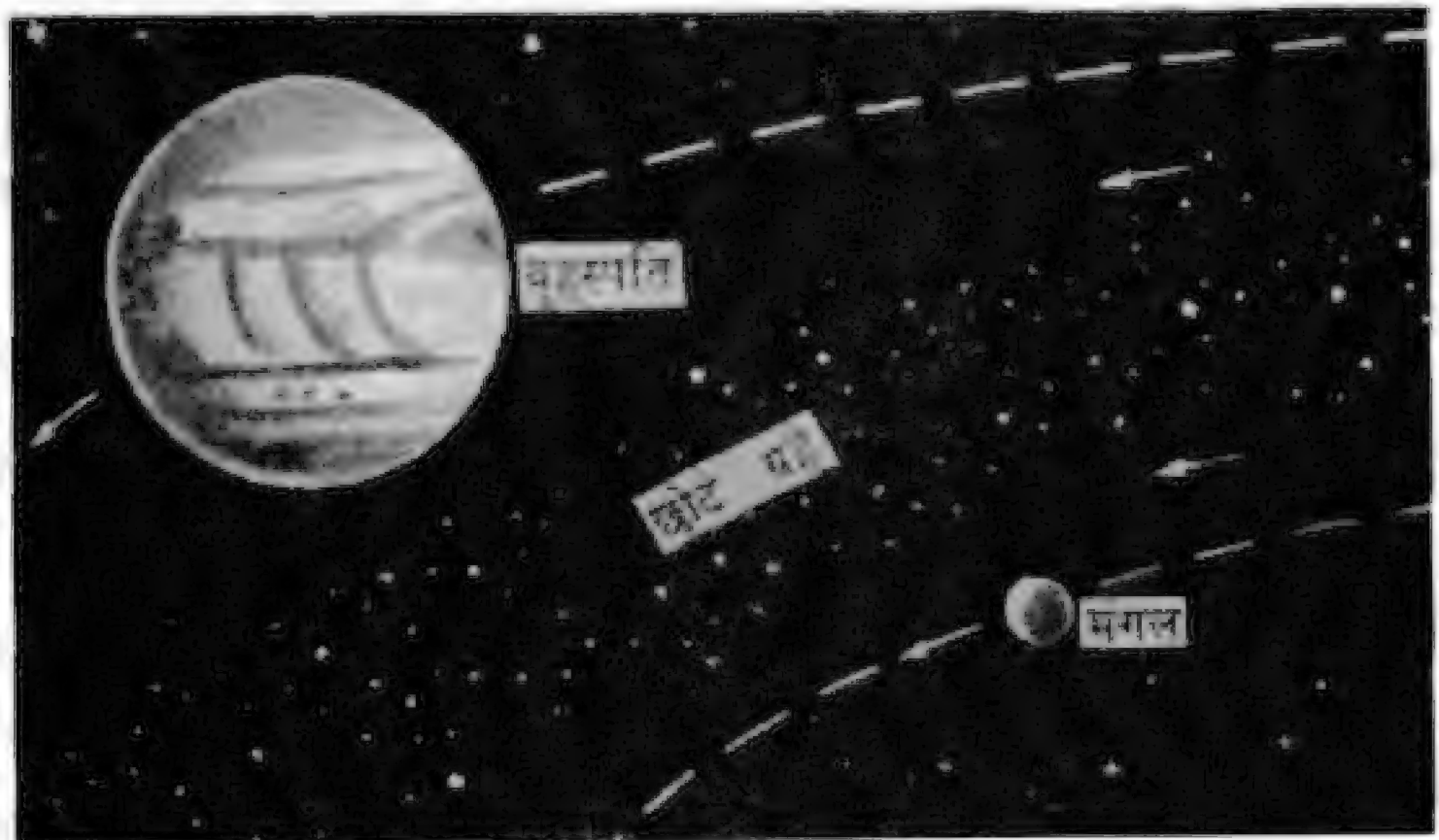
एस्ट्रायडों (छोटे ग्रहों) का कटिबन्ध

हो गयी। यहाँ तक कि उनके नामकरण के लिए रोमन तथा ग्रीक देवियों के नामों की कमी पड़ गयी। फिर आकाश में फ़ोयेनिशियन, प्राचीन जर्मन और नार्वेजियन देवियों के नाम प्रकट होने लगे ... एस्टेरॉयडों को स्त्रियों के साधारण नाम भी दिये जाने लगे। कुछ एस्टेरॉयडों को, जो दूसरे एस्टेरॉयडों से काफ़ी भिन्न थे, पुरुषों के नाम मिले, जैसे कि हर्मेज़, एरोस, अदोनाइस इत्यादि...

अब तो नये खोजे जाने वाले एस्टेरॉयडों का नामकरण खोज के वर्ष के साथ दो लैटिन अक्षर जोड़कर करने की पद्धति चल पड़ी है।

वर्तमान काल में डेढ़ हज़ार से अधिक एस्टेरॉयडों का पता लगा है।

बहुत-से एस्टेरॉयडों का पता लग चुका है, किन्तु अन्तरिक्ष में अब भी कितने अनजाने छोटे ग्रह गतिमान हैं! वैज्ञानिक सोचते हैं कि ऐसे दसियों हज़ार ग्रह मौजूद हैं।

यह स्पष्ट है कि पहले पहल तो सबसे बड़े एस्टेरॉयडों का ही पता लगा। तुम जान ही चुके हो कि ये हैं – सीरीज़, पलास, जूनो और वेस्टा। आगे चलकर लोगों ने 100 किलोमीटर, 50 किलोमीटर, 20 किलोमीटर के व्यास वाले एस्टेरॉयडों का पता लगाया... अब तो ऐसे भी एस्टेरॉयडों का पता लगा है, जिनका व्यास 1 किलोमीटर और इससे भी कम है। सौर जगत की इन गोद की बच्चियों की तुलना में तो सीरीज़ तथा उसकी अन्य 'सहेलियाँ' सचमुच ही में दैत्यों जैसी हैं। सीरीज़ की परिधि लगभग 2500 किलोमीटर है। उसका चक्कर लगाने के लिए हमें काफ़ी लम्बी यात्रा करनी पड़ेगी। सीरीज़ की सतह लगभग 20 लाख वर्ग किलोमीटर है। यह क्षेत्र यूरोप का एक छठा भाग है। सीरीज़ पर पूरे फ़्रांस, इटली, जर्मनी और इंग्लैण्ड को बसाने के बाद भी स्वीट्ज़रलैण्ड के समान दस एक छोटे-छोटे देश बसाने के लिए स्थान बच रहेगा।

परन्तु 1 किलोमीटर व्यास वाले 'जेबी' एस्टेरॉयड का चक्कर एक ही घण्टे में लगाया जा सकता है। उसकी सतह का क्षेत्रफल केवल 300 हेक्टर (720 एकड़) है। घनफल में ऐसा छोटा 'जेबी' एस्टेरॉयड सीरीज़ से 50 करोड़ गुना कम है।

इसका अर्थ यह होता है कि एस्टेरॉयडों के परिवार में दैत्य भी हैं तथा बौने भी। अनजाने एस्टेरॉयडों के बीच ऐसे भी हैं, जिनका व्यास केवल बीस-तीस मीटर और यहाँ तक कि केवल कुछ ही मीटर है। ये तो केवल विशाल पत्थर हैं, जो अन्तरिक्ष में तेज़ी से उड़ते रहते हैं।

इन बड़े तथा छोटे एस्टेरॉयडों का अस्तित्व कुछ खगोलविज्ञानियों को यह सोचने के लिए बाध्य करता है कि विश्व-अन्तरिक्ष में कभी सचमुच ही कोई महान दुर्घटना हुई, और कोई बड़ा ग्रह टुकड़े-टुकड़े हुआ। परन्तु यह ग्रह बहुत बड़ा न होकर पृथ्वी से 1 हज़ार गुना छोटा ही रहा होगा।

बृहस्पति (जूपीटर)

बृहस्पति के साथ बाहरी दैत्य-ग्रहों का समूह आरम्भ होता है। बृहस्पति सौर जगत का सबसे विशाल ग्रह है। ठीक ही इसे रोमन देवताओं के राजा जूपीटर का नाम दिया गया है।

यहाँ नीचे वे संख्याएँ स्पष्ट रूप में दी जाती हैं, जिनसे यह पता चलता है कि बृहस्पति कितना बड़ा है।

उसका व्यास पृथ्वी के व्यास से 11 गुना अधिक है।

प्रतिदिन 50 किलोमीटर पैदल चलने वाले व्यक्ति को पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाने में 800 दिन लगते। परन्तु यह पथिक यदि युवावस्था में बृहस्पति का चक्कर लगाना आरम्भ करता तो बिल्कुल बूढ़ा-खूसट होकर ही लौट आता। इस यात्रा में उसे 25 वर्ष लगते! और यह भी तभी सम्भव होता, जब वह 50 किलोमीटर प्रतिदिन की चाल से ही चलता जाता।

बृहस्पति की सतह का क्षेत्रफल पृथ्वी से 120 गुना अधिक है।

भूगोल के पाठ में तुमने पढ़ा होगा कि संसार में छः महाद्वीप हैं – यूरोप, एशिया, अफ्रीका, उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा अण्टार्कटिका।

कल्पना करो कि बृहस्पति की सतह पर भी उसी आकार के भूभाग हैं, जैसे कि पृथ्वी पर, तो उनकी संख्या सात सौ से अधिक होगी। तब तो इस ग्रह पर जन्म लेने वाले भूगोलविज्ञानियों और यात्रियों को इसका अन्वेषण करने में बड़ा ही कष्ट उठाना पड़ता; उन्हें अनेक किताबें लिखनी पड़तीं और स्कूली विद्यार्थियों का इस ग्रह का भूगोल पढ़ते और याद करते नाक में दम आ जाता!

बृहस्पति और पृथ्वी के तुलनात्मक आकारमान

बृहस्पति से हमारी पृथ्वी के आकार के एक हज़ार तीन सौ गोले काटे जा सकते हैं।

बृहस्पति से हमारी पृथ्वी के आकार के एक हज़ार तीन सौ गोले काटे जा सकते हैं।

अब तो तुम्हें स्पष्ट हो गया हो कि बृहस्पति को किसलिये दैत्य-ग्रह कहते हैं। बृहस्पति की आकर्षण-शक्ति बहुत ही अधिक है। यदि बृहस्पति पर कोई ऐसा मनुष्य पहुँच जाये, जिसका वज़न पृथ्वी पर 60 किलोग्राम है, तो वहाँ उसका वज़न 140 किलोग्राम हो जायेगा। अन्तरग्रहीय यात्री चन्द्रमा की सतह की भाँति वहाँ पर छलांगें नहीं मार सकेगा। इतना भारी शरीर घसीटने के लिए उसकी मांस-पेशियाँ कहीं कमज़ोर सिद्ध होंगी। वज़न मनुष्य को ज़मीन पर ही दबा देगा और वह बड़ी कठिनाई से पेट के बल रेंग ही सकेगा। फिर तो वह

इतने धीरे-धीरे चलेगा कि सौ वर्षों में भी बृहस्पति का चक्कर न लगा पायेगा।

दो-तीन सौ वर्ष पहले बहुत-से खगोलविज्ञानियों का विचार था कि हरेक ग्रह पर बुद्धि वाले जीव – अर्थात् मनुष्य – रहते हैं। इसके लिए खगोलविज्ञानियों ने यह तर्क प्रस्तुत किया –

"पृथ्वी ग्रह है, इस पर मनुष्य बसते हैं। बुध, मंगल, बृहस्पति भी ग्रह हैं, अर्थात् वहाँ भी लोग रहते हैं।"

इसी तर्क-वितर्क के अन्तर्गत खगोलविज्ञानी सोचते थे कि छोटे ग्रहों पर छोटे आकार के लोग और बड़े ग्रहों पर बड़े आकार के लोग रहते हैं। यह उनकी भारी भूल थी। यदि बृहस्पति पर लोग होते, तो वे बौने ही होते। केवल बौनों की मांस-पेशियाँ ही उनके छोटे तथा हल्के-फुल्के शरीर को वहाँ चलाने के लिए पर्याप्त होतीं। इसके विपरीत चन्द्रमा पर आकर्षण-शक्ति कम होने के नाते वहाँ विशालकाय शरीर वाले इन्सान पाये जाते। उस समय खगोलविज्ञानी यह नहीं जानते थे।

बृहस्पति पर मनुष्य का भार (स्प्रिंग वाली तराजू पर)।

बृहस्पति पर जीवन नहीं है।

दैत्य-ग्रहों की रचना भीतरी ग्रहों – पृथ्वी, मंगल, शुक्र व बुध जैसी बिल्कुल नहीं है। ये ग्रह घने पदार्थों से बने हुए हैं। इन पर पहाड़ी चट्टानें कहलाने वाली कड़ी परतों का आवरण है। यात्री जब रॉकेट में उड़कर विश्व-अन्तरिक्ष में जायेंगे, तो वे किसी भी मनचाहे भीतरी ग्रह पर जा सकेंगे। परन्तु यदि वे बृहस्पति पर उतरेंगे तो नष्ट हो जायेंगे।

यह दैत्य बृहस्पति गैसों के एक बहुत ही घने वायुमण्डल से घिरा हुआ है। उस वायुमण्डल में साँस लेना सम्भव नहीं है। बृहस्पति का यह वायुमण्डल बेहद ठण्डा है। वैज्ञानिकों ने उसके तापमान को मापा और अनुमान लगाया कि वहाँ शून्य से नीचे 140 सेण्टीग्रेड की ठण्ड है। ऐसा इसलिए है कि बृहस्पति को सूर्य से प्रकाश और गर्मी बहुत कम मात्रा में प्राप्त होती है, क्योंकि बृहस्पति सूर्य से पाँच खगोल-इकाइयों की दूरी पर है।

वैज्ञानिक अभी तक यह नहीं जानते हैं कि बृहस्पति के घने वायुमण्डल के नीचे क्या है। कुछ का विचार है कि उसका भीतरी भाग उष्ण है। अन्य लोगों का विचार है कि इस ग्रह का ठोस केन्द्र बर्फ की मोटी परत से घिरा हुआ है।

यदि कॉस्मिक रॉकेट को बृहस्पति के वायुमण्डल के नीचे उतरने की ठोस सतह भी मिलती तो भी

इस दैत्य-ग्रह की विशाल आकर्षण-शक्ति रॉकेट को वापस न लौटने देती।

बृहस्पति पृथ्वी के बारह वर्षों की अवधि में सूर्य के चारों ओर एक चक्कर पूरा करता है। इसका अर्थ यह है कि बृहस्पति का एक वर्ष पृथ्वी के बारह वर्षों के बराबर है। परन्तु इस ग्रह के दिन-रात बहुत छोटे होते हैं : केवल 10 ही घण्टे के - 5 घण्टे का दिन और 5 घण्टे की रात।

यदि पृथ्वी के दिन-रात इतने छोटे होते, तो भला क्या हुआ होता? तुम उठते, नाश्ता करते, स्कूल जाते, चार पाठों के लिए ही वहाँ बैठते और तब तक रात हो जाती। फिर भला तुम कब घूमते और कब घर का पाठ तैयार करते?

परन्तु चूँकि बृहस्पति पर निवासी नहीं हैं, अतएव रात-दिन की अवधि का कोई महत्त्व नहीं है।

बृहस्पति भीतरी ग्रहों से इस कारण भी भिन्न है कि उसके बहुत-से उपग्रह हैं – पूरे बारह! अपने उपग्रहों के साथ बृहस्पति तो स्वयं ही पूरा एक जगत है।

हम यहाँ बृहस्पति के उपग्रहों का विस्तृत वर्णन करते हैं।

तुम्हें मालूम ही है कि गैलीलिओ गैलीलिओ ही ने सबसे पहले दूरबीन से आकाश को देखा था। इस विशाल ग्रह के सबसे निकट के चार चन्द्रमाओं की खोज भी उसी ने की थी। यद्यपि गैलीलिओ की दूरबीन क्षीण शक्ति वाली थी, फिर भी उसने इन चारों चन्द्रमाओं को शीघ्र ही देख लिया था क्योंकि वे आकार में बहुत बड़े हैं। गैलीलिओ के चन्द्रमाओं (ऐसा ही उन्हें कहा जाने लगा) में से दो बुध ग्रह से बड़े, एक हमारे चन्द्रमा से बड़ा और एक हमारे चन्द्रमा से कुछ छोटा है।

बृहस्पति के उपग्रहों की खोज के बहुत समय बाद तक समुद्री नाविकों को उनसे बड़ी सहायता मिलती थी। इन्हीं उपग्रहों की सहायता से जहाज़ अपने उचित मार्ग पर चलते थे।

तुम पूछोगे – "भला यह कैसे सम्भव हो सका?"

मैं तुम्हें एक बहुत ही मनोरंजक कथा सुनाता हूँ कि किस भाँति गैलीलिओ के चन्द्रमा प्राचीन काल के नाविकों को समुद्र में ठीक मार्ग का पता लगाने में सहायता देते थे।

यह लो, समुद्र में जहाज़ जा रहा है। चारों ओर सैकड़ों और हज़ारों किलोमीटर तक पानी ही पानी है, और इसी पानी में जलमग्न चट्टानें, छिछले स्थान तथा द्वीप हैं। कोहरे और अँधेरी रातों में जहाज़ के

इस चित्र से स्पष्ट होता है कि बृहस्पति और उसके उपग्रहों का मण्डल पृथ्वी – चन्द्रमा के मण्डल से कितना बड़ा है। बृहस्पति और पृथ्वी को उनके आकारमान के मापदण्ड को ध्यान में न लेते हुए अंकित किया गया है।

इन स्थानों से टकरा जाने की सम्भावना रहती है।

जहाज़ का कप्तान हर रोज़ ठीक दोपहर के समय यह मालूम करता है कि उसका जहाज़ कहाँ है। वह सूर्य के तथा क्रोनोमीटर (ठीक-ठीक समय बताने वाली घड़ी को ऐसा ही कहते हैं) के आधार पर अपने जहाज़ की स्थिति का निश्चय करता है।

कप्तान मानचित्र पर एक बिन्दु लगा देता है –

"मेरा जहाज़ यहाँ है!"

शीघ्र ही उसे वह मालूम हो जाता है कि समीप कोई द्वीप या जलमग्न चट्टान है कि नहीं।

परन्तु कप्तान यदि बिन्दु लगाने में ग़लती कर जाता है तो? मान लीजिये वह हिसाब लगाता है कि चट्टान तक 40 किलोमीटर की दूरी है, किन्तु वास्तव में है वह केवल 10! यदि कप्तान का क्रोनोमीटर ठीक-ठीक न चल रहा हो तो ऐसा होना बहुत सम्भव भी है।

आजकल तो यह इतनी बड़ी विपत्ति नहीं है, क्योंकि कप्तान हर रोज़ अपनी घड़ी को रेडियो से मिला लेता है। परन्तु सौ या दो सौ वर्ष पहले, जब रेडियो नहीं था और घड़ियों की मशीनरी इतनी अच्छी नहीं थी, तब?

बृहस्पति अपने उपग्रह पर ऐसा दिखायी देता है।

तब गैलीलिओ के चन्द्रमा उनकी सहायता के लिए तैयार रहते थे!

सूर्य द्वारा प्रकाशित बृहस्पति बहुत बड़ी छाया फेंकता है। जब बृहस्पति का कोई न कोई उपग्रह इस छाया में आता है, तभी से उसका ग्रहण प्रारम्भ हो जाता है।

इन ग्रहणों के ठीक-ठीक समय की गणना करना खगोलविज्ञानियों ने दो सौ वर्षों से कहीं पहले ही सीख लिया था। उन्होंने बहुत वर्ष पहले ही भविष्य के ग्रहणों की सूची बना डाली थी। ये सूचियाँ विशेष खगोल-कलेण्डरों में छापी जाती थीं और हर जहाज़ पर ऐसा कलेण्डर रहता था।

कप्तान कलेण्डर को देखता था – "आज यूरोप (बृहस्पति के एक चन्द्रमा का नाम) पर ग्रहण होगा, अर्थात् स्वच्छ रात्रि होने पर घड़ी को मिला लेना चाहिए।"

जब समय आता था कप्तान दूरबीन लेता था और आकाश की ओर देखता था। उसका सहायक हाथ में क्रोनोमीटर लेकर पास ही खड़ा रहता था।

"ग्रहण का आरम्भ हो गया है!" कप्तान कहता था।

"क्रोनोमीटर 23 घण्टे 14 मिनट 37 सेकण्ड बतला रहा है," सहायक उत्तर देता था और उसी समय उसे लिख लेता था।

"परन्तु कलेण्डर के अनुसार 23 घण्टे 15 मिनट 16 सेकण्ड होना चाहिए था, अर्थात् हमारा क्रोनोमीटर 39 सेकण्ड सुस्त है," कप्तान निष्कर्ष निकालता था...

इस प्रकार बृहस्पति तथा उसके चन्द्रमा एक सूक्ष्म आकाशीय घड़ी की भाँति थे – ऐसी घड़ी, जिसे चालू करने अथवा जिसकी मरम्मत और सफ़ाई की आवश्यकता न थी, और जो एक सेकण्ड की भी भूल-चूक न करती थी!

यहाँ तक कि आजकल भी जहाज़ों के कप्तानों के पास (विशेषकर पालों वाले जहाज़ों पर) खगोल-कलेण्डर रहता है। यदि कहीं वह बढ़िया चीज़ – रेडियो – एकाएक ख़राब हो जाये, तो!

इस प्रकार खगोलविज्ञान अर्थात् खगोलविज्ञान का हम पृथ्वी पर उपयोग करते हैं। इसके तो बहुत-से उदाहरण दिये जा सकते हैं।

बृहस्पति के बाक़ी आठ उपग्रह छोटे हैं और उन्हें केवल बहुत ही अच्छे टेलीस्कोपों द्वारा देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त वे केवल खगोलविज्ञानियों के लिए ही रुचिकर हैं।

शनि (सैटर्न)

शनि – यह भीमकाय ग्रह है, जिसका घनफल पृथ्वी के घनफल से लगभग 750 गुना अधिक है।

शनि प्राचीन काल के लोगों में विख्यात ग्रहों में से अन्तिम है। अब तो हम तीन और ग्रहों को भी जानते हैं, जो शनि से भी दूर स्थित है। वे केवल टेलीस्कोपों में ही दीख पड़ते हैं।

रोम-निवासियों में जूपीटर के पिता को सैटर्न कहते थे, और वह था समय का देवता। उसी के सम्मान में इस ग्रह का सैटर्न नाम पड़ा।

शनि सूर्य से साढ़े नौ खगोल-इकाइयों की दूरी पर स्थित हैं शनि पर वर्ष की अवधि हमारे पृथ्वी के तीस वर्षों के बराबर होती है। पृथ्वी का नब्बे वर्षीय वृद्ध मनुष्य शनि के समय की गणनानुसार केवल तीन वर्ष का होगा!

परन्तु शनि पर जीवन नहीं है। शनि बृहस्पति ही की भाँति गैसों के घने आवरण से घिरा हुआ है। शनि की सतह पर शून्य से नीचे 150 सेण्टीग्रेड की सर्दी है।

बस, इतना कहकर ही शनि की चर्चा समाप्त की जा सकती। किन्तु इस ग्रह की एक विचित्र विशेषता है जो इसे अन्य ग्रहों से भिन्न करती है।

17वीं सदी के खगोलविज्ञानी विचित्रता की इस पहेली को अपनी क्षीण दूरबीनों द्वारा बहुत समय तक हल न कर सके।

सौर जगत के सभी ग्रहों में से अँगूठीनुमा कुण्डली द्वारा सुशोभित शनि केवल एक ही ग्रह है। परन्तु यह कुण्डली एक विशेष प्रकार की है।

दफ़्ती अथवा किसी मोटे कागज़ का टुकड़ा लो और किसी परकार द्वारा एक ही केन्द्र से दो परिधियाँ खींचो। बाहरी रेखा पर से इसे कैंची से काटो और फिर भीतरी परिधि को भी काट डालो। फिर तुमको बीच में छेद वाला एक बड़ा चक्र, या एक समतल कुण्डली मिलेगी। यही शनि की कुण्डली का नमूना होगा।

शनि की यह कुण्डली ग्रह पर पहनायी हुई नहीं है। कुण्डली के भीतरी किनारे और ग्रह की सतह के बीच दसियों हज़ार किलोमीटर की दूरी है।

बड़े टेलीस्कोप से देखने पर तो कुण्डली वाला शनि एक अद्भुत दृश्य उपस्थित करता है – गाढ़े
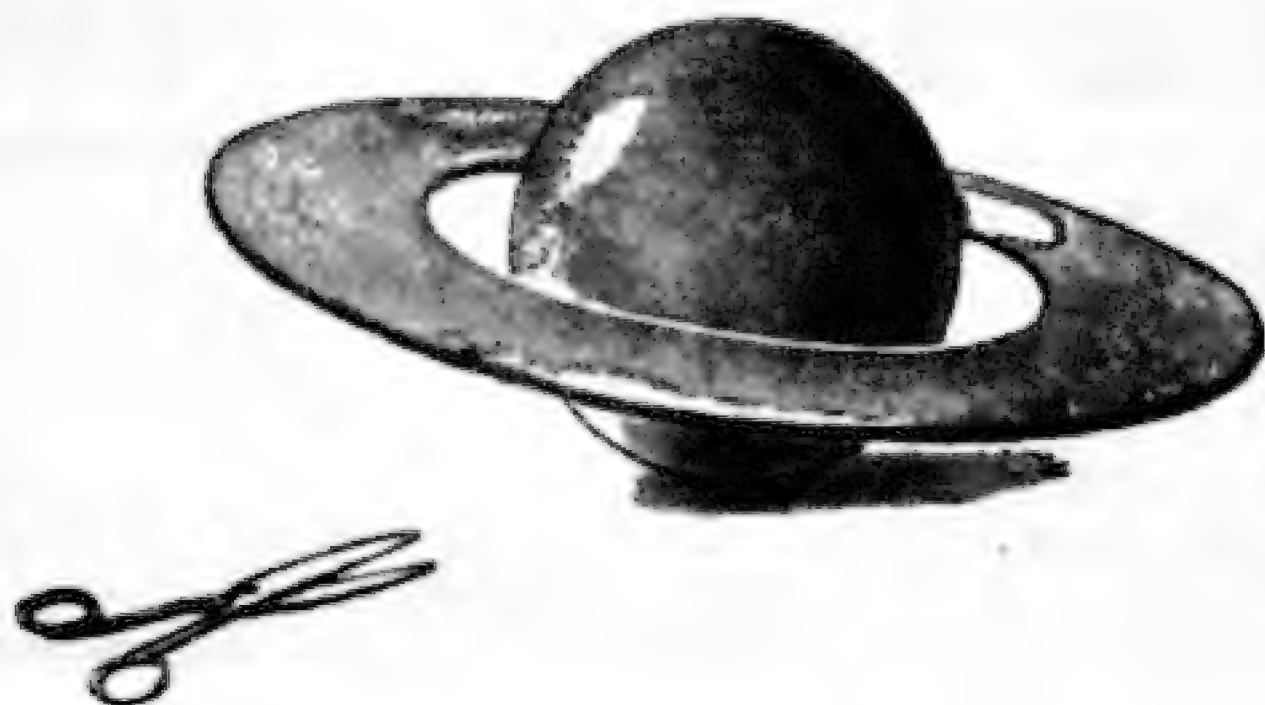
नीले, मख़मली आकाश में शनि एक अद्‌भुत खिलौना-सा मालूम पड़ता है। ऐसा लगता है कि यह खिलौना प्रकृति ने यह दिखलाने के लिए बनाया है कि वह नाना प्रकार के आकाशीय पिण्डों की सृष्टि कर सकती है।

भला शनि को यह कुण्डली कहाँ से मिली? यह अब भी पूर्णतः स्पष्ट नहीं है। खगोलविज्ञानियों का विचार है कि यह कुण्डली शनि के नष्ट हुए उपग्रहों के टुकड़ों से बनी है।

यह कुण्डली शनि के चारों ओर 15-21 किलोमीटर प्रति सेकण्ड की चाल से घूमती है। यह कुण्डली अलग-अलग कणों से मिलकर बनी हैं। ये कण एक-दूसरे से चिपके नहीं हैं। वे अन्तरिक्ष में स्वतन्त्रतापूर्वक उड़ते हैं और भिन्न-भिन्न आकार के हैं। इनके बीच बहुत ही बारीक़ धूल के कण तथा अनेक टनों वाले पत्थर हैं।

हम क्यों सोचते हैं कि शनि की कुण्डली ठोस नहीं हैं? वह इसलिए कि शनि की यह कुण्डली यदि किसी पर्यवेक्षक की आँख और किसी तारे के बीच आ जाती है, तो पर्यवेक्षक इसके पार वाले तारे को भलीभाँति देख सकता है। इससे हम यह भी जान सकते हैं कि शनि की कुण्डली बहुत ही महीन है – उसकी मोटाई कुल पन्द्रह किलोमीटर ही है...

तुम हँस रहे हो कि यह तो सचमुच ही बहुत महीन है!

हाँ, उसकी विशाल चौड़ाई की तुलना में वह महीन ही है। तुम्हारे पास कुण्डली का नमूना है। ऐसे आकार के चार छोटे-छोटे गोले लो कि वे कुण्डली की सतह पर आड़ी रेखा में रखे जा सकें। तब नमूने पर हर एक गोला हमारी पृथ्वी को चित्रित करेगा। देखा तुमने, शनि की कुण्डली कितनी चौड़ी है!

शनि से पृथ्वी तक की दूरी लगभग 1.5 अरब किलोमीटर है और जब कुण्डली का किनारा हमारी ओर मुड़ जाता है तब उसको सबसे शक्तिशाली टेलीस्कोपों से भी देखना असम्भव होता है। यह तो किसी काग़ज़ के किनारे को पूरे एक किलोमीटर की दूरी से खाली आँखों से देखने वाली बात होगी।

शनि की कुण्डली हर पन्द्रह वर्ष बाद पृथ्वी के पर्यवेक्षकों की आँखों से ओझल हो जाती है, और तब शनि साधारण-सा ग्रह दीख पड़ता है।

शनि की कुण्डली पर कितने पृथ्वी-गोल रखे जा सकते हैं।

यहाँ मैं खगोलविज्ञान के इतिहास की एक मनोरंजक घटना का उल्लेख करता हूँ।

सन् 1921 में शनि पृथ्वी की ओर ऐसे मुड़ गया कि उसकी कुण्डली अदृश्य हो गयी। 'खगोल-कैलेण्डर' में छप गया कि यह कुण्डली मिट गयी है।

ऐसे समाचारों के शौक़ीन और लोगों को चकित तथा भयभीत करने की इच्छा रखने वाले विभिन्न देशों के संवाददाता इस समाचार को ले उड़े।

"शनि की कुण्डली लुप्त हो गयी!" एक समाचारपत्र ने घोषणा की, "यह टुकड़े हो गयी है!" (अनभिज्ञ लोग सोचते थे कि कुण्डली ठोस है।)

दूसरे समाचार पत्र ने शोर मचाया – "ये टुकड़े बड़ी तेज़ी से हमारी ओर उड़ते आ रहे हैं! प्रलय अनिवार्य है!"

इस प्रकार एक भयानक कोलाहल मच गया। पादरियों ने भी अपनी आवाज़ उठायी – "संसार का अन्त समीप आ रहा है! ईसाई धर्म के अनुयाइयो, प्रार्थना करो, अपने पापों का प्रायश्चित करो!"

इस तरह खगोलविज्ञानी के एक छोटे-से लेख से एक भारी हंगामा मच गया।

परन्तु निश्चय ही ऐसे "मिट जाने" के बाद कुण्डली फिर से शीघ्र ही प्रकट होती है। आरम्भ में यह एक पतले धागे की भाँति दिखायी देती है, धीरे-धीरे बढ़ती है और अन्त में, सात आठ वर्षों बाद, पूर्ण रूप में प्रकट हो जाती है। उस समय इस कुण्डली को बहुत अच्छी तरह देखा जा सकता है। इसके बाद यह कुण्डली फिर से छोटी होने लगती है।
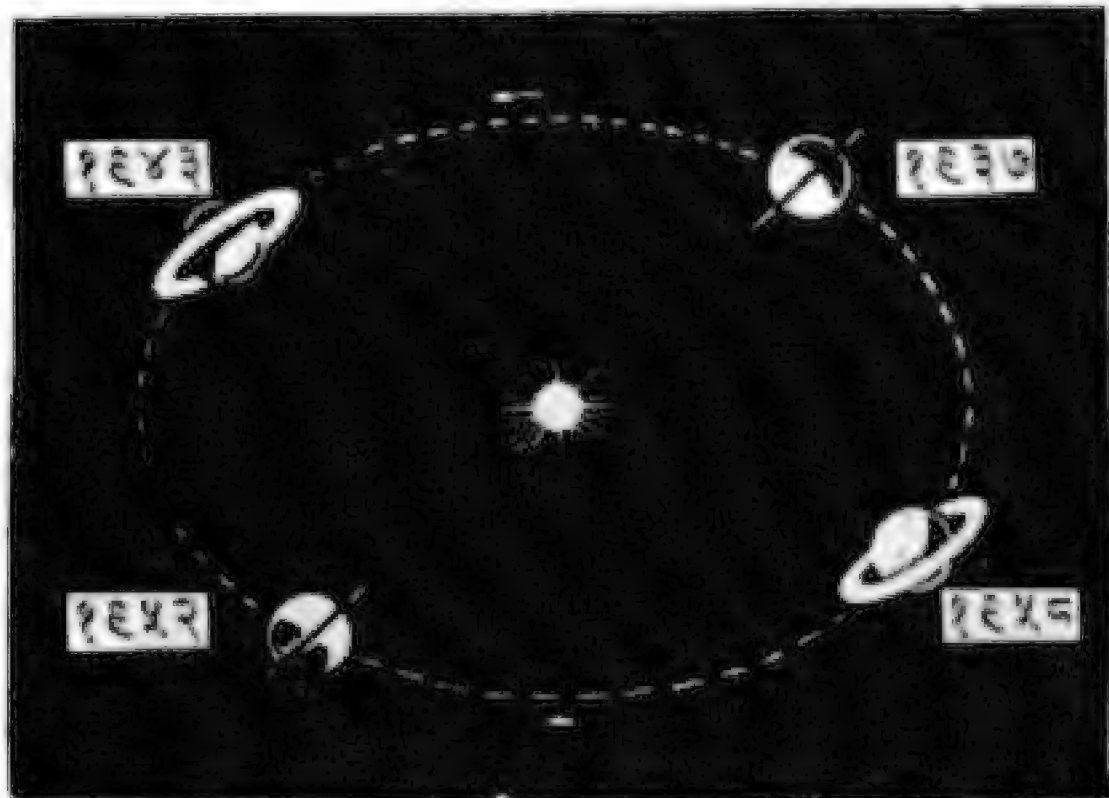
निरीक्षक को पृथ्वी पर शनि की कुण्डली भिन्न-भिन्न समय पर ऐसी दिखायी देगी।
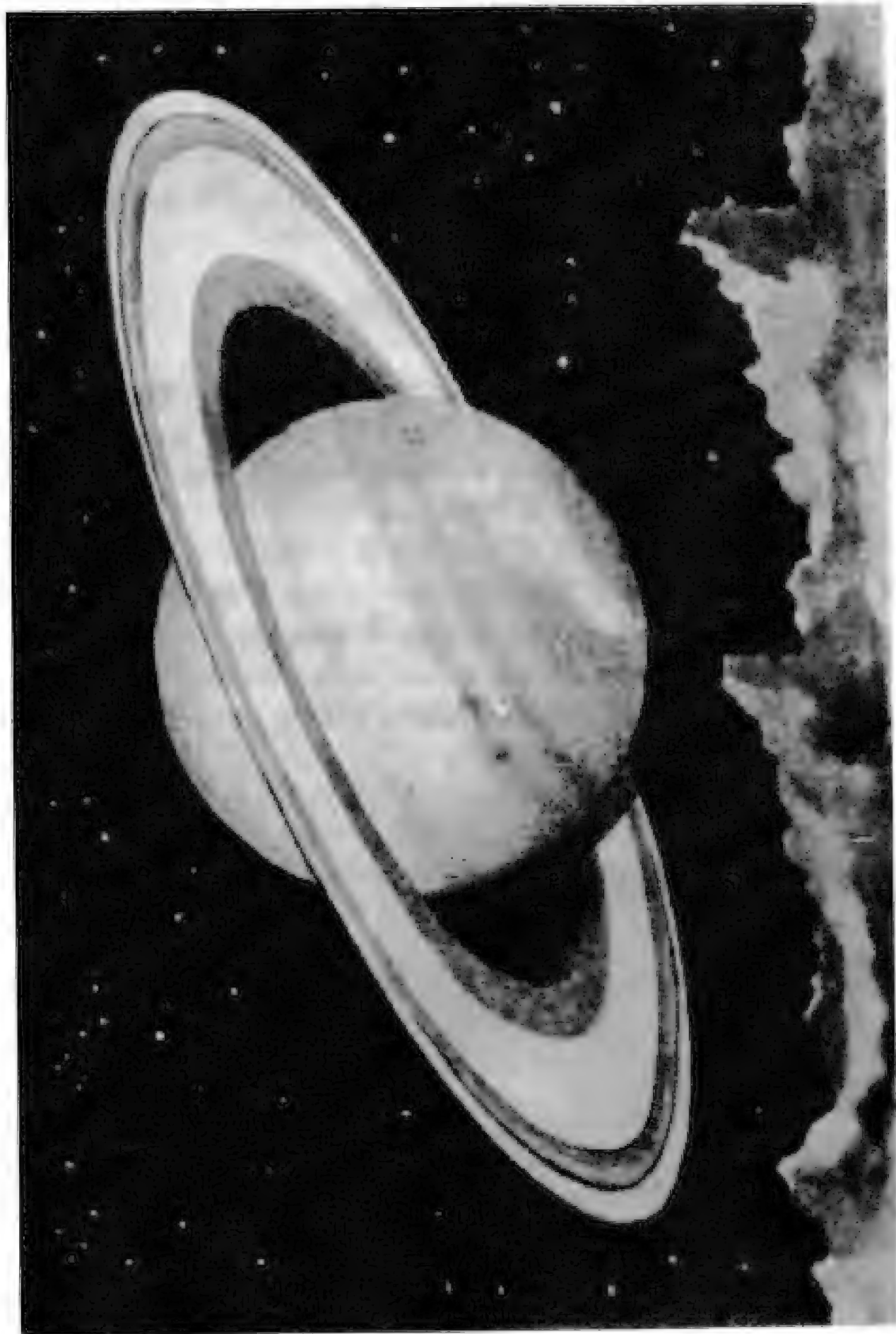
शनि अपने उपग्रह पर ऐसा दिखायी देता है।

शनि की कुण्डली के निरीक्षण के लिए सन् 1958 तथा 1959 बहुत अनुकूल थे। इन वर्षों में, यह कुण्डली अपने पूर्ण रूप में प्रकट हुई।

मेरी इस किताब के पाठको, यदि तुम्हारे पास अच्छा टेलीस्कोप है या तुम्हारे लिए वेधशाला में जाना सम्भव है, तो मौक़ा हाथ से न जाने दो और इस आश्चर्यजनक आकाशीय दृश्य – शनि की कुण्डली का दृश्य – अवश्य ही देख लो।

कुण्डली के अतिरिक्त शनि के नौ उपग्रह हैं। उनमें सबसे बड़ा हमारे चन्द्रमा से दुगुना बड़ा है।

यूरेनस

यूरेनस सूर्य से बहुत ही दूर है – पृथ्वी की अपेक्षा उन्नीस गुना अधिक दूर। यूरेनस का प्रकाश बहुत ही क्षीण है और सन् 1781 में अकस्मात् ही इस ग्रह की खोज हुई। मैं बतला ही चुका हूँ कि रोम-निवासी सैटर्न को जुपिटर का पिता मानते थे, और आकाश का देवता यूरेनस सैटर्न का पिता माना जाता था। अतएव शनि की अपेक्षा सूर्य से कहीं दूर इस ग्रह को 'यूरेनस' कहा गया।

यूरेनस का वर्ष पृथ्वी के चौरासी वर्षों के बराबर होता है – पृथ्वी पर बहुत कम ही लोग यूरेनस के दो वर्षों की अवधि तक जी सके हैं। परन्तु यूरेनस केवल 11 घण्टों में अपनी धुरी पर एक परिभ्रमण करता है। एक वर्ष में ऐसे परिभ्रमणों की संख्या 72 हज़ार से अधिक होती है।

यूरेनस ग्रह की एक विशेषता इसे सौर जगत के अन्य ग्रहों से अलग करती है। सूर्य के चारों ओर चक्कर काटते हुए सभी ग्रहों की धुरी ऊर्ध्व अथवा ऊर्ध्व से कुछ मुड़ी हुई रहती है। परन्तु यूरेनस उस लट्टू जैसा है जो एक तरफ़ को झुका हुआ सा घूमता है।

इस कारण यूरेनस पर रात और दिन आश्चर्यजनक रूप से बदलते हैं। यूरेनस की धुरी अपने छोर को कभी-कभी सूर्य की ओर बिल्कुल सीधी कर लेती है। यदि ऐसे समय यूरेनस के ध्रुव पर कोई निरीक्षण करने वाला हो, तो सूर्य उसके सिर के ठीक ऊपर नज़र आये।

यूरेनस

इससे क्या होता है? सूर्य ध्रुव को तथा ध्रुवीय क्षेत्र को सबसे अधिक प्रकाशित करता है, आगे उसकी किरणें तिरछी पड़ती हैं और जैसे-जैसे यूरेनस की मध्य-रेखा पास आती जाती है, वैसे-वैसे सूर्य क्षितिज पर नीचे-नीचे होता जाता है। और यदि इस मध्य-रेखा से
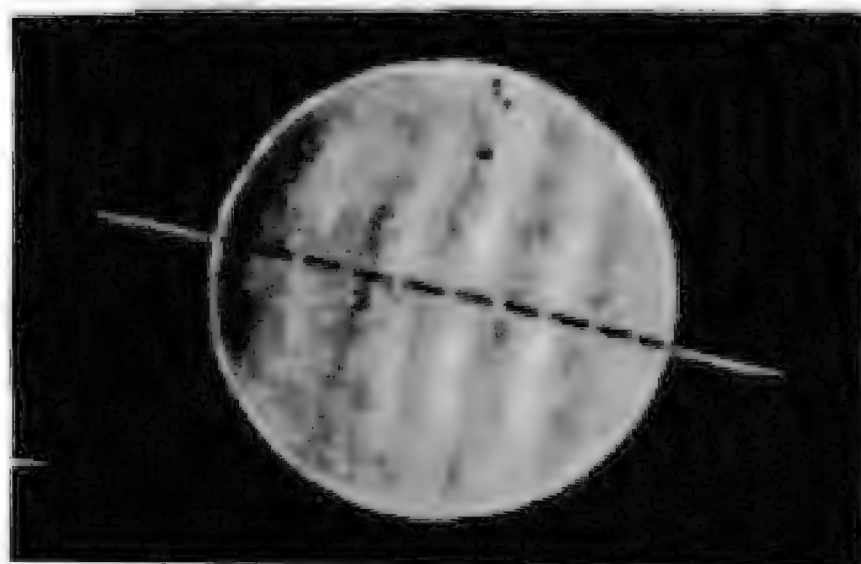
देखा जाये, तो सूर्य क्षितिज पर ही दिखायी देगा। यह सब वैसे नहीं होता, जैसे हमारी पृथ्वी पर, बल्कि उल्टा ही। उस गोलार्द्ध में, जिसके ऊपर सूर्य है, दिन रहता है। यह दिन पृथ्वी के बहुत वर्षों और यूरेनस के हज़ारों परिभ्रमणों की अवधि तक चलता रहता है। ठीक ध्रुव पर तो यह दिन यूरेनस के 36 हज़ार परिभ्रमणों के बराबर की अवधि तक ज़ारी रहता है।

ऐसा है प्रकृति के कारनामों का असीम ख़ज़ाना!

यूरेनस के पाँच उपग्रह हैं और उनमें से सबसे बड़ा भी हमारे चन्द्रमा से काफ़ी छोटा है।

नेप्चून

नेप्चून सूर्य का आठवाँ ग्रह और बड़े ग्रहों के समूह में अन्तिम है।

नेप्चून की खोज की एक अद्‌भुत कथा है।

इसकी खोज आकाश में टेलीस्कोप से पर्यवेक्षण करने वाले खगोलविज्ञानी ने नहीं, बल्कि एक गणितज्ञ ने की। गणितविज्ञानी तो हाथ में क़लम लेकर केवल अपने पढ़ने-लिखने वाली मेज़ पर बैठा रहता था और अपने कार्य की अवधि में एक बार भी आकाश की ओर नहीं देखता था। फिर भी उसने इस ग्रह की खोज कर डाली।

यह कैसे हुआ, मैं तुम्हें बताता हूँ।

तुम जानते ही हो कि यूरेनस सूर्य के चारों ओर की एक परिक्रमा चौरासी वर्षों में पूरी करता है। आकाश में उसका स्थानान्तरण बहुत ही धीमा प्रतीत होता है, यद्यपि सचमुच वह हर सेकण्ड में 7 किलोमीटर चलता है। यहाँ मैं तुम्हें यह याद दिलाना चाहता हूँ कि दूरमार तोप से निकले हुए गोले की गति प्रति सेकण्ड में केवल दो किलोमीटर होती है।

परन्तु यूरेनस हमसे इतना दूर है कि आकाश में तारों के बीच उसका स्थानान्तरण बहुत ही धीमा मालूम पड़ता है। खगोलविज्ञानियों ने बहुत वर्षों के लिए यूरेनस के चलने का मार्ग निश्चित किया। उन्होंने यह ठीक-ठीक निश्चित कर दिया कि खोज के बीस, चालीस और साठ वर्षों बाद यूरेनस को कहाँ होना चाहिए।

परन्तु क्या हुआ? चालीस वर्षों बाद ग्रह उस स्थान पर न पहुँचा जहाँ उसे होना चाहिए था, और साठ वर्षों बाद पहले से निश्चित किये हुए मार्ग से उसकी दूरी और भी बढ़ गयी। यह सच है कि तुम्हें यह दूरी बहुत ही तुच्छ मालूम होगी। एक दियासलायी खड़ी करो और उससे 4 मीटर अर्थात् 7 क़दम दूर हट जाओ। क्या दियासलायी की मोटाई (या, दूसरे शब्दों में, उसकी चौड़ाई) तुम्हें बड़ी मालूम पड़ेगी?

यूरेनस आकाश-मण्डल में अपने पूर्वनिश्चित मार्ग से कई वर्षों में उपरोक्त चौड़ाई के बराबर दूर हटा।

शायद तुम कहोगे कि यह तो छोटी-सी बात है।

परन्तु खगोलविज्ञानियों ने बताया कि यह छोटी बात नहीं है। अवश्य ही कोई ऐसा अज्ञात कारण है जो यूरेनस को अपने सही मार्ग से हट जाने के लिए बाध्य करता है। उन्होंने इस कारण का पता लगाना

आरम्भ किया।

तुम जानते ही हो कि विश्वव्यापी गुरुत्वाकर्षण-शक्ति बहुत दूरी पर भी काम करती है, परन्तु आकाशीय पिण्ड जैसे-जैसे एक दूसरे से दूर होते जाते हैं, यह शक्ति भी वैसे ही वैसे घटती जाती है।

हम कहते हैं –

"पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा इसलिए करती है, कि सूर्य उसको अपनी ओर आकर्षित करता है।"

यह ठीक है। परन्तु इन शब्दों में यह भी जोड़ना आवश्यक है कि पृथ्वी को केवल सूर्य ही नहीं, किन्तु चन्द्रमा, बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति तथा सभी दूसरे ग्रह भी अपनी ओर खींचते हैं। यहाँ तक कि दूर स्थित तारे भी पृथ्वी को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। किन्तु चूँकि वे अत्यन्त दूर हैं, अतएव उनकी आकर्षण-शक्ति की ओर ध्यान देना अनावश्यक है। हाँ, ग्रहों की आकर्षण-शक्ति को हमें अवश्य ध्यान में रखना चाहिए।

हम एक उदाहरण लेते हैं। जब सूर्य और बृहस्पति पृथ्वी के एक ही ओर होते हैं, तब आकर्षण-शक्ति बढ़ जाती है। पृथ्वी को आकर्षित करने में बृहस्पति सूर्य को सहायता देता है। परन्तु जब सूर्य पृथ्वी के एक ओर और बृहस्पति दूसरी ओर होता है, तब इसके विपरीत प्रभाव होता है – सूर्य पृथ्वी को अपनी ओर खींचता है और बृहस्पति अपनी ओर। ऐसी दशा में पृथ्वी को अपनी ओर खींचने की सूर्य की शक्ति कुछ क्षीण पड़ जाती है।

पहली दशा में पृथ्वी अपने सही मार्ग से कुछ मुड़ती हुई, सूर्य के थोड़ी-थोड़ी निकट हो जाती है, परन्तु दूसरी दशा में वह सूर्य से कुछ दूर और बृहस्पति के कुछ समीप हो जाती है।

बृहस्पति के आकर्षण से पृथ्वी अपने सही मार्ग से जो कुछ परे हट जाती है, उसे 'अतिक्रमण' कहते हैं। परन्तु यह स्पष्ट है कि जब खगोलविज्ञानी विश्व-अन्तरिक्ष में पृथ्वी का मार्ग निश्चित करते हैं तब उन्हें अतिक्रमणों को ध्यान में लेना पड़ता है, जिन्हें न केवल बृहस्पति ही किन्तु चन्द्रमा, शुक्र, मंगल तथा दूसरे ग्रह भी उत्पन्न करते हैं। यह बहुत ही बड़ा कार्य है।
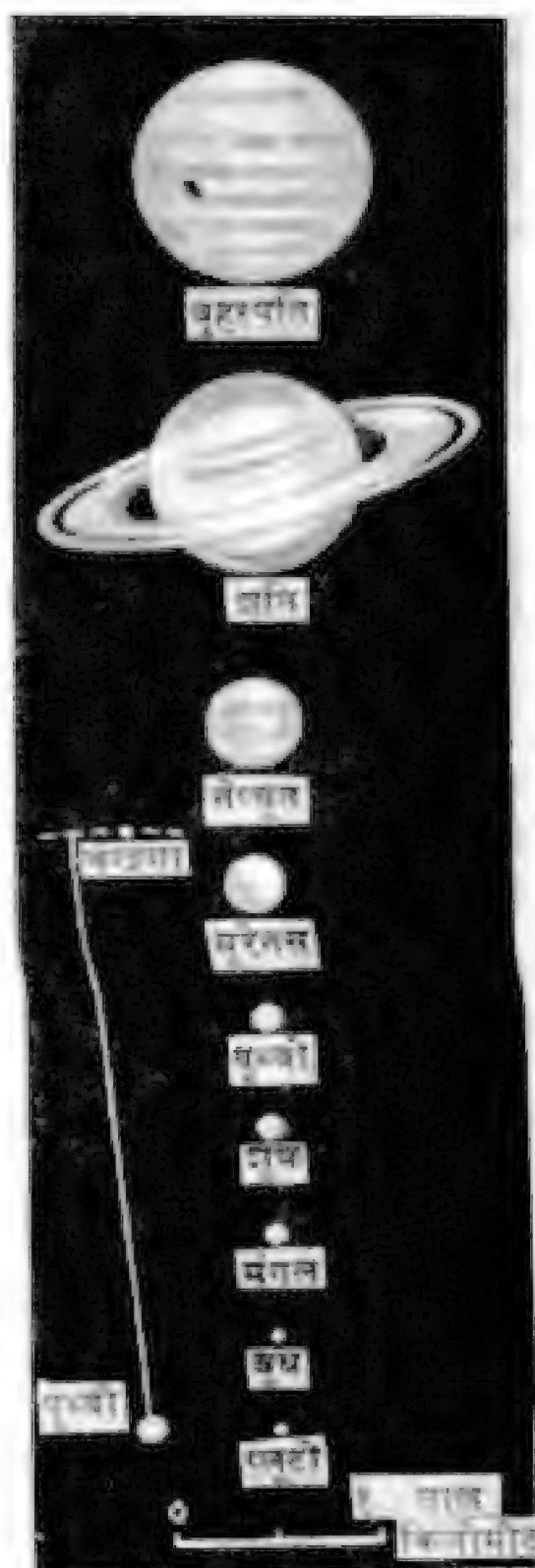
ग्रहों का तुलनात्मक आकारमान। पृथ्वी-चन्द्रमा का मण्डल और उनके बीच का अन्तर अलग से दिखाया गया है। इस अन्तर का और ग्रहों के व्यास का मापदण्ड एक ही है।

यूरेनस का मार्ग निश्चित करते समय खगोलविज्ञानियों ने यही कठिन कार्य सम्पन्न किया। उन्होंने उस समय तक ज्ञात सभी ग्रहों द्वारा उत्पन्न किये हुए अतिक्रमणों को ध्यान में रखा, लेकिन जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं – वे यूरेनस का ठीक-ठीक मार्ग निश्चित न कर पाये।

सम्भव है कि खगोलविज्ञानियों से गणना करने में भूल हुई हो? नहीं, ऐसी बात न थी। खगोलविज्ञानी बड़ी ही सूक्ष्मता से शुद्ध गणना करते हैं। यदि तुम खगोलविज्ञानी बनने का विचार रखते हो, तो गणित में तुम्हें हमेशा ही उच्चतम अंक प्राप्त करने चाहिए।

परन्तु यदि सभी गणना ठीक-ठीक की गयी और इसके होते हुए भी यूरेनस अपने निर्देशित मार्ग से झुका तो इसका अर्थ यह निकला कि अन्तरिक्ष में कोई ऐसा अज्ञात ग्रह है जो यूरेनस को अपनी ओर खींचता है।

अतिक्रमण करने वाले अज्ञात ग्रह को ध्यान में रखते हुए ही विश्व-अन्तरिक्ष में इस नये ग्रह का स्थान निश्चित करना चाहिए था।

शायद ऊँची घास वाले मैदान में खोयी हुई लोहे की गोली का स्थान – मैदान के बीचोबीच पड़े हुए कुतुबनुमा पर इस गोली का असर ध्यान में रखकर – निश्चित करना अधिक सरल है।

नये ग्रह को ढूँढ़ निकालने की समस्या बहुत ही मुश्किल थी और इसके लिए कई महीनों की बहुत ही जटिल और मुश्किल गणना की आवश्यकता थी। इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी यह कार्य पूरा किया गया।

युवक फ़्रांसीसी खगोलविज्ञानी लेवेरीं ने गणना समाप्त करने के बाद बेधशाला को लिखा – "मकर राशि के समीप नये ग्रह को ढूँढ़ो!"

जिस दिन यह पत्र मिला, उसी दिन सायंकाल इस ग्रह का पता लग गया। टेलीस्कोप में वह एक तारे की भाँति बिन्दु जैसा नहीं, किन्तु एक छोटा-सा गोला मालूम पड़ा।

यह सन् 1846 में हुआ।

इस नये ग्रह को समुद्र के देवता नेप्चून के नाम से सम्बोधित किया गया :

आकार में यूरेनस तथा नेप्चून लगभग वैसे ही जुड़वाँ हैं, जैसे पृथ्वी और शुक्र। ये दोनों ग्रह घनफल में पृथ्वी से लगभग 60 गुना अधिक है।

नेप्चून सूर्य से 30 खगोल-इकाईयों की दूरी पर है। और उसके एक वर्ष की अवधि पृथ्वी के एक सौ पैंसठ वर्षों के बराबर है। नेप्चून की खोज हुए पृथ्वी के सौ से अधिक वर्ष हो चुके हैं, परन्तु इतने समय में नेप्चून अभी सूर्य की एक भी परिक्रमा पूरी नहीं कर पाया है।

नेप्चून के दो उपग्रह हैं। उनमें से एक बुध के आकार के बराबर है; दूसरा बहुत ही छोटा है और उसका कुछ ही समय पहले – सन् 1949 में – पता लगा है।

प्लूटो

रोम-निवासी प्लूटो को पाताल का देवता मानते थे। ऐसा कहा जाता था कि वह निरन्तर अँधेरे में ही रहता था। वहाँ प्रकाश पहुँचता था केवल पापियों को भूनने वाली नरक की अग्नि से।

अब तक ज्ञात ग्रहों में सबसे दूर स्थित ग्रह को खगोलविज्ञानियों ने 'प्लूटो' का नाम दिया। हमारी पृथ्वी की तुलना में प्लूटो सूर्य से चालीस गुना अधिक दूर है, उसका एक वर्ष हमारी पृथ्वी के लगभग ढाई सौ वर्षों के बराबर होता है।

प्लूटो के हर एक वर्ग मीटर क्षेत्र को पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य से 1,600 गुना कम प्रकाश और गर्मी मिलती है। प्लूटो से सूर्य केवल एक छोटा घेरा ही मालूम पड़ता है – ऐसा घेरा, जिसका व्यास हमें दिखायी देने वाले सूर्य के व्यास से 40 गुना कम हो।

परन्तु यह कहना ठीक नहीं है कि प्लूटो पर निरन्तर अँधेरा ही अँधेरा रहता है। सब कुछ होते हुए भी सूर्य प्लूटो के प्रकाशित भाग को पूर्ण चन्द्र से हमें मिलते हुए प्रकाश की तुलना में 275 गुना अधिक प्रकाश देता है। इसके लिए कि हमारी रात प्लूटो के दिन की तरह उज्जवल हो, हमारे आकाश में दो सौ पचहत्तर पूर्ण चन्द्रमाओं की आवश्यकता होगी। इससे तुम देखते हो कि हमारा सूर्य कितना उज्ज्वल है और विश्व-अन्तरिक्ष को वह कितनी अच्छी तरह प्रकाशित करता है।

परन्तु सूर्य प्लूटो की सतह को बहुत ही कम गर्मी देता है – वहाँ का तापमान शून्य से नीचे लगभग 200 सेण्टीग्रेड है।

प्लूटो की खोज अभी हाल ही में हुई – सन् 1930 में। तब से जो समय बीता, उतने में प्लूटो सूर्य की पूरी एक परिक्रमा के आठवें भाग से कुछ कम ही पूरा कर सका है।

वह इतनी दूरी पर है कि किसी शक्तिशाली टेलीस्कोप में भी वह गोला नहीं, एक प्रकाश-बिन्दु दिखायी देता है। खगोलविज्ञानी अभी भी प्लूटो का अन्वेषण नहीं कर पाये हैं। यह स्पष्ट नहीं कि प्लूटो
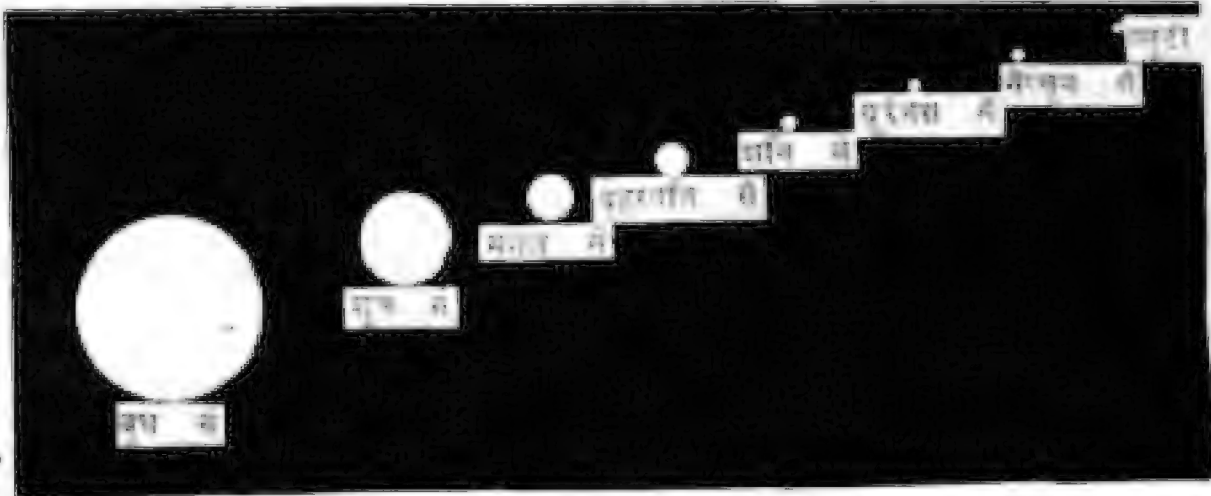
विभिन्न ग्रहों से निरीक्षकों को सूर्य ऐसा दिखायी देगा।

अपनी धुरी पर घूमता है अथवा नहीं, उस पर वायुमण्डल है या नहीं और उसके कोई उपग्रह भी हैं या नहीं।

प्लूटो कोई बहुत बड़ा ग्रह नहीं है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि उसका आकार लगभग हमारी पृथ्वी के बराबर है।

प्लूटो के और आगे ग्रह हैं या नहीं? सम्भव है कि वे हैं, परन्तु उनकी खोज करना कठिन होगा क्योंकि वे अति ही दूर हैं।

उल्काएँ

प्राचीन काल में लोगों का विचार था कि तारे बिल्लौरी आकाश में लटकने वाले छोटे-छोटे चमकते हुए दीपक हैं। लोग समझते थे कि हर एक मनुष्य का अपना निजी तारा है जो उसकी मृत्यु के समय बुझ जाता है।

जब आकाश में कोई चमकता हुआ तारा उड़ता था और फिर बुझ जाता था, उस समय आस्तिक ईसाई तुरन्त ही अपने हाथ से माथे तथा सीने पर क्रॉस का चिह्न बनाते थे और कहते थे –

"ईश्वर ने किसी की आत्मा को अपने पास बुला लिया है..."

आकाश में उड़ते और चमकते हुए बिन्दुओं को लोग "गिरते हुए तारे" कहते थे क्योंकि उस समय उन्हें यह नहीं मालूम था कि हर एक तारा बहुत ही दूर सूर्य है, जो पृथ्वी की अपेक्षा करोड़ों व अरबों गुना बड़ा है।

उल्काएँ कभी-कभी बहुत ही चमकीली होती हैं। आकाश में छोटा-छोटा तारा नहीं, बल्कि अग्नि का गोला तेज़ गति से उड़ता है। ऐसा होता है कि इस प्रकार का गोला सूर्य से भी अधिक तेज़ चमकता है। ऐसी बड़ी-बड़ी उल्काओं को 'बोलाइड' कहते हैं।

उल्काएँ क्या हैं?

विश्व-अन्तरिक्ष में पत्थरों तथा धूल-कणों की धारा-सी उड़ती है। कभी-कभी ये नष्ट हुए प्रकाशग्रहों के टुकड़े होते हैं। टेलीस्कोप में इन्हें नहीं देखा जा सकता क्योंकि ये टुकड़े बहुत ही छोटे होते हैं। परन्तु इन धाराओं में से यदि कुछ पत्थर अथवा धूल-कण उड़ते हुए पृथ्वी के वायुमण्डल में आ जाते हैं, तो वायु से रगड़ खाने के कारण वे पल भर में तप उठते हैं और फिर उज्ज्वल तारों के रूप में चमक उठते हैं।

उल्काएँ, खगोलविज्ञानियों का रुचिकर विषय है। यह स्पष्ट है कि वे एकाकी उल्काओं का नहीं, किन्तु पूरी उल्का-धाराओं का अध्ययन करते हैं। वायु के ऊपरी स्तर में उल्काओं का जल उठना, पृथ्वी के वायुमण्डल की ऊँचाई के मापन में सहायता देता है।

उल्काएँ बिरले ही पृथ्वी पर गिरती हैं – बहुधा वे पूर्णत: भस्म हो जाती हैं। परन्तु बहुत बड़े आकार के पत्थर या तो पूरे के पूरे, या तो टुकड़ों में विभाजित होकर पृथ्वी की सतह पर पहुँच पाते हैं।

उल्का के जो बचे हुए भाग पृथ्वी पर आ गिरते हैं, उन्हें उल्का-पत्थर कहते हैं।

30 जून 1908 में प्रात:काल के समय साइबेरिया के तुन्गूस तैगा के क्षेत्र में, इर्कूत्स्क नगर के 1000 किलोमीटर उत्तर में, एक अत्यन्त विशाल उल्का-पत्थर गिरा। इसके गिरते समय प्रकाश इतना तेज़ था कि कुछ सेकण्डों तक इसने सूर्य के प्रकाश को भी फीका कर दिया।

इस उल्का-पत्थर के गिरते समय एक भयानक विस्फोट हुआ – पृथ्वी ऐसे हिल उठी कि इसकी प्रतिध्वनि मध्य यूरोप तक पहुँच गयी। विस्फोट से जो लहर हुई, उसने पृथ्वी की पूरी दो परिक्रमाएँ कर डालीं।

इस विस्फोट की शक्ति के कारण कई हज़ार वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में विशाल वृक्ष पृथ्वी पर घास के तिनकों की भाँति लुढ़क पड़े। विस्फोट के केन्द्र की ओर – अर्थात् जहाँ उल्का-पत्थर गिरा था – उस स्थान की ओर उनकी जड़ें थीं।

यह बड़ी ही दिलचस्प बात है कि तुन्गूस उल्का-पत्थर के गिरने के बाद उस रात सारी पृथ्वी पर असामान्य उजाला रहा। ऐसा लगता था कि जैसे किसी चमकते हुए बादल ने सारी पृथ्वी को घेर लिया हो।

ज़ार की सरकार ने गिरे हुए उल्का-पत्थर का अन्वेषण करने की चिन्ता नहीं की। केवल 1917 की अक्तूबर क्रान्ति के बाद ही वहां की विज्ञान-अकादमी ने तीन अन्वेषण-दल तैगा में भेजे। इन दलों का नेता था साहसी अन्वेषणकर्त्ता ल. अ. कूलीक। उसने उल्का-पत्थर के गिरने के स्थान पर पनीले कीचड़ से भरे हुए बड़े गड्ढे पाये। गिरे हुए उल्का-पत्थर के बचे हुए टुकड़ों का कुछ पता न लग सका।

एक दूसरा विशाल उल्का-पत्थर 12 फरवरी सन् 1947 को, सुदूर पूर्व स्थित सीखोते-आलीन पर्वतों पर गिरा।

सीखोते-आलीन का उल्का-पत्थर ईमान नगर के समीप ऊँचे आकाश में प्रात: 10 बजकर 36 मिनट पर चमकते हुए अग्नि के एक गोले के रूप में दीख पड़ा। उसकी दुम से भिन्न-भिन्न रंगों का धुआँ निकल रहा था। यह बोलाइड सूर्य से भी कहीं अधिक उज्ज्वल था और इसका विस्फोट बहुत ज़ोरदार गड़गड़ाहट के साथ हुआ।

इस उल्का-पत्थर के गिरने से जो गड्ढे सीखोते-आलीन पर्वतमाला की बर्फ़ीली ढालों पर बने, उन्हें उस स्थान पर उड़ने वाले उड़ाकुओं ने देखा। उन्होंने इस स्थान की सूचना दी। विज्ञान-अकादमी का अन्वेषण-दल वहाँ पहुँचा।

चूँकि लोग उल्का-पत्थर के गिरने के फ़ौरन बाद उसकी खोज करने गये अतएव उन्हें लगभग 40 टन भार वाले कई हज़ार टुकड़े प्राप्त करने में सफलता मिली। सबसे बड़े टुकड़े का वज़न 1,745 किलोग्राम था। किन्तु वैज्ञानिकों की गणनानुसार उल्का-पत्थर का भार लगभग 1,000 टन था।

बचे हुए टुकड़ों का अधिकांश या तो पृथ्वी की गहराई में चला गया, या अति ही सूक्ष्म कणों में विभाजित हो गया।

किसी स्वच्छ आकाश वाली सन्ध्या में किसी खुले स्थान में जाकर आकाश का निरीक्षण करो। यदि तुम एक-दो घण्टे वहाँ खड़े रहोगे, तो हो सकता है कि देखोगे कि किस प्रकार आकाश-मण्डल में तारों के रूप वाली उल्काएँ भड़क उठती हैं और भस्म हो जाती हैं। ये उल्काएँ तो तुम्हें एक स्थान पर ही दिखायी पड़ती हैं, फिर भला पूरी पृथ्वी पर एक दिन-रात में कितनी उल्काएँ गिरती हैं? मैंने दिन-रात की चर्चा इसलिए की है कि उल्काएँ दिन और रात दोनों ही में गिरती हैं, किन्तु दिन में केवल बड़ी-बड़ी उल्काएँ – बोलाइड – ही दिखायी पड़ती हैं।

हर वर्ष पृथ्वी कई अरबों उल्काओं से टकराती है। इनमें से केवल कुछ हज़ार ही पृथ्वी की सतह पर उल्का-पत्थरों के रूप में आ पाती हैं। परन्तु खगोलविज्ञानियों के हाथ में हर वर्ष केवल पाँच-दस उल्का-पत्थर ही आते हैं। पूरे संसार की संग्रहशालाओं में लगभग एक हज़ार दो सौ उल्का-पत्थर एकत्रित हैं।

जिस पदार्थ से उल्का-पत्थर बनते हैं, उसका अन्वेषण विज्ञान के लिए अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। कारण कि उल्का-पत्थर उस पदार्थ का टुकड़ा है, जो हमारे पास सौर जगत की गहराइयों में से उड़कर आया है और हो सकता है कि वह अत्यन्त ही दूर स्थित तारे से भी आया हो।

किसी 'आकाशीय' पदार्थ को स्वयं हाथ में लेने की सम्भावना अन्वेषणकर्त्ता के लिए बहुत ही आकर्षक है।

गिरे हुए उल्का-पत्थर को पाना बड़ा ही कठिन है। उसके गिरने के समय विचारों को धोखा हो जाता है कि वह किसी पड़ोसी गाँव के समीप के जंगल ही में गिरा है... परन्तु वास्तव में निरीक्षण करने वाले के खड़े होने के स्थान से वह कई किलोमीटर दूर जाकर गिरता है।

बहुत-से उल्का-पत्थर तो रेगिस्तानों अथवा तैगा जैसे निर्जन स्थानों में और बहुत-से नदियों और महासागरों में जा गिरते हैं। अतएव मनुष्य द्वारा पाया गया हर उल्का-पत्थर विज्ञान के लिए बहुमूल्य है। वह उसी वज़न के सोने के टुकड़े से कहीं अधिक मूल्यवान है।

मेरे मित्रो, यदि तुम इस किताब को पढ़कर उल्का-पत्थर की खोज करने का पूर्ण महत्त्व समझ जाओगे, तो आकाश सम्बन्धी विज्ञान के अन्वेषण के लिए पहले से कहीं अधिक उल्का-पत्थर प्राप्त हो सकेंगे।

आओ, हम कल्पना में एक हज़ार वर्ष पीछे लौटें।

इतिहासकार ने लिखा है – "आकाश से फुँफकारता तथा गरजता हुआ अग्नि का एक बहुत बड़ा साँप गिरा..."

यह कौन-सा साँप था?

प्राचीन काल से ऐसे अजगरों के विषय में बहुत-सी कहानियाँ प्रचलित हैं जिनके मुँह तथा पूँछ से आग की लम्बी लपटें निकलती थीं। रूस में 'साँप-गोरीनिच' के विषय में कथाएँ प्रचलित थीं और 'गोरीनिच' रूसी शब्द की उत्पत्ति 'गोरेत' शब्द से जिसका अर्थ है 'जलना'।

कथाओं के ऐसे अग्नि-अजगर तथा साँप-गोरीनिच आकाश में आग के पंखों पर उड़ते थे और साहसी वीर उनसे युद्ध करते थे।
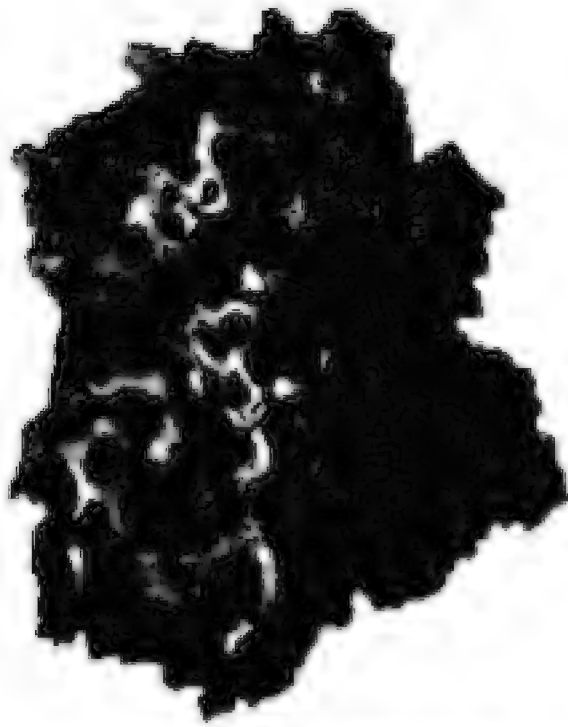
'पल्लस का लोहा' उल्का-पत्थर

परन्तु अग्नि-अजगर और साँप-गोरीनिच को वास्तव में क्या किसी ने देखा था? क्या पुराने काल के वृद्धों ने इन कथाओं को उस समय न गढ़ा था जब जाड़े की लम्बी शामों को गर्म स्टोव के पास बैठे हुए वे बच्चों को भयानक कहानियाँ सुनाते थे?

नहीं, लोक कथाओं और उपाख्यानों की नींव बहुधा वास्तविक निरीक्षणों पर होती है।

'अग्नि-अजगर' बोलाइड है। आकाश में उड़ता हुआ वह अक्सर अपने पीछे आग और धुएँ की कई मील लम्बी रेखा छोड़ता जाता है। स्वयं बोलाइड अग्नि-अजगर का सिर या आग की साँस लेने वाला उसका मुख है और आकाश में उसका चिह्न उसकी लम्बी दुम है।

आकाश में अग्नि-साँपों जैसे 'संकेतों' का होना लोगों को बहुत भयभीत कर देता था और इसका वर्णन इतिहास में भी किया जाता था।

सदियों पर सदियाँ बीतती गयीं और विज्ञान की प्रगति होती रही। वैज्ञानिक उल्काओं के विषय में अभी तक कुछ भी नहीं जानते थे। इतना ही नहीं ऐसे भी वैज्ञानिक थे जिन्हें यह विश्वास ही नहीं होता था कि आकाश से पत्थर गिर सकते हैं। वे कहते थे कि ये मनगढ़न्त कहानियाँ और कोरी गप्पें हैं।

रूसी अकादमिशियन पल्लास ने उल्का-पत्थरों का अध्ययन आरम्भ किया। सन् 1772 में उसने पीटर्सबर्ग विज्ञान-अकादमी को सूचित किया कि साइबेरिया में निकल धातु से मिले हुए लोहे की चट्टान गिरी है। उसका भार लगभग 640 किलोग्राम था।

इस चट्टान को पीटर्सबर्ग में लाया गया। इसी से अकादमी में उल्का-पत्थरों का विख्यात संग्रह आरम्भ हुआ। 'पल्लास के लोहे' के टुकड़ों को अध्ययन के लिए बहुत-से देशों की विज्ञान-अकादमियों में भेजा गया। और इसी के बाद ही यह माना गया कि उल्का-पत्थर सचमुच ही "आकाश" से गिरते हैं।

"आकाशीय" तत्त्व का अन्वेषण दो सौ वर्ष से कुछ ही कम समय पहले आरम्भ हुआ।

तुम शायद यह सोचोगे कि उसमें ऐसे पदार्थ पाये गये जो हमारी पृथ्वी पर अज्ञात थे। नहीं, ऐसी धातुएँ तथा खनिज पदार्थ नहीं पाये गये – "आकाशीय" तत्त्व में प्रधानतः लोहा, निकल, अल्यूमीनियम, ऑक्सीजन तथा गन्धक पाया जाता है।

लगभग शुद्ध लोहे के बने उल्का-पत्थर भी होते हैं। इतिहासवेत्ता तो यहाँ तक सोचते हैं कि प्राचीन काल के मनुष्यों के लोहे के प्रथम औज़ार उल्का-पत्थर ही के लोहे से बनाये गये थे और केवल बाद में ही लोगों ने कच्ची धातु को गलाकर लोहा बनाना सीखा।

विश्व में सभी पिण्ड एक जैसे पदार्थों से बने हैं। परन्तु ये पदार्थ विश्व के भिन्न-भिन्न भागों से किस रूप में हमारे पास उड़कर आते हैं, यह जानना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

तारों की बरसात

ऐसी भी रातें होती हैं, जब उल्काएँ हज़ारों की संख्या में भड़क उठती हैं। सारा आकाश चमकती हुई पंक्तियों द्वारा चित्रित हो उठता है और ऐसा मालूम होता है कि आकाश से तारों की बरसात हो रही है।

तारों की बरसात कब होती है? यह उस रात्रि में होती है जब पृथ्वी उल्काओं की धारा में से होकर गुज़रती है, और अपने मार्ग में बहुत बड़ी संख्या में छोटे-छोटे पत्थरों और धूल-कणों से उसकी भेंट होती है। ऐसे पत्थर व धूल-कण पृथ्वी के वायुमण्डल में तुरन्त ही सैकड़ों व हज़ारों की संख्या में उड़कर आ जाते हैं और वहाँ भड़क उठते हैं।

तारों की बरसात का दृश्य बहुत ही मनोहारी होता है।

पृथ्वी पर प्रति वर्ष उल्काओं का कितना भार गिरता है?

पहले ही कहा जा चुका है कि हर वर्ष कई अरब उल्काएँ गिरती हैं। जो उल्काएँ वायुमण्डल ही में जल जाती हैं और इस प्रकार पृथ्वी की सतह तक नहीं पहुँच पाती हैं, वे भी बाद में पृथ्वी पर छोटे-छोटे धूल-कणों के रूप में गिरती हैं, और जलने के बाद जो गैसें बनती हैं, उनका भी भार होता है।

इस प्रकार, पृथ्वी पर आती हुई हर उल्का, चाहे वह कितनी ही छोटी क्यों न हो, पृथ्वी के भार में वृद्धि करती है।

सम्भवतः तुम सोचोगे कि हर वर्ष पृथ्वी पर गिरने वाले उल्का-पत्थरों का भार बहुत अधिक होता है।

नहीं, ऐसा नहीं है। एक वर्ष में उन सबका भार केवल कुछ ही हज़ार टन होता है। यदि एक वर्ष में सभी गिरे हुए उल्का-पत्थरों के पदार्थ को एकत्रित किया जाये तो उसे दो माल-गाड़ियों में ढोना सम्भव होगा।

उल्काओं का अधिकांश तो छोटे-छोटे धूल-कण ही होते हैं, और विशाल उल्काओं – बोलाइडो – का गिरना तो बिरली घटना ही होता है। अतएव पृथ्वी का भार उल्का-पत्थरों के गिरने के कारण चाहे प्रतिवर्ष ही क्यों न बढ़ता हो फिर भी यह वृद्धि तुच्छ ही है।

पृथ्वी को उसका घना वायुमण्डल ही उल्काओं की बमवर्षा से बचाता है।

वायुमण्डल हमारे लिए बड़ा ही उपयोगी है। हम हवा में साँस लेते हैं, और बिना साँस के जीवन असम्भव है। इतना ही नहीं, वायुमण्डल हर घण्टे और हर सेकण्ड ख़तरा पैदा करने वाले बड़े और छोटे आकाशीय गोलों – उल्काओं – से एक मज़बूत ढाल की भाँति पृथ्वी की रक्षा करता है। इन गोलों का केवल कोई अरबवाँ भाग ही वायुमण्डल में से होकर पृथ्वी की सतह तक पहुँच पाता है।

चन्द्रमा पर इतने अधिक क्रेटर क्यों हैं?

कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि ये क्रेटर लाखों वर्षों के दौरान में चन्द्रमा के ऊपर बड़ी-बड़ी उल्काओं की बमवर्षा से बने हैं। और इन बमवर्षाओं को किसी भी वस्तु ने हल्का नहीं किया, क्योंकि चन्द्रमा के

तारों की बारात

वायुमण्डल का घनत्व बहुत कम है। परन्तु दूसरे खगोलविज्ञानियों का विचार है कि चन्द्रमा के क्रेटर, उसी की सतह पर स्थित ज्वालामुखी पर्वतों के कार्यों से बने हैं।

पुच्छल तारे – दुर्भाग्य के अग्रदूत

'कॉमेट' – यह एक ग्रीक शब्द है, जिसका अर्थ 'पुच्छल तारा' है।

ग्रीक लोगों ने धूमकेतुओं – कॉमेटों – को ऐसा नाम उनकी शानदार पूँछों के कारण दिया। ये पूँछें उस समय प्रकट होती हैं जब धूमकेतु भी लोगों को बुरी तरह भयभीत करते थे। लोग इन निर्दोष प्रकाशग्रहों पर बहुत-सी भयानक बातों का आरोप लगाते थे।

"धूमकेतु हैज़ा, प्लेग तथा दूसरी महामारियाँ लाते हैं!"

"धूमकेतु युद्ध, भुखमरी, बाढ़, सूखे और भूकम्प की – एक शब्द में कहें, तो सभी सम्भावित

अनिष्टों की – भविष्यवाणी करते हैं..."

"धूमकेतु राजाओं, महाराजाओं तथा पोपों की मृत्यु के सन्देशवाहक हैं..."

यह चित्र अम्ब्रुआज़ा पारे कृत 'आकाश के दैत्य' नामक पुराने ग्रन्थ से लिया गया है। चित्र में सन् 1528 का धूमकेतु अंकित है। चित्र के नीचे ये पंक्तियाँ लिखी हुई थीं : "यह धूमकेतु इतना भयंकर था, उसने लोगों को इतनी बुरी तरह डरा दिया कि बहुत-से लोग मारे डर के मर गये और बहुत-से बीमार हो गये। यह असाधारण रूप से लम्बा था और रंग उसका रक्त के समान लाल था। उस पर खड्गधारी हाथ का चित्र था और ऐसा लग रहा था कि वह किसी को मार डालने के लिए तैयार हो। खड्ग की नोक पर तीन तारे चमक रहे थे। धूमकेतु के दोनों ओर फैली हुई किरणों में अनगिनत रक्तसिक्त कुल्हाड़ियाँ, छुरियाँ और तलवारें, दिखायी दे रही थीं और उनके बीच नज़र आ रहे थे मानवों के कटे हुए सिर जिनके बाल बिखरे हुए थे।"

लोग धूमकेतु को देखते थे और धूमकेतु की पूँछ उन्हें चमकती हुई तलवार या खंजर की भाँति या पृथ्वी से सभी पापियों का नामोनिशान मिटाने वाली आकाशीय झाड़ू मालूम देती थी। इस पृष्ठ के चित्र में तुम देखते हो कि सन् 1528 के धूमकेतु में लोगों ने क्या-क्या भयानक वस्तुओं की कल्पना की।

इतिहास में हर एक धूमकेतु के प्रकट होने की कहानी कुछ विपत्तियों के अग्रदूत के रूप में लिखी जाती थी।

सन् 1066 के रूसी इतिहास में धूमकेतु के विषय में यह समाचार लिखा गया था – "इस समय पश्चिम में एक संकेत हुआ। वह तारा बहुत बड़ा था, उसकी किरणें रक्त-सी थीं, सूर्यास्त होने के बाद
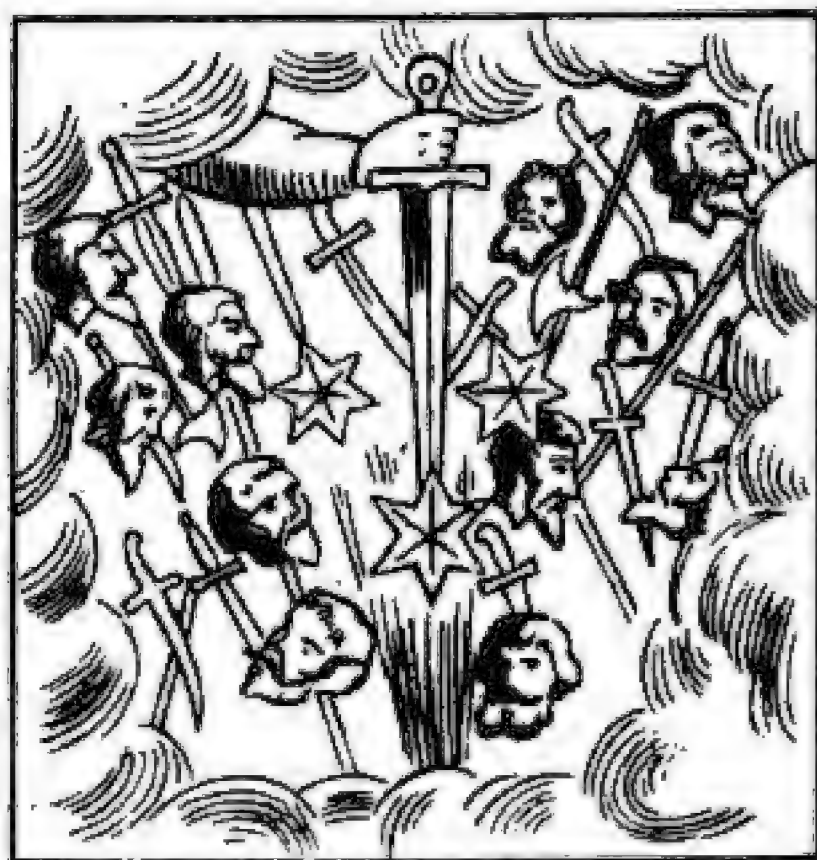
यह सायंकाल को ऊपर उठता था और सात दिन तक नज़र आता रहा। इसके बाद भीतरी युद्ध हुए और रूसी भूमि पर दुश्मनों के क़बीलों का आक्रमण हुआ। ख़ूनी तारा जब भी प्रकट होता है, सदा ही रक्तपात का अग्रदूत होता है..."

और सन् 1378 में, विख्यात कुलिकोव युद्ध – जिसमें तातार लोगों की ताक़त कुचल दी गयी थी – के दो वर्ष पहले इतिहासकार ने लिखा – "कोई घटना घटी, बहुत रातों को आकाश में ऐसा संकेत प्रकट होता रहा : पूरब में ऊषाकाल के पहले पुच्छल तारा बर्छी के रूप में बहुत बार निकला... इस संकेत ने रूसी भूमि पर तख़्तामीश के दुष्टतापूर्ण आक्रमण तथा दुष्ट तातारों के ईसाइयों पर भीषण आक्रमण की भविष्यवाणी की..."

कुछ शताब्दियों बाद भी, जब सन् 1811 में रूस में काफ़ी तेज़ चमकता हुआ धूमकेतु दीख पड़ा, तब भी लोगों ने यही सोचा कि वह युद्ध का अग्रदूत है।

ऐसा हुआ कि दूसरे वर्ष नेपोलियन अपनी सेना लेकर रूस पर चढ़ आया। सन् 1812 का देशभक्तिपूर्ण युद्ध आरम्भ हुआ, मास्को जल गया... इसीलिए धूमकेतु की हानिकारक विशेषताओं में लोगों का विश्वास और भी दृढ़ हो गया।

एडमण्ड हैली और उसका धूमकेतु

साधारण लोगों के लिए धूमकेतु भय की वस्तु थे। परन्तु वैज्ञानिक उन्हें किस दृष्टि से देखते थे?

प्राचीन काल में वैज्ञानिक धूमकेतुओं को ध्रुवीय प्रकाश, घटाओं और बिजली की भाँति वायुमण्डल की घटनाएँ समझते थे। बहुत-से वैज्ञानिकों का विचार था कि धूमकेतु वायु में जलने वाले किसी हानिकारक वाष्प के बादल हैं।

सोलहवीं शताब्दी के अन्त में विख्यात खगोलविज्ञानी तीख़ो ब्रागे ने सर्वप्रथम धूमकेतुओं का अन्वेषण करना आरम्भ किया। वह सन् 1577 के धूमकेतु तक की दूरी नापने में सफल हुआ और उसने पाया कि यह धूमकेतु पृथ्वी से बहुत ही दूर था – चन्द्रमा से भी कहीं अधिक दूर। परन्तु चन्द्रमा तो आकाशीय पिण्ड है, अतएव धूमकेतु भी आकाशीय पिण्ड है।

तीख़ो ब्रागे की मृत्यु सन् 1601 में हुई। इसके पश्चात सुविख्यात खगोलविज्ञानी केपलर ने धूमकेतुओं का अध्ययन आरम्भ किया। चूँकि धूमकेतु बहुत अक्सर पृथ्वी के समीप आ जाते हैं और विश्व-अन्तरिक्ष अनन्त है, अतएव केपलर इस परिणाम पर पहुँचा कि विश्व-अन्तरिक्ष में इतने धूमकेतु हैं, जितनी समुद्र में मछलियाँ। परन्तु धूमकेतु जिन मार्गों में गतिमान होते हैं, केपलर ने उस विषय में ग़लती की। वह सोचता था कि धूमकेतु सीधी रेखाओं में चलते हैं।

केपलर का मत था कि "धूमकेतु विश्व-अन्तरिक्ष से आता है, सौर जगत में से गुज़रता है और फिर सदा के लिए लुप्त हो जाता है।"

यह विचार ठीक नहीं है। एक भी आकाशीय पिण्ड सीधी रेखा में नहीं चलता है और धूमकेतु बहुधा

ग्रहों की भाँति लम्बी परिधि में चलते हैं और एक बार लुप्त हो जाने के बाद फिर से आते हैं।

धूमकेतु सौर जगत के स्थायी निवासी हैं – अंग्रेज़ जहाज़ी तथा वैज्ञानिक एडमण्ड हैली ने ही यह सबसे पहले समझा।

आकाश में धूमकेतुओं के प्रकट होने की पुरानी सूचियों का अध्ययन करते हुए हैली ने इस बात पर ध्यान दिया कि कुछ धूमकेतुओं के प्रकट होने की अवधियाँ लगभग बराबर ही हैं। उदाहरणार्थ सन् 1531, 1607, 1682 में धूमकेतु प्रकट हुए।

वैज्ञानिकों का विचार था कि ये सभी धूमकेतु भिन्न-भिन्न थे। परन्तु आकाश में उनके मार्ग आपस में बहुत कुछ मिलते-जुलते थे। यहाँ यह कहना युक्तिसंगत होगा कि सन् 1682 के धूमकेतु का पर्यवेक्षण हैली ने स्वयं ही किया और आकाश में उसके मार्ग – अर्थात् ग्रहपथ – को भी उसने स्वयं ही निश्चित किया। हैली ने इस प्रकार तर्क किया था – सन् 1531 से 1607 तक छिहत्तर वर्ष और सन् 1607 से 1682 तक पचहत्तर वर्ष। यदि इस धूमकेतु के प्रकट होने में नियमितता हो, भले ही उतनी निश्चित न हो, तो क्या हो? यदि यह ऐसा है, तो फिर धूमकेतु एक लम्ब वृत्ताकार परिधि में सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करता है और उसकी एक पूर्ण परिक्रमा की अवधि साढ़े पचहत्तर वर्ष है।

धूमकेतु की गति में जो अशुद्धि है, उसकी व्याख्या करना सरल है – धूमकेतु अपने मार्ग में बृहस्पति और शनि के समीप से होकर गुज़रता है और ये विशाल ग्रह अपनी आकर्षण-शक्ति द्वारा धूमकेतु की गति में अतिक्रमण ला देते हैं।

हैली ने सोचा – "यदि मेरा तर्क-वितर्क सही है, तो इस धूमकेतु को सन् 1758 में फिर से दिखायी देना चाहिए।"

हैली ने अपना अन्वेषण-कार्य प्रकाशित करवाया और तब अन्य
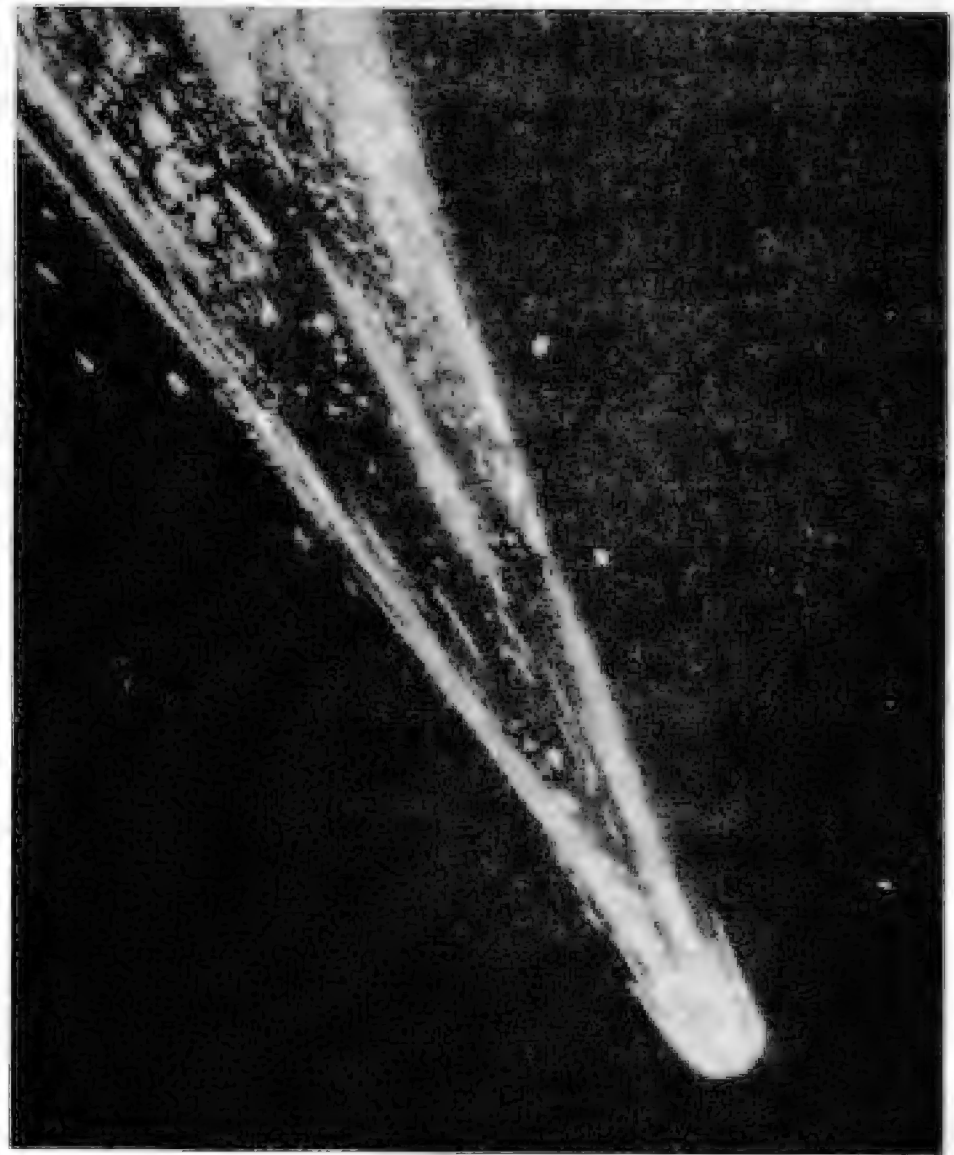
हैले का धूमकेतु

खगोलविज्ञानियों को इस बात की जानकारी हुई।

एडमण्ड हैली ने दीर्घकाल तक, वैज्ञानिक कार्यों से भरा-पूरा, लाभप्रद जीवन व्यतीत किया। वह सन् 1742 में छियासी वर्ष की अवस्था में मरा। धूमकेतु के फिर से दिखायी देने के अपने अनुमानित समय तक यानी केवल सोलह वर्ष वह और अधिक जीवित न रहा। पर धूमकेतु नियुक्त समय पर प्रकट होकर रहा।

इस भाँति हैली ने सर्वप्रथम धूमकेतुओं की नियमितता को सिद्ध किया। फिर तो यह स्पष्ट हो गया कि धूमकेतु भी सौर जगत के सदस्य हैं।

हैली के सम्मान में इस धूमकेतु को उसी का नाम दिया गया। तभी से इसे 'हैली का धूमकेतु' कहते हैं।

धूमकेतुओं को ग्रहों की भाँति अलग-अलग नाम नहीं दिये जाते हैं। यदि कोई धूमकेतु नियमित रूप से प्रकट होता है तो उसे उस खगोलविज्ञानी के नाम से पुकारते हैं जिसने उसकी खोज की और उसके मार्ग को निश्चित किया। परन्तु यदि किसी धूमकेतु की नियमितता सिद्ध न हुई, तो उसे उस वर्ष के धूमकेतु के नाम से पुकारते हैं, जिस वर्ष वह पृथ्वी के समीप आया – उदाहरणार्थ 'सन् 1811 का धूमकेतु'।

धूमकेतुओं के मार्ग

धूमकेतुओं के ग्रहपथ का – अर्थात् उस मार्ग का, जिस पर वे विश्व-अन्तरिक्ष में गतिमान होते हैं – अध्ययन करने में खगोलविज्ञानियों को बहुत ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

जब से लोगों ने आकाश में धूमकेतुओं के प्रकट होने के बारे में लिखना आरम्भ किया, तब से अब तक लगभग डेढ़ हज़ार धूमकेतुओं की गणना की जा चुकी है। यह सच है कि हर धूमकेतु का निकलना इतिहास में नहीं लिखा गया, और सबसे मुख्य बात तो यह है कि इन इतिहासों का अधिकांश तो युद्धों के समय अथवा अग्निकाण्डों में नष्ट हो गया है।

धूमकेतु का मार्ग बहुधा बहुत ही खिंचा हुआ होता है।

बहुत-से ऐसे धूमकेतु हैं, जिनका सूर्य के चारों ओर घूमने का समय अधिक नहीं है। परन्तु अन्तरिक्ष में ऐसे भी धूमकेतु पाये गये हैं, जिनका एक वर्ष यूरेनस, नेप्चून और प्लूटो के लम्बे वर्षों से भी अधिक अवधि का है।

सन् 1858 का उज्ज्वल धूमकेतु सूर्य से 150 खगोल-इकाइयों की दूरी तक – अर्थात् 22.5 अरब किलोमीटर की दूरी तक – चला जाता है। यह दूरी सूर्य से प्लूटो की दूरी की तुलना में चार गुना अधिक है। इतनी दूरी से तो सूर्य एक छोटे-से तारे के रूप में दीख पड़ेगा, फिर भी वह पूर्ण चन्द्रमा से लगभग बीस गुना अधिक उज्ज्वल होगा।

धूमकेतु सूर्य से इतनी दूरी पर पैदल चलने वाले से कुछ ही तेज़ चलता है। परन्तु जितना ही वह सूर्य के समीप आता जाता है और जितना ही सूर्य का आकर्षण बढ़ता जाता है, इसकी चाल उतनी ही

एक उज्ज्वल धूमकेतु

तेज़ होती जाती है।

सूर्य के समीप बहुत-से धूमकेतु 400-500 किलोमीटर प्रति सेकण्ड की चाल से चलते हैं, और केवल यही तीव्र गति धूमकेतु को सूर्य पर गिरने से बचाती है – ग्रहपथ में उसके चलने की केन्द्रापसारी शक्ति ही सूर्य के आकर्षण का प्रतिकार करती है।

वैज्ञानिकों ने गणना की कि सन् 1858 का धूमकेतु दो हज़ार वर्षों में सूर्य की एक पूरी परिक्रमा करता है। इस प्रकार उसे 39वीं सदी में पृथ्वी के निकट आना चाहिए। और यदि उसके मार्ग में कोई 'दुर्घटना' नहीं घटती है, तो वह इस अनुमानित अवधि में आयेगा। वैसे मार्ग में धूमकेतु की भेंट एस्टेरॉयड से हो सकती है और फिर वे एक दूसरे को टुकड़े-टुकड़े कर सकते हैं। या यह भी हो सकता है कि धूमकेतु विशालकाय बृहस्पति या शनि के बहुत ही समीप आ सकता है, जिससे वे ग्रह अपनी आकर्षण-शक्ति द्वारा धूमकेतु के ग्रहपथ को बदल सकते हैं।

सन् 1858 का धूमकेतु धूमकेतुओं के परिवार में सबसे आश्चर्यजनक हो, ऐसी बात नहीं है। ऐसे धूमकेतुओं का पता चला है, जिनकी सूर्य के एक बार चारों ओर घूमने की अवधि दस हज़ार वर्षों तक की है। ऐसे धूमकेतु विश्व-अन्तरिक्ष की अपरिमेय गहराइयों में चले जाते हैं, परन्तु ऐसा होते हुए भी वे सूर्य की विशाल आकर्षण-शक्ति की आज्ञापालन करते हुए वहाँ से वापस लौटते हैं।

धूमकेतुओं की बनावट

धूमकेतु की बनावट कैसी है?

उसके तीन भाग हैं – केन्द्र, सिर तथा दुम।

धूमकेतुओं का अध्ययन करने वाले विशेषज्ञ हर रात्रि में आकाश का निरीक्षण करते हैं। वे देखते हैं कि कहीं कोई नया धूमकेतु तो नहीं निकलता है। यदि टेलीस्कोप के दृक्‌पथ में कोई गोल और धुँधला धब्बा जो आकाश के इस क्षेत्र में पहले नहीं था दिखायी पड़ता है तो खगोलविज्ञानी शीघ्र ही घोषणा करता

है कि "यह धूमकेतु है!"

धूमकेतु की बाह्य रेखाएँ ग्रहों की तरह स्पष्ट नहीं होती हैं। उनके किनारे धुँधले होते हैं। इसका कारण धूमकेतु की बनावट है : उसके भीतर पत्थर का केन्द्र होता है और यह केन्द्र गैसों के आवरण द्वारा घिरा रहता है। यही गैसों-युक्त आवरण धूमकेतु का सिर कहलाता है।

धूमकेतुओं के सिर कभी-कभी विशाल होते हैं। हैली का धूमकेतु जब पिछली बार सन् 1910 में प्रकट हुआ (इस किताब के लेखक ने उस समय उसका निरीक्षण किया था) उसे सिर का व्यास 3 लाख 70 हज़ार किलोमीटर था। यह दैत्याकार शनि के व्यास से तीन गुना बड़ा है। सूर्य से बड़े व्यासवाले धूमकेतु भी हैं।

तुम कहोगे –

"अच्छा! तो सौर जगत में ऐसे महादैत्य भी हैं!"

परन्तु नहीं। धूमकेतु का सिर बहुत ही कम घनी गैसों का बना होता है। तार जल न जाये इसलिए हवा से खाली किये गये बिजली के लैम्प की "शून्यता" उस गैस से एक हज़ार गुना घनी होती है जिससे धूमकेतु का सिर बनता है।

परन्तु धूमकेतु का पथरीला केन्द्र छोटे एस्टेरॉयडों से अधिक नहीं होता है।

सिर तथा केन्द्र ही धूमकेतु की सबसे मुख्य वस्तु नहीं हैं। सबसे मुख्य वस्तु तो उसकी दुम होती है। अपनी दुम से लोगों की दृष्टि को आश्चर्यचकित करता हुआ धूमकेतु बहुत काल तक उनके लिए भय का कारण बना रहा।

धूमकेतु को यह दुम कहाँ से प्राप्त होती है?

यह एक जटिल प्रश्न है।

रूसी वैज्ञानिक लोमोनोसोव काफ़ी अर्से तक सोचता रहा कि आख़िर धूमकेतु की दुम सदा सूर्य से दूर दिशा की ओर क्यों होती है? ऐसा प्रतीत होता है कि सूर्य से कोई ऐसी धकेलने वाली शक्ति आती है, जो धूमकेतु पदार्थ के कणों को पीछे धकेल देती है। लोमोनोसोव की यह अद्भुत कल्पना सौ वर्षों से कुछ अधिक बाद सही निकली।

19वीं सदी के दूसरे अर्द्धभाग में रूसी खगोलविज्ञानी, मास्को विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर फ्योदोर अलेक्सान्द्रोविच ब्रेदीख़िन (1831-1904) ने धूमकेतुओं की दुमों का अध्ययन किया। ब्रेदीख़ीन तथा उसके बाद के खगोलविज्ञानियों ने धूमकेतु की दुम के कारण की व्याख्या इस प्रकार की है।

सूर्य से बड़ी दूरी पर विशाल चट्टान का टुकड़ा – और सम्भवत: बड़े-बड़े पत्थरों का समूह तक – तेज़ी से चलता है। पत्थरों के कणों के बीच बहुत ही छोटे अन्तर या छिद्र होते हैं। ये छिद्र नाइट्रोजन, कोयले की गैस, बहुत विषैली साइनाइड गैस आदि भिन्न-भिन्न गैसों से भरे होते हैं।

धूमकेतु जब सूर्य के निकट आता है तो पत्थर सूर्य की किरणों से तप उठता है और उसके अन्दर की गैसें फैलकर बाहर निकल आती हैं। इससे धूमकेतु के सिर का निर्माण होता है।

धूमकेतु जब सूर्य के पृथ्वी जितना निकट आता है तो सूर्य की धकेलने वाली शक्ति द्वारा पीछे धकेली हुई उसके सिर की गैसें उड़ती हैं और इस भाँति उसकी दुम का निर्माण होता है। जैसे-जैसे धूमकेतु

सूर्य के निकट आता जाता है उसकी दुम बढ़ती जाती है और लगातार सूर्य से दूर हटती जाती है।

धूमकेतु की दुम की लम्बाई लाखों और करोड़ों किलोमीटरों में नापी जाती है। एक धूमकेतु की दुम की लम्बाई 90 करोड़ किलोमीटर थी।

ऐसा ज्ञात हुआ है कि धकेलने वाली शक्तियाँ दो प्रकार की होती हैं। इनमें से एक का स्वरूप अब तक स्पष्ट नहीं है और दूसरी शक्ति है – प्रकाश का दबाव।

भौतिक-विज्ञानी प्योत्र निकोलायेविच लेबेदेव ने सिद्ध किया कि प्रकाश जिन वस्तुओं पर पड़ता है, दबाव डालता है।

यह शक्ति बहुत तुच्छ है – सूर्य की तरफ़ मुख की हुई पृथ्वी की पूरी सतह पर सूर्य की किरणें 10 हज़ार टन की शक्ति से दबाव डालती हैं। प्रकाश अपने दबाव द्वारा मटर अथवा गेहूँ के दाने को धकेलने में असमर्थ रहता है क्योंकि दाने की सतह की तुलना में दाने का भार बहुत अधिक है। परन्तु धूल के छोटे-छोटे कणों का भार तुच्छ होता है। इन कणों को चलाने के लिए प्रकाश का दबाव काफ़ी होता है। विज्ञान के क्षेत्र में यह एक महत्त्वपूर्ण खोज है। धूमकेतुओं की दुमों की बहुत-सी घटनाओं की व्याख्या प्रकाश के दबाव से ही की जाती है।

फ्योदोर अलेक्सान्द्रोविच ब्रेदीख़ीन
(1831-1904)

धूमकेतु जैसे-जैसे सूर्य से दूर जाता है, उसकी शानदार दुम अन्तरिक्ष में तितर-बितर हो जाती है और फिर धूमकेतु टेलीस्कोप द्वारा नज़र न आने वाला केवल एक पत्थर ही रह जाता है।

धूमकेतुओं का भाग्य

धूमकेतु का केन्द्र क्या काफ़ी समय तक अपने में से गैसें निकालता रह सकता है?

हर बार सूर्य के निकट आते हुए धूमकेतु के केन्द्र का केवल ऊपरी स्तर ही – केवल कुछ मीटर गहराई तक ही – गरम होता है और इस स्तर से निकली हुई गैसें धूमकेतु के सिर तथा दुम का निर्माण करती हैं।

धूमकेतु जिस समय फिर सूर्य से दूर जाता है, उस समय केन्द्र के भीतर की गैसें निकलती हैं और ऊपरी सतह के ख़ाली स्थानों में भर जाती हैं। इस प्रकार सूर्य के चारों ओर की हर एक परिक्रमा में केन्द्र की गैसों की मात्रा कम होती जाती है।

इस भाँति धूमकेतु की दुम अनन्त काल तक नहीं बनी रह सकती। ऐसा भी समय आता है, जब वह बिल्कुल नहीं निकलती।

खगोलविज्ञानियों ने गणना की है कि हैली के धूमकेतु की गैसें अभी सूर्य के चारों ओर एक सौ पचीस परिक्रमाओं के लिए – अर्थात् पृथ्वी के लगभग नौ हज़ार वर्षों के लिए – पर्याप्त होंगी। यह एक लम्बी अवधि है क्योंकि हैली के धूमकेतु का केन्द्र बड़ा है – उसका व्यास 20 किलोमीटर तक का है। परन्तु छोटे केन्द्र वाले धूमकेतु अपनी गैसों को काफ़ी जल्द ही खर्च कर डालते हैं।

धूमकेतु का केन्द्र भी दीर्घकालीन नहीं होता।

ऐसा होता है कि केन्द्र टूटकर दो, तीन अथवा पाँच बड़े-बड़े टुकड़ों में विभाजित हो जाता है। ये टुकड़े अन्तरिक्ष में फैल जाते हैं और हरेक टुकड़े से उसकी अपनी दुम निकलती है – अर्थात् एक धूमकेतु से कई धूमकेतु बन जाते हैं।

बीएला के धूमकेतु के साथ एक बड़ी ही दिलचस्प घटना हुई। इस धूमकेतु का परिक्रमा काल लगभग सात वर्ष था। वह सन् 1832 और फिर ठीक 1839 में निकला और खगोलविज्ञानी उसके सन् 1845 में फिर दिखायी देने की प्रतीक्षा कर रहे थे। यह धूमकेतु निश्चित समय पर प्रकट तो हुआ, परन्तु 29 दिसम्बर को उसके साथ एक दुर्घटना घटी – निरीक्षण करने वालों की आँखों के सामने ही वह दो टुकड़ों में विभाजित हो गया। एक भाग दूसरे की अपेक्षा काफ़ी बड़ा मालूम पड़ा – धूमकेतु को जैसे एक उपग्रह मिल गया। मुख्य धूमकेतु तथा उसके उपग्रह के बीच की दूरी बहुत ही शीघ्र बढ़ती गयी और 10 फ़रवरी को दो लाख किलोमीटर से भी अधिक हो गयी। इसके पश्चात धूमकेतु आँखों से ओझल हो गया।

सूर्य से भिन्न-भिन्न अन्तरों पर धूमकेतु ऐसा दिखायी

फिर तो खगोलविज्ञानी बड़ी ही जिज्ञासा और अधीरतापूर्वक बीएला धूमकेतु के निकलने की प्रतीक्षा करने लगे। वह सन् 1852 में प्रकट हुआ, और उसका उपग्रह मुख्य धूमकेतु से लगभग 15 लाख किलोमीटर –अर्थात् पृथ्वी से चन्द्रमा की दूरी की तुलना में चार गुना अधिक दूरी पर रह गया।

सन् 1859 और 1866 में बीएला धूमकेतु का आकाश में पता न लग सका, यद्यपि उसके लिए काफ़ी सूक्ष्म निरीक्षण किया गया। सन् 1872 में वह फिर प्रकट हुआ, किन्तु बिल्कुल दूसरे ही रूप में।

26-27 नवम्बर सन् 1872 की रात्रि में पृथ्वी बीएला धूमकेतु के ग्रहपथ के समीप से गुज़र रही थी। उस समय आकाश-मण्डल में हज़ारों छोटे-छोटे तारे जगमगा उठे। वे तेज़ गति से गुज़रते और फिर बुझ जाते। यह तारों की बरसात थी। उल्काओं की धारा – बीएला धूमकेतु का बस यही कुछ बाक़ी बचा था।

उसी समय से पृथ्वी ने बहुत बार बीएला धूमकेतु के ग्रहपथ को काटा और हर बार तारों की बरसात – अर्थात् वायुमण्डल में जलती हुई बहुसंख्यक उल्काओं की चमक देखी गयी।

इस प्रकार, विश्व-अन्तरिक्ष में तेज़ी से घूमते हुए हर एक धूमकेतु का, चाहे वह कितना ही विशाल और दृढ़ मालूम क्यों न दिखायी दे, यही अन्त होता है – अर्थात् वह पत्थरों और धूल-कणों की धारा में बदलकर रह जाता है।

धूमकेतु दीर्घजीवी नहीं होते। ग्रहों की तुलना में धूमकेतुओं का जीवन केवल कुछ क्षणों का ही होता है। यदि नये धूमकेतु न बनते, तो सभी धूमकेतु बहुत समय पहले ही लुप्त हो गये होते। ये नये धूमकेतु कहाँ से निकल आते हैं?

अनुमान लगाया जाता है कि धूमकेतु एस्टेरॉयडों के विस्फोट से बनते हैं। विस्फोट के बाद टुकड़ों में से यदि कोई खिंचे हुए मार्ग में चलना आरम्भ कर देता है तो वह धूमकेतु बन सकता है।

ऐसा भी विचार प्रकट किया जाता था कि दैत्यग्रहों – बृहस्पति और शनि – पर धूमकेतु उत्पन्न होते हैं। हो सकता है कि इन अतिविशाल ग्रहों पर ज्वालामुखी पर्वत हों जो फटने के समय विशाल पत्थरों को विश्व-अन्तरिक्ष में फेंकते हैं। फिर यही पत्थर धूमकेतु बन जाते हों।

विज्ञान धूमकेतुओं की उत्पत्ति का प्रश्न अब तक भी काफ़ी स्पष्ट रूप से हल नहीं कर पाया है।

धूमकेतु से पृथ्वी की टक्कर

तुम्हें मालूम ही है कि प्राचीन काल में लोग धूमकेतुओं को सब प्रकार की विपत्तियों के अग्रदूत समझते थे। परन्तु जब धूमकेतुओं के असली रूप का पता चला, तब ये भय तो दूर हो गये, परन्तु नये भय प्रकट हो उठे – धूमकेतुओं के मार्ग विचित्र हैं, वे विश्व-अन्तरिक्ष में हर सम्भव दिशा में घूमते हैं। आश्चर्य कि कभी कोई धूमकेतु पृथ्वी से टकरा जाये! यह विश्व का प्रलय होगा – विशाल गति से चलते हुए इस आकाशीय यात्री की भयानक टक्कर से पृथ्वी नष्ट हो जायेगी। खगोलविज्ञानी एक सौ वर्ष पहले तक धूमकेतुओं का असली आकार नहीं जानते थे, और उन्हें बहुत बड़ा समझते थे। इस प्रकार, उदाहरणार्थ, वे सोचते थे कि 1770 में दिखायी देने वाले लेक्सेल धूमकेतु का भार कम से कम अरब खरब टन के लगभग है :

10,00,00,00,00,00,00,00,000

सचमुच, यदि इतना महाकाय भार पृथ्वी से टकरा जाये, तो इसका परिणाम बड़ा ही दुखद हो। परन्तु वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है कि धूमकेतु का केन्द्र केवल एक विशाल पत्थर ही है। अब यह स्पष्ट हो गया है कि पृथ्वी यदि धूमकेतु से टकरा जाये तो उससे पृथ्वी को कोई बड़ा ख़तरा नहीं है – इससे

पृथ्वी पर सिर्फ़ एक नयी विशाल उल्का ही आ गिरेगी और बस।

फिर भी नये भय उत्पन्न हो गये – वह यह कि पृथ्वी धूमकेतु की दुम के बीच से होकर गुज़र सकती है। लोगों ने खगोलविज्ञानियों की कृतियों में पढ़ा ही था कि धूमकेतु की दुम विषैली गैसों – अर्थात् साइनाइड व कोयले की गैस की है। इसका अर्थ तो यह है कि धूमकेतु की दुम पृथ्वी को लपेट लेगी और सभी मनुष्यों, सभी जीवित प्राणियों का दम घोंट डालेगी...

धूमकेतु के केन्द्र से टकराने के बजाय पृथ्वी के धूमकेतु की दुम के बीच से होकर गुज़रने की सम्भावना कहीं अधिक है। इसका कारण यह है कि धूमकेतुओं की दुमों का फैलाव विशाल है – उनकी लम्बाई करोड़ों किलोमीटर तक फैली होती है और उनकी चौड़ाई भी काफ़ी विशाल है।

खगोलविज्ञानियों ने गणना की कि सन् 1910 में पृथ्वी सचमुच ही हैली के धूमकेतु की दुम के बीच से होकर गुज़रेगी।

समाचारपत्रों ने, पृथ्वी के लिए उत्पन्न इस भयानक ख़तरे के विषय में तथा यह कि विश्व का अन्त निकट आ रहा है, हर तरह का कोलाहल मचा डाला।

और जैसा अक्सर होता है, इन समाचारपत्रों ने लोगों को भयभीत कर दिया। तेहरान में बहुत-से लोगों ने गैसों से बचने के लिए गड्ढे खोद डाले (यद्यपि उस समय युद्ध में भी दम घोंटने वाली गैसों का प्रयोग नहीं किया गया था!)। पेरिस के पादरी लोगों से प्रायश्चित करवाने के काम में जुटे थे। वियना में कुछ धनी लोगों ने भयभीत होकर आत्महत्या तक कर डाली।
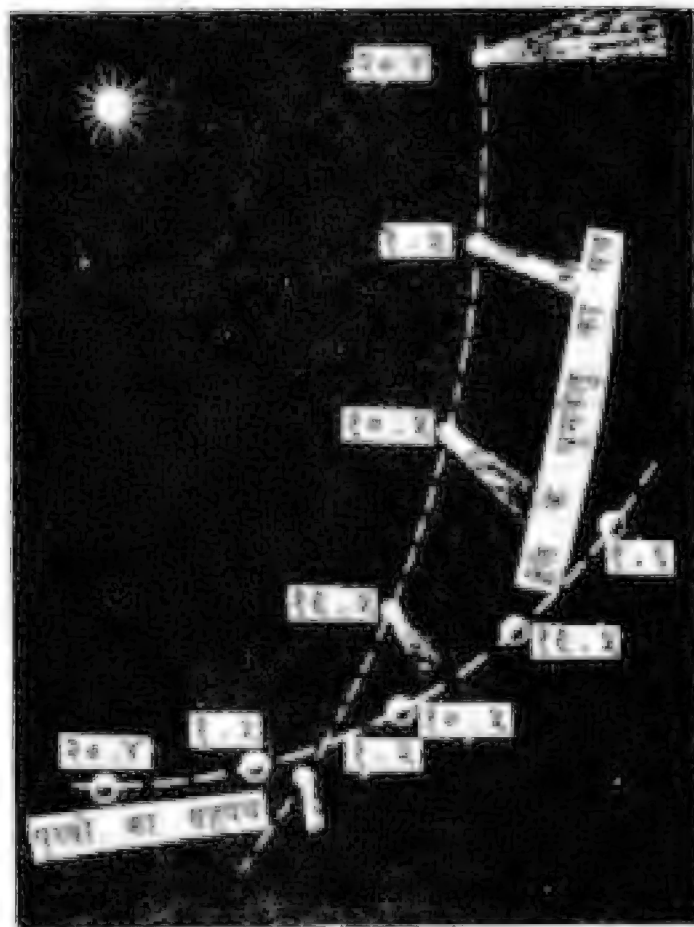
हैले का धूमकेतु पृथ्वी के ग्रहपथ

19 मई सन् 1910 को पृथ्वी हैली के धूमकेतु की दुम के बीच से होकर गुज़री। परन्तु क्या हुआ? रात में सदा की भाँति तारे चमके, सदा की भाँति पक्षियों ने गाना गाया और लोगों ने मज़े-मज़े साँस ली।

सच्चाई यह है कि धूमकेतु की दुम की गैसों की अपेक्षा पृथ्वी की हवा अरबों गुना घनी है। जैसे किसी मच्छर के लिए एक मीटर मोटाई वाले लोहे की दीवार को भेदना सम्भव नहीं है, उसी प्रकार धूमकेतु की गैसों के लिए पृथ्वी की वायु के अभेद्य आवरण को भेदना असम्भव है। जो लोग यह बात जानते थे, वे उस रात्रि में, जब पृथ्वी धूमकेतु की दुम से होकर गुज़र रही थी, सदा की भाँति मीठी नींद के मज़े ले रहे थे।

विज्ञान लोगों के आतंकों तथा अन्धविश्वासों को दूर भगाता है।
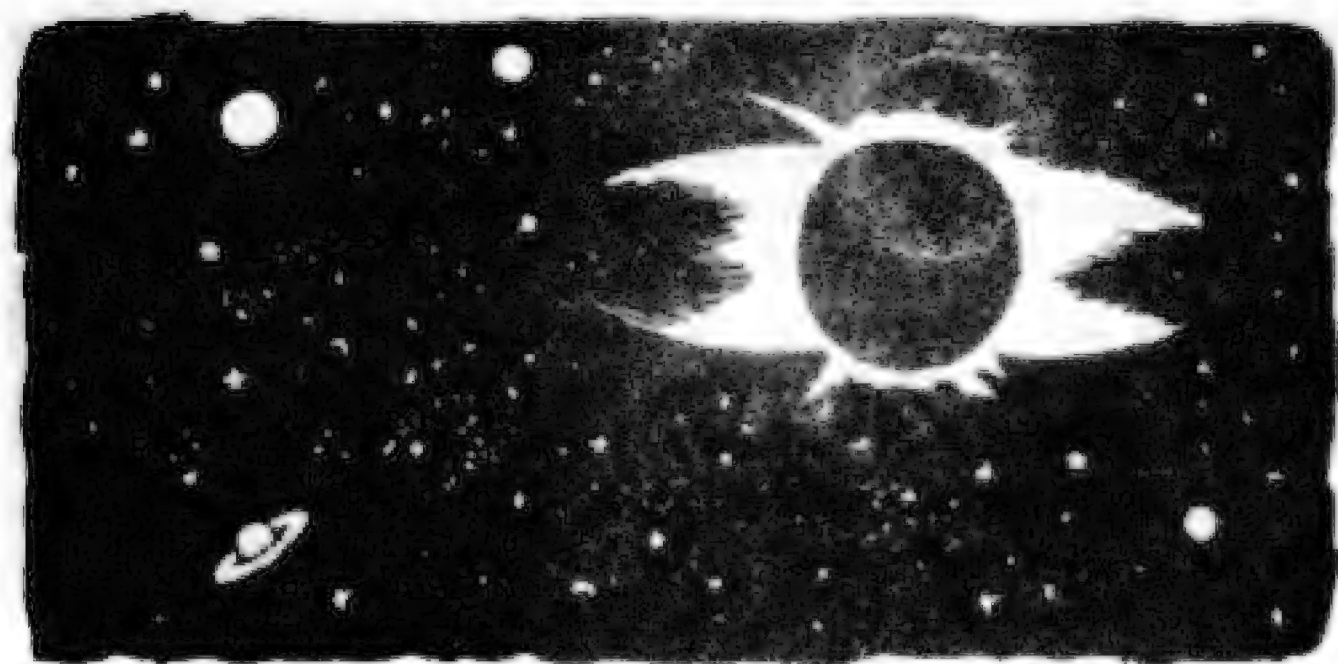
तीसरा भाग

सूर्य

बहुत प्राचीन काल ही में लोग यह समझ गये थे कि सूर्य के बिना पृथ्वी पर जीवन नहीं हो सकता। वे सूर्य को दया सिन्धु समझते थे। यूनानी लोगों ने सूर्य को हीलिअस देवता, रोमनों ने प्रकाशमय फ़ीबस तथा स्लाव लोगों ने यारीला देवता कहा।

उत्तरी गोलार्द्ध में 22 दिसम्बर सबसे छोटा दिन होता है। लोगों के कथनानुसार इस दिन "सूर्य ग्रीष्म-ऋतु की ओर मुड़ता है।" वह मानो आधे वर्ष की मृत्यु के बाद फिर से जन्म लेता है और दिन प्रतिदिन आकाश में और भी ऊँचा चढ़ना आरम्भ कर देता है। सूर्य वसन्त के विषुव के दिन जाड़े की क्रूर शक्तियों पर अन्तिम विजय प्राप्त करता है।

प्राचीन काल में लोग सूर्य भगवान के जन्म का उत्सव सर्दियों में और जाड़े भर की जमी हुई प्रकृति के पुनर्जीवित होने का उत्सव वसन्त-ऋतु में मनाते थे। ये त्योहार हमारे समय तक चले आये हैं – ईसा के जन्म के ईसाई त्योहार और ईस्टर (ईसा का पुनर्जीवन) के रूप में।

सूर्य पृथ्वी की हर चीज़ का जीवन-स्रोत है। सूर्य के प्रकाश और गर्मी के बिना एक भी जीवित प्राणी

– न तो मनुष्य और न आँख से दीख पड़ने वाला सूक्ष्म कीटाणु ही – जिन्दा रह सकता है।

सूर्य की गर्मी पृथ्वी पर सब कार्यों अथवा जैसा कहते हैं – सभी प्रकार की शक्ति (केवल आणविक शक्ति को छोड़कर) का स्रोत है।

हमारे समय तक शक्ति देने वाला हरेक इंजन सूर्य से अपनी शक्ति पाता था। परन्तु सन् 1954 में संसार के प्रथम आणविक बिजलीघर ने कार्य करना आरम्भ किया। यह बिजलीघर उस शक्ति से काम करता है, जो कुछ पदार्थों के अणुओं में छिपी होती है।

रूसी महाकवि अ. से. पुश्किन की लिखी हुई एक कहानी में येलिसेई राजकुमार ने वायु को इन शब्दों में सम्बोधित किया है –

हवा! तू शक्तिशाली है,
तू काली घटाओं को भगाती है,
तू नीले समुद्र को हिलोरती है,
तू हर दिशा में बहती है
किसी से भी नहीं डरती है...

स्वतन्त्र हवा करोड़ों वर्षों से पृथ्वी पर विचर रही है। उसके ऊपर कोई शासक न होते हुए भी वह महान तथा लाभदायक कार्य करती रही है।

लो, पानी की सूक्ष्म बूँदों का विशाल समूह हवा में ऊपर उठा क्योंकि उन्हें सूर्य की गरम किरणों ने वाष्प में बदल दिया। पानी की हल्की भाप ऊपर, और ऊपर उठती जा रही है और लो, वह वायुमण्डल के उस स्तर पर पहुँच गयी, जहाँ सर्वदा ठण्ड रहती है। बिल्कुल ही न दीख पड़ने वाली पारदर्शक भाप घनी होती जा रही है, फिर से पानी की बूँदें बनती जा रही हैं। यदि ये बूँदें पृथ्वी की सतह के समीप होतीं तो हम उन्हें कुहरा कहते। ऊँचाई पर वे बादल तथा घटाएँ बन जाती हैं।

ज़रा कल्पना करो कि किसी विशाल तथा क्रूर शक्ति ने वायु को जकड़ लिया और उसे गतिमान होने से रोक दिया है। सारी पृथ्वी पर आँधी के प्रचण्ड झोंके न रहे, ऋतु-सूची में बहुधा उल्लिखित औसत दर्जे की हवा न रही और यहाँ तक कि मन्द हवा भी न रही।

यदि वास्तव में ऐसा होता तो? उस समय तक बादल ऊपर ही लटके रहते, जब तक कि छोटी-छोटी बूँदें मिलकर बड़ी न बन जातीं और फिर ये बड़ी-बड़ी बूँदें वायु में न रुक पातीं और अपने जन्मस्थान – महासागर में – में बिना किसी लाभ के वापस नीचे गिर पड़तीं। फिर तो इसी प्रकार सदा और हर स्थान पर यही क्रम चलता रहता... प्रकृति में जल-वितरण रुक जाता, बड़ी तथा छोटी नदियों का अन्त हो जाता, हरी घास के मैदान सूख जाते, खेतों में अनाज के पौधे मुरझा जाते, जंगल पीले पड़कर सूख जाते... अर्थात् पूरा स्थल एक विशाल मरुभूमि बन जाता। धूल के घने आवरण से ढँके हुए उसके मैदान चन्द्रमा के उन समुद्रों की भाँति हो गये होते, जिन्हें हम अन्तरग्रहीय रॉकेट में बैठकर की गयी काल्पनिक उड़ान के बाद देख चुके हैं। क्या वायु का एकमात्र लाभ यही है कि उसकी कृपा के कारण बादलों से होने वाली वर्षा प्यासी पृथ्वी को तृप्त करती है और उन छोटी-छोटी नदियों को जन्म देती है जो मिलकर बड़ी नदियाँ बन जाती हैं? नहीं, सिर्फ़ यही नहीं। मौसम भी बहुत कुछ वायु की दिशा पर निर्भर करता

है।

जाड़ा आ गया। सड़क पर शून्य से नीचे चालीस सेण्टीग्रेड की ठण्ड है। रेडियो द्वारा घोषणा की जाती है –

"यूरोपीय रूस के उत्तरी तथा मध्य भाग में ठण्डी आर्कटिक हवाएँ घुस आयी हैं। विशेष ठण्ड होने का यही कारण है। अभी और तीन दिन ऐसी ही ठण्ड रहेगी..."

"ठण्डी आर्कटिक हवाएँ घुस आयी हैं", इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ यह है कि यह ठण्डी हवाएँ उत्तर के बर्फ़ीले मरुस्थलों से हमारे प्रदेश में आयी हैं।

इसके विपरीत भी होता है। सर्दियों के बीच एकाएक ज़ोरों की गर्मी पड़ने लगती है, सड़क पर पानी के नाले बहने लगते हैं, स्केटिंग-रिंग पिघल जाते हैं। दक्षिणी क्षेत्रों की गर्म हवा हमारे लिए अल्पकालीन वसन्त-सा ले आती है।

पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भागों में वायु का परिवर्तन होना! यह तो बहुत महत्त्वपूर्ण बात है। इससे मौसम हल्का हो जाता है, गरम क्षेत्रों में ठण्ड आ जाती है और इसके विपरीत, ठण्डे क्षेत्रों में गरम हवा आ जाने के कारण गर्मी पड़ने लगती है।

वायु को इन महान कार्यों के अतिरिक्त अन्य कई छोटे, पर मनुष्य के लिए महत्त्वपूर्ण काम भी करने पड़ते हैं। लोगों ने वायु को अपने लिए कार्य करने को बाध्य किया है। हवा समुद्र में पालदार जहाज़ों को चलाती है, पवन-चक्की के पहियों को घुमाती है और हवा-मशीनों के पत्तों को चलाती है। वायु के ये कार्य हर वर्ष बढ़ते ही जाते हैं। खुले मैदानों में जहाँ अक्सर ज़ोरों की हवा चलती है, हवाई-मशीनों का बहुत ही लाभदायक प्रयोग होता है : वे एक्युमुलेटरों में विद्युत-शक्ति संचित करती हैं और फिर आवश्यकतानुसार उसका प्रयोग किया जा सकता है।

हाँ, वायु अवश्य ही हमारा उपकार करती है। यह सही कि कभी-कभी तुम उसकी अठखेलियों और मज़ाकों का बुरा मान जाते हो। कभी वह तुम्हारे सिर से हैट अथवा टोपी उतार ले जाती है, खिड़कियों पर धक्का देकर उसका शीशा तोड़ डालती है इत्यादि, इत्यादि। पर ख़ैर ये तो बहुत मामूली बातें हैं। कभी-कभी इनसे कहीं अधिक ख़राब बातें भी हो जाती हैं – आँधियाँ घरों की छतें उखाड़ फेंकती हैं, पेड़ों को जड़ों से उखाड़ डालती हैं, रेल के डिब्बों को पटरियों पर से उतार देती हैं, समुद्र में जहाज़ों को डुबो देती हैं... परन्तु हवा हमें विपत्तियों से कहीं अधिक लाभ पहुँचाती हैं।

हम बतला ही चुके हैं कि वायु के बिना नदियाँ न होतीं, और बहती हुई नदियों के पानी में विशाल शक्ति होती है। पहले लोग इस विशाल शक्ति का केवल एक सूक्ष्म अंश ही प्रयोग में लाते थे। वे छोटी नदियों के किनारे पन-चक्कियाँ स्थापित करते थे तथा लकड़ियों के बेड़े बहाते थे। परन्तु हमारे समय में लोगों ने नदियों को असली कार्य करने के लिए बाध्य किया है।

शक्तिशाली नदियों पर बाँध बनाये जाते हैं, पानी ऊँचाई से चक्रों के पत्तों पर गिरता है और फिर घूमते चक्र विद्युत-शक्ति उत्पन्न करते हैं। यह शक्ति तारों द्वारा देश के कोने-कोने में दौड़ती है और ऐसे कार्य सम्पन्न करती है जिन्हें कुछ समय पहले तक केवल अजूबा समझा जाता था।

विद्युत-शक्ति, विद्युत मशीनों को चलाती है, नगरों तथा सड़कों में उजाला करती है और इसके जो

लोग बहुत समय पहले से ही अभ्यस्त हो चुके हैं। परन्तु पचास वर्ष पहले भला यह कौन सोच सकता था कि विद्युत पृथ्वी पर हल चला सकेगी और जंगलों में वृक्षों को जड़ से उखाड़ और आरे से चीर सकेगी, पशुओं के लिए घास काट सकेगी और यहाँ तक कि गायों को दुह सकेगी?

इस सारी शक्ति के लिए हम सूर्य के आभारी हैं।

तुम भोजन करते समय तरकारियाँ, रोटी, मक्खन तथा मीठे-मीठे फल खाते हो।

सूर्य की किरणों ने ही कार्बोनिक एसिड, नाइट्रोजन तथा पानी से उन पौष्टिक पदार्थों के निर्माण में पौधों की सहायता की है, जिन्हें तुम गोभी, आलू, रोटी, सेब तथा तरबूज में पाते हो।

बिना वनस्पतियों के पृथ्वी पर जानवर तथा मनुष्य न होते, और ये वनस्पतियाँ सूर्य के प्रकाश तथा गर्मी के बिना जीवित न रह सकतीं।

वनस्पतियों ही से तो हमें काठ, दलदल का कोयला तथा पत्थर का कोयला मिलता है। जब हम इन ईंधनों को जलाते हैं। तो उनमें से सूर्य की ही शक्ति निकलती है, जिसे वनस्पतियों ने संचित करके हज़ारों व करोड़ों वर्षों तक सुरक्षित रखा है।

यदि सूर्य एकाएक ठण्डा हो जाता तो लोग कई वर्षों या कई दशकों तक वनस्पतियों में संचित सूर्य-शक्ति के आधार पर ज़िन्दा रह सकते थे। परन्तु उसके पश्चात पृथ्वी पर जीवन समाप्त हो जाता।

परन्तु सूर्य तो अरबों खरबों वर्षों से क़ायम है और आगे भी अरबों खरबों वर्ष तक इसी तरह क़ायम रहेगा। शक्ति को उत्पन्न करने के लिए सूर्य सौर जगत में सबसे शक्तिवान और दीर्घकालीन मशीन है।

सूर्य से जो गर्मी निकलती है, पृथ्वी उसका केवल दो खरबवाँ भाग ही प्राप्त करती है। परन्तु यह बहुत काफ़ी है। पृथ्वी जो गर्मी एक वर्ष में प्राप्त करती है, वह 67 मीटर मोटाई वाली बरफ़ की परत को यदि इस पर सूर्य की किरणें सीधी पड़तीं तो पिघलाने के लिए काफ़ी होती।

और यह अच्छा ही है कि हम सूर्य की गर्मी का इतना छोटा-सा भाग प्राप्त कर पाते हैं। यदि यह सारी गर्मी एकाएक हमारी ओर मुड़ जाती तो पृथ्वी, जल्दी-जल्दी वाष्प में बदल गयी होती।

वैज्ञानिक टेलीस्कोप द्वारा ही सूर्य की सतह का निरीक्षण करते हैं। परन्तु जिस सूर्य को खाली आँखों से देखना असम्भव है क्या उसे टेलीस्कोप में देखा जा सकता है?

खगोलविज्ञानियों ने इस बाधा को बड़ी आसानी से दूर किया। वे टेलीस्कोप के ऊपर काले शीशे का गोल टुकड़ा रखते हैं। यह काला शीशा सूर्य की किरणों के अधिकांश को रोक लेता है और फिर बिना किसी कष्ट के सूर्य को देखा जा सकता है।

यदि सूर्य को 100 गुना बड़ा चित्र देने वाले टेलीस्कोप से देखा जाये, तो वह वैसा ही दिखायी देगा जैसा खाली आँखों को 15 लाख किलोमीटर की दूरी से नज़र आता है।

यहाँ पर टेलीस्कोप की त्रुटियों का वर्णन करना आवश्यक है। टेलीस्कोप सूर्य की पूर्ण सतह को एकदम ग्रहण नहीं कर सकता, और हमारे दृक्पथ में उसका केवल एक तुच्छ भाग ही दिखायी पड़ता है। थियेटर में बाइनोकुलर लेकर जाने पर तुम्हें इसका अनुभव हुआ होगा। जब तुम रंगमंच को खाली आँखों से देखते हो तो वह तुम्हें पूर्णत: दिखायी पड़ता है। तुम किसी कलाकार के मुख का भाव भलीभाँति देखने के लिए बाइनोकुलर को आँखों के सामने लाते हो... परन्तु क्या होता है? तुम अवश्य ही उसे भलीभाँति
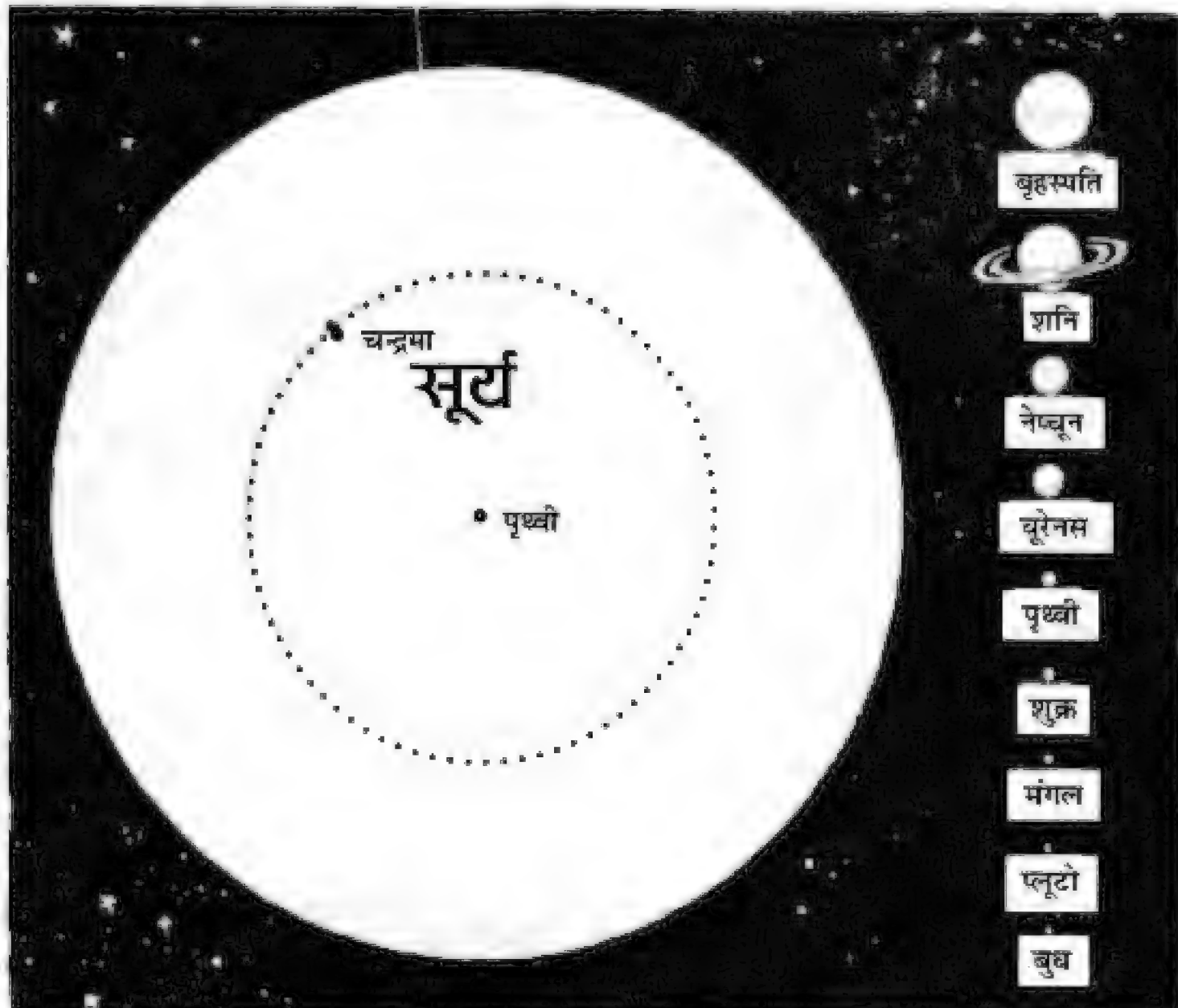
यदि सूर्य एक खाली गोला होता और पृथ्वी उसके केन्द्र में होती तो चन्द्रमा का ग्रहपथ सूर्य के भीतर पूर्णतया समा जाता।

देख पाते हो, परन्तु वह केवल अकेला ही तुम्हारे दृक्‌पथ में आता है। लेकिन, यदि तुम अन्य कलाकारों को देखना चाहते हो, तो तुम्हें बाइनोकुलर को उनकी ओर घुमाने की ज़रूरत होगी।

दृक-सम्बन्धी सभी यन्त्रों की यह त्रुटि है। इसे दूर करना असम्भव है और उसे सहन करने के सिवा कोई चारा नहीं।

सूर्य एक विशाल प्रकाशग्रह है। यदि पृथ्वी के वर्णन के लिए मटर का एक छोटा दाना लिया जाये, तो सूर्य के माडल के लिए एक बड़ा तरबूज़ लेना आवश्यक होगा।

सूर्य का व्यास पृथ्वी के व्यास की अपेक्षा 109 गुना अधिक है। पृथ्वी का व्यास 12 हज़ार किलोमीटर से कुछ ही अधिक है और सूर्य का व्यास लगभग 14 लाख किलोमीटर है।

कल्पना करो कि सूर्य भीतर से खोखला है और उसके केन्द्र में पृथ्वी रखी हुई है। तब सूर्य के ख़ाली गोले में चन्द्रमा के लिए काफ़ी स्थान होगा ही, और वह पृथ्वी के चारों ओर अपनी सदा की – 384 हज़ार किलोमीटर की दूरी पर घूमेगा, और फिर भी चन्द्रमा से सूर्य सतह तक 300 हज़ार किलोमीटर से अधिक दूरी बच जायेगी।

सूर्य का घनफल पृथ्वी से 13 लाख गुना अधिक है, अर्थात् सूर्य से पृथ्वी के आकार के तेरह लाख गोले बनाना सम्भव है। परन्तु भार में सूर्य पृथ्वी से केवल 330 हज़ार गुना ही अधिक है। ऐसा इसलिए कि सूर्य का घनत्व पृथ्वी के घनत्व का एक चौथाई है। इसे समझा जा सकता है, क्योंकि सूर्य एक परितप्त पिण्ड है और उस पर सभी पदार्थ केवल वाष्पों और गैसों के रूप में ही उपस्थित रह सकते हैं।

सूर्य का तापमान बहुत ऊँचा है। सूर्य की सतह का तापमान 6,000 सेण्टीग्रेड है। पृथ्वी पर सबसे अधिक कठिनाई से गलने वाले पदार्थ भी 3,000-4,000 सेण्टीग्रेड के तापमान में गल जाते हैं। टंगस्टन धातु, जिसका प्रयोग बिजली बत्तियों के तारों में होता है, 3,400 सेण्टीग्रेड के तापमान में गल जाती है। सूर्य की सतह पर सबसे अधिक कठिनाई से गलने वाले पदार्थ भी वाष्प में परिणत हो जायेंगे।

सूर्य की सतह तो बहुत गर्म है ही, किन्तु उसके अन्दर तो बहुत गुना अधिक गर्मी है। खगोलविज्ञानियों की गणनानुसार, सूर्य के भीतर का तापमान बहुत ही भीषण है – 2 करोड़ डिग्री! ऐसे तापमान में पदार्थ किस दशा में रहते हैं, इसका तो केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है।

कल्पना करो कि सूर्य के 2 करोड़ डिग्री तक तपे हुए तत्त्व का केवल एक कण ही पृथ्वी पर आ पहुँचता है। जानते हो फिर क्या होगा? असह्य दीप्ति से चमक उठता हुआ वह कण अपने चारों ओर सैकड़ों किलोमीटर की दूरी तक की सभी वस्तुओं को भस्म कर डालेगा।

सूर्य के धब्बे

प्राचीन काल में लोगों का विचार था कि प्रकृति में सबसे निष्कलंक प्रकाशग्रह सूर्य ही है।

"सूर्य में कोई भी त्रुटि नहीं है!" वैज्ञानिक ऐसा कहते थे।

परन्तु, एकाएक... कैसी निराशा हुई! गैलीलिओ ने दूरबीन को (उसके शीशे को धुएँ से काला करके) सूर्य की ओर किया और सूर्य पर उसने काले धब्बे देखे। ख़ाली आँखों से ये धब्बे देखना सम्भव नहीं है। जब उसने अपनी इस खोज की घोषणा की, तो आरम्भ में तो लोगों ने उसका विश्वास नहीं किया।

कहा जाता है कि गैलीलिओ प्राचीनता के उपासक एक वैज्ञानिक के पास गया। गैलीलिओ ने उससे सूर्य के धब्बों की चर्चा की।

वैज्ञानिक ने अपना सिर हिलाया और फिर जैसे शिक्षा देते हुए उत्तर दिया –

"मेरे भाई, मैंने प्राचीन किताबों को बहुत बार पढ़ा है। मैं तुम्हें विश्वास दिला सकता हूँ कि उन किताबों में तुम्हारे कथन से मिलती-जुलती कोई भी बात नहीं कही गयी है। शान्त हो जाओ और यह समझ लो कि जिन धब्बों की तुम चर्चा करते हो, वे सूर्य पर नहीं, तुम्हारी आँखों में ही हैं।"

परन्तु बाद में सभी को सहमत होना पड़ा कि सूर्य पर धब्बे हैं। उस समय से जब किसी असामान्य मनुष्य की त्रुटियों को क्षमा करना होता है, तो यह कहा जाता है –

"सूर्य पर भी धब्बे हैं!"

सूर्य के ये धब्बे क्या हैं? कुछ खगोलविज्ञानियों का अनुमान है कि ये धब्बे गैसों के विशाल बवण्डर हैं जो सूर्य की सतह पर उत्पन्न होते हैं; परन्तु अब तक भी यह ठीक-ठीक नहीं मालूम हुआ है कि उनकी उत्पत्ति के कारण क्या हैं।

धब्बे अपने चारों ओर से घिरे हुए क्षेत्र की अपेक्षा कम तप्त हैं, अतएव वे काले दीख पड़ते हैं। परन्तु तुम यह मत सोचना कि इन धब्बों के बीच चारों ओर की गर्मी से बचा जा सकता है। लोग यह निश्चित करने में सफल हो सके कि धब्बों का तापमान 4,800 सेण्टीग्रेड है। चारों ओर के क्षेत्र की अपेक्षा यह केवल 1,200 सेण्टीग्रेड ही कम है। ये धब्बे इस अन्तर के ही कारण काले दीख पड़ते हैं।

किसी अँधेरे कमरे में दियासलाई जलाओ – वह तुम्हें अपने प्रकाश से चकाचौंध कर देगी। फिर किसी तेज़ प्रकाश वाली बिजली-बत्ती के सामने यह जलती हुई दियासलाई रखो। अब तुम्हें इसकी लौ काली मालूम पड़ेगी। सूर्य के धब्बों के साथ भी यही बात है।

इन धब्बों का आकार विशाल है। ये लाखों किलोमीटर की लम्बाई और चौड़ाई के धब्बे हैं। यदि पृथ्वी की माप का कोई ठोस गोला ऐसे धब्बे में गिर पड़ता, तो उसमें वह ऐसे ही लुप्त हो जाता, जैसे आग की लपटों में फेंकी हुई बोतल की एक डाट।

कुछ धब्बे प्रकट होने के थोड़े ही समय बाद गायब हो जाते हैं। परन्तु दूसरे धब्बे तो कई सप्ताहों अथवा महीनों तक भी बने रहते हैं।
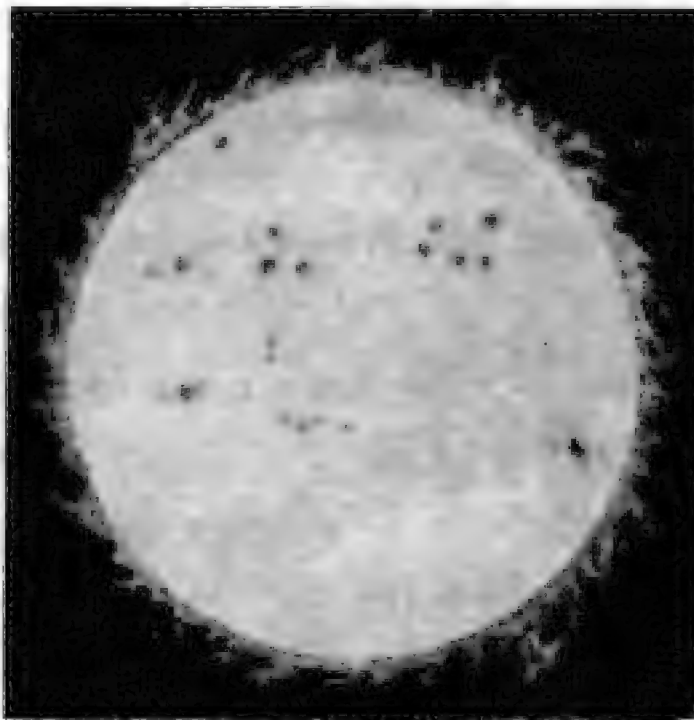
सूर्य पर के धब्बे और उभार

लम्बी अवधि वाले इन धब्बों का निरीक्षण करके खगोलविज्ञानियों ने बहुत ही दिलचस्प बातों की खोज की है। पता लगा है कि सूर्य – जैसा कि गियोर्दानो ब्रूनो ने अनुमान लगाया – अपनी धुरी पर घूमता है। इसका अर्थ यह है कि सूर्य के भी ध्रुव, तथा मध्य-रेखा भी हैं। परन्तु यह सोचना ठीक न होगा कि सूर्य के ध्रुवों पर उसकी मध्य-रेखा के क्षेत्र से अधिक ठण्ड है।

सूर्य अपनी धुरी पर पृथ्वी की भाँति नहीं घूमता। उसका निर्माण गैसों से हुआ है और उसके भिन्न-भिन्न भाग अलग-अलग गति से घूमते हैं। मध्य-रेखा पर घूमने की गति तेज़ है, परन्तु ध्रुवों पर वह धीमी हो जाती है। मध्य-रेखा का क्षेत्र सूर्य की धुरी के इर्द-गिर्द पृथ्वी के 25 रात-दिन की अवधि में एक पूरा चक्कर लगाता है, और ध्रुवों के समीप

यही एक चक्कर काटने का समय बढ़कर 30 रात-दिन के बराबर हो जाता है।

काफ़ी समय तक सूर्य के इन धब्बों का निरीक्षण करते हुए खगोलविज्ञानियों ने देखा कि उनकी संख्या घटती-बढ़ती रहती है। मालूम पड़ा कि सूर्य के इन धब्बों का एक नियमित अवधिक्रम होता है और हर अवधि 11 वर्षों की होती है।

तुमने अवश्य ही उत्तरी प्रकाश के विषय में सुना होगा, और यदि तुम उत्तर में गये होते तो तुमने अपनी आँखों से यह प्रकाश देखा भी होता। वैज्ञानिक उत्तरी – या ध्रुवीय – प्रकाश के कारण का काफ़ी समय तक पता न लगा सके।

लोमोनोसोव ने लिखा है – "बहुत सम्भव है कि उत्तरी प्रकाश की उत्पत्ति का कारण वायु में से गुज़रती हुई विद्युत-शक्ति हो।"

आर्कटिक स्टेशनों से निरीक्षकों को ध्रुव प्रकाश ऐसा दिखायी देता है।

केवल हमारे समय में ही वैज्ञानिक इस अनुमान को सही सिद्ध कर पाये। यह ज्ञात हुआ कि उत्तरी प्रकाश सबसे उज्ज्वल और अधिक संख्या में उन वर्षों में होता है, जिन वर्षों में सूर्य पर सबसे अधिक धब्बे निकलते हैं। सूर्य के धब्बे कणों की बहुत अधिक धाराएँ अन्तरिक्ष में फेंकते हैं। इन कणों में से कुछ उड़कर पृथ्वी तक पहुँच जाते हैं, वायुमण्डल के ऊपरी स्तरों में वायु के कणों से टकराते हैं और इससे वायु चमकने लगती है।

सूर्य के धब्बों के द्वारा फेंकी गयी शक्तिशाली विद्युत-धाराओं के कारण पृथ्वी पर चुम्बकीय आँधियाँ (मैगनेटिक स्टार्म) उत्पन्न हो जाती हैं।

चुम्बकीय आँधी साधारण आँधी से बिल्कुल भिन्न होती है। आकाश बिना बादलों का हो सकता है, वायु बिल्कुल शान्त हो सकती है, पक्षियों का गान भी सुनायी दे सकता है... लेकिन कुतुबनुमा की सुई चारों ओर हिलती दिखायी देती है और किसी प्रकार भी अपने ठीक स्थान पर ऐसे नहीं रुक पाती कि उसका एक छोर उत्तर और दूसरा दक्षिण दिशा की ओर संकेत करे। यदि तुम कभी बादल-छटा के दिन

जंगल में जाते हो और इस ख़्याल से कि जंगल में कहीं मार्ग न भूल जाओ साथ में कुतुबनुमा ले जाते हो तो भी चुम्बकीय आँधी तुम्हें कुछ झंझट में डाल सकती है।

तेज़ चुम्बकीय आँधियों के समय सारी पृथ्वी का शार्ट वेव रेडियो कार्य करना बन्द कर देता है। यह कोई छोटा नहीं, बल्कि बहुत बड़ा कष्ट है। प्रथम गतिशील स्टेशन 'उत्तरी ध्रुव –1' का मातृभूमि से सम्बन्ध केवल शार्ट वेव रेडियो द्वारा ही किया जाता था। परन्तु रेडियो का यह सम्बन्ध दो-तीन दिनों तक टूट गया। इसके लिए ज़िम्मेदार थे सूर्य के धब्बों के बड़े समूह। उन दिनों वे सूर्य के उस भाग पर से होकर गुजर रहे थे, जो पृथ्वी की ओर था।

ऐसा भी देखा गया है कि सूर्य के धब्बे हमारी पृथ्वी के मौसम पर भी प्रभाव डालते हैं। जिस समय सूर्य पर अधिक धब्बे होते हैं, उस समय पृथ्वी पर अधिक बिजलियों वाली आँधियाँ आती हैं। ऐसा भी अनुमान लगाया जाता है कि बरसाती वर्षों और सूखे वर्षों के अदल-बदल का सम्बन्ध सूर्य के इन धब्बों की नियमितता से भी है। परन्तु यह प्रश्न बड़ा ही जटिल है और अभी तक इसका अध्ययन कम ही हुआ है।

सूर्य–ग्रहण

पुराने समय में सूर्य-ग्रहण लोगों को चन्द्र-ग्रहणों की अपेक्षा अधिक भयभीत करते थे – लोग समझते थे कि यदि सूर्य सदा के लिए आकाश से लुप्त हो जायेगा, तो वे नष्ट हो जायेंगे।

पृथ्वी पर जो कुछ भी है, सूर्य ही उस सबका जीवनदाता तथा बड़ा ही दयावान देवता समझा जाता था। और एकाएक बिल्कुल साफ़, बादलरहित निर्मल दिन में सूर्य को काली, अमंगल छाया घेर लेती है। वह फैलती जाती है... लो, उसने सूर्य को आधा तो ढँक ही लिया। लो, अब सूर्य चन्द्रमा की भाँति एक पतले हँसिये जैसा रह गया... और लुप्त हो गया।

लोग बड़े आतंकित हैं। वे सोचते हैं कि पृथ्वी का अन्त समय आ गया, संसार नष्ट हो जाने वाला है। जीवन प्रदान करने वाला सूर्य ठण्डा हो गया। अवश्य ही कोई विरोधी शक्ति उसे निगल गयी है...

और अब लोग अकथनीय प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं – कुछ मिनटों के अँधेरे के बाद सूर्य का चमकता हुआ किनारा दीख पड़ रहा है। आधा घण्टा और बीता – और सूर्य फिर से आकाश में अपनी पूरी शान के साथ चमकने लगा है।

सूर्य-ग्रहणों के समय तो जानवरों के संसार में भी बेचैनी तथा अशान्ति छा जाती है। गायें रँभाने, भेड़ें मिमियाने और कुत्ते रोने लगते हैं... रात की चिड़ियाँ अपने शिकारों की तलाश में उड़ने लगती हैं और दिन के पक्षी सोने के लिए अपने घोंसलों की ओर चल पड़ते हैं।

चन्द्र-ग्रहणों की भाँति सूर्य-ग्रहण भी पूर्ण और आंशिक होते हैं। यहाँ पर पूर्ण ग्रहण का वर्णन किया गया है। आंशिक ग्रहण का लोगों पर इतना अधिक प्रभाव नहीं होता – उससे तो केवल सूर्य के प्रकाश की कुछ तेज़ी ही कम होती है।

पूर्ण सूर्य ग्रहण

'चन्द्र-ग्रहण' के अध्याय में बताया जा चुका है कि खगोलविज्ञानी प्राचीन काल ही में ग्रहणों के बारे में भविष्यवाणी करना जान गये थे। परन्तु हर बार वे इसमें सफल न होते थे। लगभग चार हज़ार वर्ष पहले चीन में एक मनोरंजक घटना घटी। सूर्य-ग्रहण हुआ, परन्तु राज-खगोलविज्ञानियों ने जिनके नाम थे 'ही' और 'हो', अपनी जनता और सम्राट को इसके बारे में पहले से आगाह न किया।

चीन के प्राचीन इतिहास में इसका ऐसा वर्णन है – "खगोलविज्ञानी 'ही' और 'हो' सभी सद्गुण भूल गये थे। वे बड़े पियक्कड़ हो गये थे। उन्होंने अपने पद की उपेक्षा की थी तथा वे अपनी उच्च पदवी के योग्य नहीं रहे थे। वे पहले खगोलविज्ञानी थे जो आकाशीय प्रकाशग्रहों की वार्षिक गणना करना भूल गये थे। शरद के अन्तिम मास के प्रथम ही दिन सूर्य और चन्द्रमा बिल्कुल अप्रत्याशित रूप से मिले। अन्धों को नगाड़ों द्वारा इसकी सूचना मिली, किफ़ायती लोग बिल्कुल घबड़ा उठे, साधारण लोग भाग खड़े हुए। परन्तु 'ही' और 'हो' को अपनी जानें देनी पड़ीं – सम्राट की आज्ञा के अनुसार उनके सिर उड़ा दिये गये।

सूर्य तथा चन्द्र-ग्रहणों में बड़ी भिन्नता है। चन्द्र-ग्रहण को, पृथ्वी के हर कोने से, जहाँ उस समय चन्द्रमा दिखायी पड़ता है, देखा जा सकता है क्योंकि चन्द्रमा पृथ्वी की छाया में छिप जाता है। परन्तु
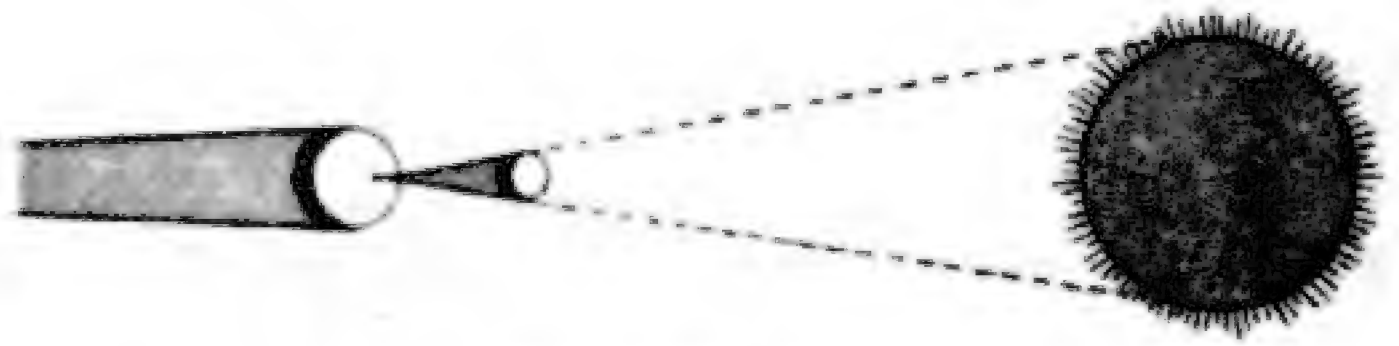
सूर्य-ग्रहण क्यों होते हैं।

सूर्य-ग्रहण इसलिए होता है कि चन्द्रमा पृथ्वी और सूर्य के बीच आ जाता है और इससे चन्द्रमा की छाया पृथ्वी पर पड़ती है। चूँकि सूर्य, चन्द्रमा तथा पृथ्वी अन्तरिक्ष में चलते हैं, अतएव चन्द्रमा की यह छाया पृथ्वी की सतह पर बड़ी तेज़ी से दौड़ती है। फिर तो केवल उन्हीं स्थानों पर सूर्य-ग्रहण दिखायी देता है जहाँ चन्द्रमा की छाया की पट्टी पड़ती है।

तुम पूछोगे कि सूर्य से करोड़ों गुना छोटा चन्द्रमा भला उसे कैसे ढँक सकता है? इसका कारण पृथ्वी से चन्द्रमा और सूर्य तक की दूरी है। एक पैसे का सिक्का आँख के बहुत समीप लाकर सूर्य को तो ढँका जा सकता है।

सूर्य का व्यास चन्द्रमा के व्यास से 400 गुना बड़ा है, परन्तु चन्द्रमा हमसे सूर्य की अपेक्षा 400 गुना अधिक समीप है। इसीलिये सूर्य और चन्द्रमा हमें लगभग एक ही आकार के मालूम पड़ते हैं – कभी सूर्य चन्द्रमा से थोड़ा बड़ा और कभी चन्द्रमा सूर्य से थोड़ा बड़ा।

जब पृथ्वी, चन्द्रमा और सूर्य के केन्द्र एक सीधी रेखा में आ जाते हैं तो पूर्ण ग्रहण होता है बशर्ते कि चन्द्रमा इस समय सूर्य से बड़ा मालूम पड़ता हो। परन्तु यदि चन्द्रमा छोटा मालूम देता है तो बहुत ही मनोरंजक तथा असामान्य घटना घटती है – तब छल्ले की शक्ल का सूर्य-ग्रहण होता है। ऐसे ग्रहण के समय चन्द्रमा सूर्य के मध्य को तो ढँक लेता है और किनारे-किनारे उज्ज्वल अँगूठी की भाँति चमकता हुआ एक घेरा रह जाता है।

यदि चन्द्रमा सूर्य और पृथ्वी के केन्द्र की सीधी रेखा से थोड़ा हटकर जाता है, तो अपूर्ण ग्रहण या – जैसा कि कहा जाता है – खण्ड-ग्रहण होता है।

खगोलविज्ञानी किसी नगर में रहते हुए तथा उस समय की प्रतीक्षा करते हुए जबकि वहाँ सूर्य-ग्रहण होगा, बहुत वर्षों तक प्रतीक्षा कर सकते हैं। एक ही स्थान में पूर्ण-सूर्य ग्रहण विशेषकर बहुत ही कम होते हैं।

पूर्ण सूर्य-ग्रहण के समय अत्यन्त कुतूहलजनक बात देखी जा सकती है, जिसे आम समय में देखना असम्भव है।

सूर्य का मुकुट

प्राचीन काल में सूर्य ग्रहों का राजा कहलाता था। राजा लोग तो मुकुट पहनते हैं। सूर्य के पास भी अपना मुकुट है।

यह बात कि सूर्य का भी मुकुट है, खगोलविज्ञानियों ने पूर्ण सूर्य-ग्रहणों के समय जानी।

उस चमक को सूर्य का मुकुट कहा जाता है, जो सूर्य के चारों ओर कई लाख किलोमीटर की ऊँचाई तक फैली रहती है।

सूर्य के मुकुट का एक अंश

इस मुकुट की झलक फीकी होती है; पूर्ण चन्द्र की चमक से मुकुट की चमक दो गुना कम होती है। स्पष्ट है कि सूर्य का प्रकाश, जो लाखों गुना अधिक उज्ज्वल है, मुकुट के हल्के प्रकाश को ढँक लेता है। केवल उसी समय, जब कि सूर्य का पूरा मण्डल चन्द्रमा द्वारा ढँक दिया जाता है, काले आकाश में मुकुट प्रकट होता है।

मुकुट सूर्य के वायुमण्डल का ऊपरी स्तर है।

फ़ोटो-चित्र का आविष्कार होने तक, वैज्ञानिक ग्रहणों के समय मुकुट के चित्र हाथ ही से खींचते थे, परन्तु अब तो उसके फ़ोटो-चित्र ले लिए जाते हैं। ऐसा करना कहीं अधिक सुविधापूर्ण है। पूर्ण सूर्य-ग्रहण 2-8 मिनट तक जारी रहता है, अतएव इतने समय में तुम बड़ी कठिनाई से हाथ से तो एक ही चित्र बनाने में सफल हो सकोगे, परन्तु फ़ोटो-चित्र तो दर्ज़नों और यहाँ तक कि सैकड़ों भी खींचे जा सकते हैं।

ग्रहणों के समय वैज्ञानिकों ने सूर्य-मुकुट के अतिरिक्त सूर्य के गोले के किनारे पर आगे को निकले हुए कुछ भाग भी देखे। उभरे हुए ये कुछ भाग तो बादलों की भाँति थे और दूसरे फ़ौव्वारों की भाँति। इन निकले हुए भागों को

सूर्य-उभार का नाम दिया गया।

यह ज्ञात हुआ कि इन सूर्य-उभारों में से कुछ तो सचमुच अग्नि के बादल हैं, जो सूर्य के वायुमण्डल में तैरते रहते हैं। वे बहुत बड़े होते हैं और कई घण्टों और यहाँ तक कि कई दिनों तक भी बने रहते हैं।

परन्तु अन्य सूर्य-उभार उस तपे हुए पदार्थ की महाविशाल जिह्वाएँ और उसके फ़ौव्वारे हैं, जिन्हें सूर्य अपने से लाखों किलोमीटर की ऊँचाई तक फेंकता है। सन् 1938 में खगोलविज्ञानियों ने 15 लाख किलोमीटर की ऊँचाई का सूर्य-उभार देखा था।

जब से टेलीस्कोप का आविष्कार हुआ है, लोगों को सूर्य के विषय में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त हुई है।

पहले सूर्य को एक उज्ज्वल और चमकता हुआ गोला समझा जाता था। इसे तप्त होकर सफ़ेद हो जाने वाले लोहे के एक महाविशाल गोले की तरह माना जाता था। परन्तु बहुत ऊँचे तापमान पर कोई भी वस्तु ठोस नहीं रह सकती। सूर्य गैसों के रूप में है, परन्तु गैस हज़ारों तथा लाखों डिग्री तापमान पर शान्त नहीं रह सकती। वह निरन्तर गतिमान रहती है और उसकी गति की शक्ति पृथ्वी की सतह पर चलती हुई वायु की शक्ति से कहीं अधिक अपरिमेय है।

सूर्य अरबों वर्षों से आकाश में मौजूद है और इस सारी अवधि में वह एक सेकण्ड के लिए भी शान्त नहीं हुआ है। सूर्य पर निरन्तर भयानक शक्ति वाली आँधियाँ चलती हैं, जिनकी तुलना में पृथ्वी के सबसे प्रचण्ड तूफ़ान भी एक शिशु के साँस लेने की भाँति हैं।

वहाँ पर महाविशाल धब्बे उत्पन्न हो जाते हैं, जो अन्तरिक्ष में विद्युत-शक्ति की शक्तिशाली धाराएँ फेंकते हैं; वहाँ भीषण विस्फ़ोटों का गर्जन होता रहता है और तप्त हुई गैसों के अरबों टन 400 किलोमीटर प्रति सेकण्ड की रफ़्तार से ऊपर उठते रहते हैं। 10 मिनट में अग्नि का फ़व्वारा हमारी पृथ्वी से चन्द्रमा की ऊँचाई तक पहुँच जाता है। यदि चन्द्रमा इस सूर्य-उभार के मार्ग में आ जाये, तो कुछ ही सेकण्डों में उसकी अग्नि की लपटें चन्द्रमा को अपने आवरण में लपेट लेंगी।
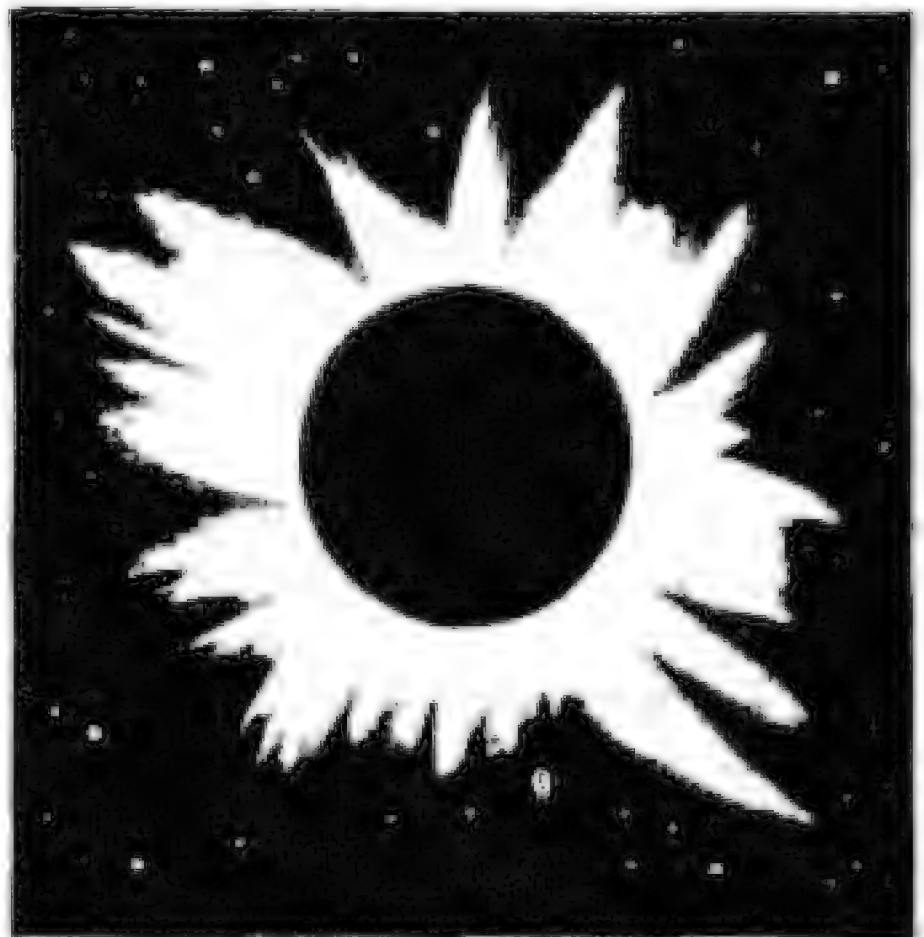
ग्रहण के समय निरीक्षण को सूर्य का मुकुट ऐसा दिखायी देगा।

वैज्ञानिक सूर्य-उभारों का निरीक्षण केवल सूर्य-ग्रहणों के समय ही नहीं, किसी भी समय कर सकते हैं। इसके लिए विशेष टेलीस्कोपों का निर्माण किया गया। सूर्य का निरीक्षण करने वाले विशेषज्ञ लगातार सूर्य-उभारों का निरीक्षण करते हैं, उनकी संख्या लिखते रहते हैं, विशेष यन्त्रों द्वारा उनके फ़ोटो-चित्र लेते हैं और यहाँ तक कि चलचित्र भी लेते हैं।

हर एक चित्र काफ़ी बड़ा एक्सपोज़र देकर लिया जाता है, उदाहरणार्थ एक घण्टे के समय में। फिर फ़िल्म को साधारण गति से चलाकर यह देखना सम्भव है कि सूर्य-उभार का 'जीवन' क्या है।

खगोलविज्ञानियों ने पाया कि जिन वर्षों में सूर्य पर अधिक धब्बे होते हैं, उन्हीं दिनों अधिक सूर्य-उभार भी होते हैं। ये सूर्य-उभार उन धब्बों के समीप ही होते हैं। सूर्य पर अधिक शान्तिपूर्ण वर्षों और बहुत बड़े तूफ़ानी वर्षों – जबकि सूर्य-पदार्थ के विस्फ़ोट विशेष शक्ति के हो जाते हैं – का अदल-बदल होता है। तूफ़ानी तथा शान्तिपूर्ण वर्ष मिलकर ग्यारह वर्षों की अवधि का एक चक्र बनाते हैं।

214 पृष्ठ वाले चित्र को देखो। उसमें तुम्हें सूर्य-उभारों द्वारा घिरे हुए सूर्य का दृश्य मिलेगा उनका तापमान लगभग 5,000 सेण्टीग्रेड है, वे सूर्य के मण्डल की अपेक्षा काले हैं और इसीलिये हम उन्हें साधारण समय में नहीं देख पाते हैं। यदि हम उन्हें देख पाते, तो सूर्य हमें एक झबरा गोला मालूम पड़ता और उसके आवरण के विशाल उभार हमारी आँखों के सामने ही अपनी बाह्य रेखाएँ बदलते रहते।

खगोलविज्ञानियों के अनुसन्धानों द्वारा मालूम हुआ कि पिछले अरब वर्षों में सूर्य का तापमान नीचा नहीं हुआ, वह बराबर उतना ही ऊँचा रहा है। हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि अभी अरबों-खरबों वर्षों तक सूर्य ठण्डा नहीं होगा।

तारे हमसे कितनी दूरी पर हैं?

आओ, हम अपना सूर्य-नगर छोड़कर अब कल्पना में ब्रह्माण्ड की दूर यात्रा के लिए चलें।

इस किताब में मैं यह पहले कह ही चुका हूँ कि प्राचीन काल में लोग तारों को स्थिर समझते थे। असल में, पृथ्वी के चारों ओर पूरा आकाश-मण्डल ही घूमता है। (अब तुम यह तो जानते ही हो कि यह चक्कर काटना केवल मालूम भर पड़ता है)। एक तारा दूसरे तारे से हर समय एक ही दूरी पर रहता है।

वह देखो सप्तर्षि का समूह। दो हज़ार वर्ष पहले इस समूह के सातों तारे जिस रूप में थे, उसी रूप में अब भी हैं और कई हज़ार वर्षों तक वैसे ही रहेंगे।

परन्तु तारे स्थिर केवल मालूम भर पड़ते हैं – विश्व-अन्तरिक्ष में तो वे विशाल गति से चलते हैं, परन्तु हमें उनकी गति का आभास नहीं होता क्योंकि वे हमसे बहुत ही दूर हैं।

कई शताब्दियों तक खगोलविज्ञानी यह जानने का प्रयत्न करते रहे कि तारे हमसे कितनी दूरी पर हैं, परन्तु वे जान न सके।

सन् 1837 में, पूल्कोवो बेधशाला के संचालक खगोलविज्ञानी व. या. स्त्रूवे प्रथम अभिजित (वीगा) तारे तक की दूरी नापने में सफल हुए। ज्ञात हुआ कि यह तारा सूर्य की अपेक्षा हमसे लगभग 17 लाख

गुना दूर है!

इस कार्य में पहला क़दम उठाना महत्त्वपूर्ण था। स्त्रूवे के समकालीन तथा उसके बाद के वैज्ञानिकों ने बहुत-से तारों की दूरी का पता लगाया।

हमारे सबसे समीप वाले तारे को खगोलविज्ञानियों ने प्राक्सिमा का लैटिन नाम दिया, जिसका अर्थ 'सबसे समीप' है। प्राक्सिमा कोई बहुत बड़ा तारा नहीं है, उसे केवल अच्छे टेलीस्कोप द्वारा ही देखा जा सकता है। उसे देखने के लिए दक्षिणी गोलार्द्ध में जाना आवश्यक है।

आओ, गणना करें कि हम प्राक्सिमा तक कितने समय में पहुँच सकते हैं।

किस सवारी से हम वहाँ जायें?

आओ हम एक काल्पनिक चित्र की कल्पना करते हैं।

प्राक्सिमा तक रेलें बिछायी गयी हैं और पहली यात्री-गाड़ी चलने के संकेत की प्रतीक्षा कर रही हैं हम टिकट-घर की खिड़की पर हाँफते हुए पहुँचते हैं –

"प्राक्सिमा तक का टिकट क्या अब भी मिल सकता है?"

"हाँ, महाशय," टिकट-बाबू बहुत सहज भाव से उत्तर देता है।

"दो टिकट!"

"किराया दीजिये महाशय!"

"कितना?"

"अभी हिसाब लगाता हूँ। इसलिए कि रास्ता काफ़ी लम्बा है, अधिकारी वर्ग ने जनता के लिए रेल-मार्ग का किराया बहुत कम निर्धारित किया है – हर दस लाख किलोमीटर के लिए केवल एक रूबल..." टिकट-बाबू ने कहा।

"यह तो लगभग निःशुल्क है!" हम लोग आश्चर्यचकित होकर खुशी से चिल्ला पड़े।

"ज़रा रुकिये महाशय! अच्छा, तो एक रूबल प्रति दस लाख किलोमीटर। यह तो खगोल-इकाई के लिए डेढ़ सौ रूबल हुआ। परन्तु प्राक्सिमा तक तो दो सौ साठ हज़ार खगोल-इकाइयों का फ़ासला है; अर्थात् आपको हरेक के लिए तीन करोड़ नब्बे लाख रूबल देना पड़ेगा महाशय!" टिकट-बाबू ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया।

अब हमारे पाँव तले की धरती खिसकी और हमने डरकर टिकट-घर से पीछे हटते हुए पूछा –

"और... गाड़ी वहाँ पहुँचेगी कितने समय में?"

"अभी इसका भी हिसाब लगा देता हूँ," टिकट-बाबू ने जवाब दिया, "हम एक्सप्रेस गाड़ी भेजते हैं – एक घण्टे में एक सौ किलोमीटर। सूर्य तक का मार्ग तय करने में एक सौ तिहत्तर वर्ष लग गये होते, परन्तु प्राक्सिमा तक... दो लाख साठ हज़ार गुना अधिक दूरी है... साढ़े चार करोड़ वर्षों के बाद आप अपने लक्ष्य पर पहुँचेंगे, महाशय!"

"मार्ग में स्टेशन होंगे"?

"शायद ही... हो सकता है कि मार्ग में किसी पथ भूले एस्टेरॉयड से भेंट हो जाये!"

हम झटपट टिकट-घर से पीछे हट जाते हैं।

"हम लोग फिर कभी आयेंगे, कुछ अधिक अवकाश होने पर!"

टिकट-बाबू हम लोगों को बहुत ही उदासी से देखता है।

"मालूम पड़ता है, कि यह यात्रा कभी शुरू नहीं होगी! सभी मुसाफ़िर भाग खड़े होते हैं..."

लगता है कि रेलगाड़ी अन्तर-तारों की यात्राओं के लिए उपयुक्त नहीं है। हम रॉकेट के विषय में सोच रहे हैं। चन्द्रमा तक हमारी काल्पनिक यात्रा केवल लगभग 36 घण्टों में हुई थी। रॉकेट की अधिकतम रफ़्तार 11.2 किलोमीटर प्रति सेकण्ड तक जा पहुँची थी – यानी एक घण्टे में 40 हज़ार किलोमीटर।

अब हम गणना करें कि हमारे लिए रॉकेट से उड़ना कितना अधिक लाभकर होगा। रॉकेट की गति रेलगाड़ी की तुलना में 400 गुना अधिक है, अर्थात् 400 गुना कम समय की आवश्यकता होगी। साढ़े चार करोड़ को 400 से विभाजित करते हैं...

परन्तु फिर भी! रॉकेट पर भी हमें एक लाख बारह हज़ार पाँच सौ वर्षों तक उड़ना होगा। ओह, तारे हमसे कितनी दूरी पर हैं!

इस किताब में बताया ही जा चुका है कि प्रकाश की किरण संसार में सबसे द्रुत गति से चलती है। यह किरण प्रति सेकण्ड तीन लाख किलोमीटर का मार्ग तय करती है। यह लगभग पृथ्वी से चन्द्रमा तक की दूरी के बराबर है।

फिर यदि प्रकाश की किरण द्वारा यात्रा करना सम्भव होता, तो!

प्रकाश-किरण पृथ्वी से सूर्य तक की दूरी – अर्थात् एक खगोल-इकाई – 8 मिनट 20 सेकण्ड में तय करेगी। एक रात-दिन में 1,440 मिनट होते हैं, यह 8 मिनट 20 सेकण्ड की तुलना में 173 गुना अधिक है। अर्थात् एक दिन-रात में प्रकाश लगभग 173 खगोल-इकाईयों की दूरी तय करता है, और वर्ष में 63,500 खगोल-इकाइयों की दूरी। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रकाश-किरण एक वर्ष में पृथ्वी से सूर्य तक की दूरी से 63,500 गुना अधिक मार्ग तय करती है।

एक वर्ष में प्रकाश जो दूरी तय करता है, खगोलविज्ञानियों ने उसे 'प्रकाश-वर्ष' का नाम दिया है और लम्बाई का यह विशाल मापन विश्व में दूरी नापने के काम आता है।

यह सच है कि खगोल-इकाई का प्रयोग सौर जगत के लिए तो उपयुक्त था, परन्तु जब तारों की दूरी का विषय आता है, तब यह इकाई बहुत अपर्याप्त हो जाती है। यहाँ तक कि प्राक्सिमा तक 2 लाख 60 हज़ार खगोल-इकाईयाँ हैं और फिर ऐसे भी कार्य हैं, जो हज़ारों और लाखों गुना अधिक दूर हैं। खगोल-इकाईयों में ऐसे तारों की दूरी नापना मास्को से व्लादिवोस्तोक तक की दूरी मिलीमीटरों में नापने के बराबर है।

भलीभाँति याद कर लो : **वर्ष – समय की नाप है**, 365 1/4 दिन-रात; **प्रकाश वर्ष – लम्बाई अथवा दूरी की माप है**, 63,500 खगोल-इकाइयाँ।

प्राक्सिमा तक कितने प्रकाश-वर्ष हैं? एक प्रकाश-वर्ष में 63,500 खगोल-इकाइयाँ हैं और प्राक्सिमा तक 2 लाख 60 हज़ार खगोल-इकाइयाँ हैं। इसका अर्थ यह है कि इस तारे तक चार प्रकाश-वर्ष से अधिक हैं।

हम एक और भी काल्पनिक दृश्य प्रस्तुत करते हैं।

कल्पना करो कि पृथ्वी से प्राक्सिमा के लिए एक यात्रा-दल भेजा गया। सारी कठिनाइयों के होते हुए भी वह वहाँ पहुँच गया। यात्री लोग अपने साथ एक महाशक्तिशाली रेडियो-ट्रांसमीटर ले गये हैं और पृथ्वी से बातचीत करते हैं –

"हलो, हलो! हम प्राक्सिमा से बोल रहे हैं। आप लोग धरती पर क्या हमें सुन रहे हैं?"

"हलो। हम पृथ्वी से बोल रहे हैं! हम प्राक्सिमा से आपकी आवाज़ भलीभाँति सुन रहे हैं। यात्रा कैसी रही?"

"बहुत ही अच्छी! मार्ग में कोई भी विशेष घटना नहीं हुई। हम आप लोगों द्वारा भेजे जाने वाले मनुष्यों तथा रसद की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"और क्या तुम्हें वहाँ आबाद ग्रह नहीं मिले?"

"अभी तक तो नहीं। कुछ समय के लिए हम लोग एक छोटे ग्रह पर रुके, परन्तु वहाँ प्रकृति बहुत ही दरिद्र है और वहाँ पृथ्वी वालों के पेट के लिए कुछ भी उपयुक्त भोजन नहीं है।"

"अच्छा! हम यात्री और माल के जहाज़ भेजेंगे। अब हम इन शब्दों के साथ अपनी बातचीत समाप्त करते हैं। नमस्ते, प्राक्सिमा!"

"नमस्ते, पृथ्वी!"

जानते हो कि इन थोड़े शब्दों की बातचीत के लिए कितना समय लगेगा? पचीस वर्षों से अधिक! हर प्रश्न तथा उसका उत्तर पाने के बीच आठ वर्षों से अधिक समय लग जायेगा, क्योंकि अन्तरिक्ष में रेडियो-तरंगों की गति प्रकाश-किरणों के समान ही है।

तीन लाख किलोमीटर प्रति सेकण्ड की विशाल गति वाला प्रकाश प्राक्सिमा से हम तक चार वर्षों से अधिक समय में पहुँचता है। परन्तु ऐसे भी तारे हैं, जो हमसे प्राक्सिमा की तुलना में अपरिमेय रूप में कहीं अधिक दूरी पर हैं।

यह विश्व महान तथा अनन्त है! इस बात की तो कल्पना तक करना भी लगभग असम्भव-सा है कि समीप वाले तारे हमसे कितनी दूरी पर है। हो सकता है कि तुम्हें रेलगाड़ी, रॉकेट व रेडियो द्वारा बातचीत करने की उपरोक्त कथाएँ इसका अनुमान लगाने में कुछ सहायता दें।

प्राचीन काल के लोगों के विचारानुसार यह विश्व बहुत छोटा था!

एक प्राचीन यूनानी कथा में कहा जाता है कि देवता हेफ़ेस्ट ने आकाश से निहाई गिरायी और वह पृथ्वी पर नौ दिन नौ रात में पहुँची। पुराने यूनान के निवासियों को यह दूरी बहुत ही अपूर्व तथा अधिक प्रतीत होती थी, परन्तु गिरती हुई वस्तु 9 दिन-रातों में केवल 5 लाख अस्सी हज़ार किलोमीटर तक ही जा सकेगी – यह दूरी पृथ्वी से चन्द्रमा तक की दूरी से थोड़ी ही अधिक है।

विश्व का जितना बड़ा विस्तार यूनान-निवासी समझते थे, केवल एक ही सौर जगत उतने से हज़ारों गुना बड़ा है।

टेलीस्कोप से दिखायी देने वाला आकाश-खण्ड

तारों भरे आकाश का दृश्य

अँधेरी रात में तारों भरे आकाश का दृश्य अद्भुत होता है। गहरे नीले आकाश में बड़े और छोटे तारे जगमगाते नज़र आते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि वे करोड़ों की संख्या में हैं।

रात को आकाश में देखते हुए विचार आता है : आकाश के सभी तारों को गिनना सम्भव नहीं है।
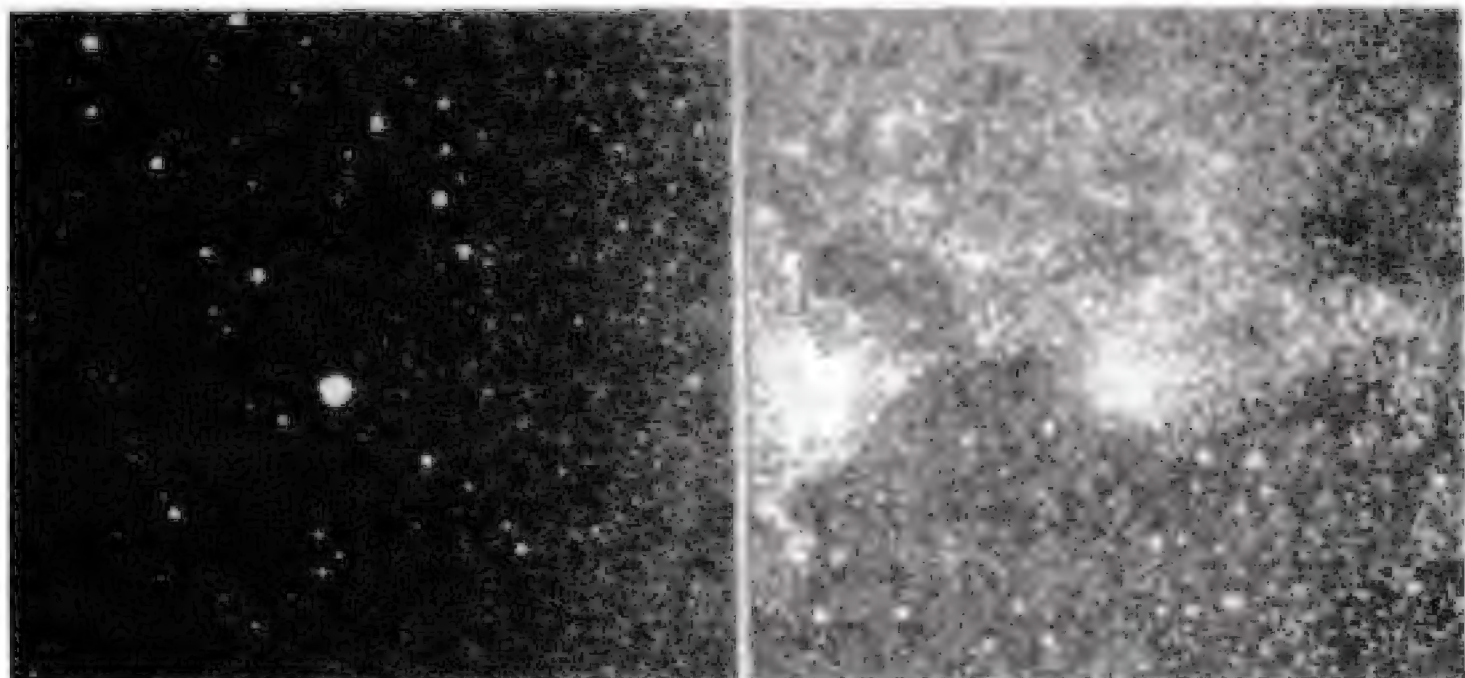
ख़ाली आँखों से देखा जाने वाला आकाश-खण्ड (बायीं ओर) और टेलीस्कोप की सहायता से खींचा गया उसका चित्र (दाहिनी ओर)

परन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है : खाली आँखों से दिखायी देने वाले तारे बहुत पहले ही गिने जा चुके हैं और आकाश के एक गोलार्द्ध में उनकी संख्या केवल तीन हज़ार के लगभग है।

हाँ, केवल तीन हज़ार ही – न कि वह काल्पनिक विशाल संख्या जिस पर हमारी आँखें बिखरी रहती हैं...

तारों का प्रथम सूचीपत्र आज से चार शताब्दियाँ पहले ही चीनी खगोलविज्ञानी शी शेन द्वारा बनाया गया था।

तारों का सूचीपत्र क्या है? यह सूचीपत्र आकाश-मण्डल में तारों के ठीक-ठीक स्थान दिखाता है।

शी शेन के बाद तथा पूर्णतः शी शेन के सूचीपत्र के बारे में कुछ भी न जानते हुए प्राचीन यूनानी खगोलविज्ञानी हिपारकस ने तारों का सूचीपत्र बनाया। उसने इसमें सभी तारों की नहीं, किन्तु सबसे उज्ज्वल केवल एक हज़ार तारों की ही चर्चा की। उसके समकालीन लोगों ने हिपारकस के कार्य को एक कारनामा कहा, और वास्तव में यह एक कारनामा था भी, क्योंकि उस समय आकाश में तारों के स्थान को निर्धारित करना एक अत्यन्त कठिन कार्य था। इसका कारण यह था कि उस समय बहुत ही साधारण खगोल-यन्त्र थे और प्राचीन खगोलविज्ञानी अपने सभी पर्यवेक्षण खाली आँखों द्वारा ही करते थे।

बाद में, 15वीं सदी में, समरक़न्द के खान उलूग बेग़ की आज्ञा पर एक अति उत्तम सूचीपत्र बनाया गया। उलूग बेग़ द्वारा बनायी गयी वेधशाला में सौ से अधिक वैज्ञानिक कार्य करते थे। समरक़न्द में उसका भग्नावशेष अब भी है।

समरक़न्द की वेधशाला के पर्यवेक्षण खाली आँखों द्वारा ही किये गये थे। फिर भी वे अपनी असाधारण शुद्धता के लिए विख्यात थे। हिपारकस के सोलह शताब्दियों बाद पहली बार फिर से आकाश

के सबसे उज्ज्वल तारों की स्थिति निश्चित की गयी।

बाद के सूचीपत्रों में वे सभी तारे लिखे गये, जो खाली आँखों द्वारा देखे जा सकते हैं।

परन्तु खाली आँखों से दीख पड़ने वाले तारे उन तारों की तुलना में बहुत कम हैं जो टेलीस्कोपों से देखे जा सकते हैं।

जब गैलीलिओ ने अपनी क्षीण दुरबीन से आकाश के उस भाग को देखा, जहाँ ख़ाली आँखों से केवल तीन तारे दीख पड़ते थे, तो उसे वहाँ बीस से अधिक तारे दीख पड़े। जैसे-जैसे बढ़िया टेलीस्कोप बनते गये वैसे ही वैसे आकाश में अधिक तारों का पता चलता गया। आजकल सबसे अधिक शक्तिशाली टेलीस्कोप में लाखों तारे दीख पड़ते हैं, और स्पष्ट है कि इन सबको सूची में सम्मिलित करना सम्भव नहीं। इन सब बातों के होते हुए भी सूचीपत्रों में लाखों तारे सम्मिलित किये गये हैं।

परन्तु जो तारे सूचीपत्र में सम्मिलित नहीं हैं, वे भी खगोलविज्ञानियों द्वारा निश्चित रूप से दर्ज़ किये गये हैं। सारा आकाश भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में विभाजित है और हर क्षेत्र किसी न किसी बेधशाला के अन्तर्गत है। इन बेधशालाओं के खगोलविज्ञानी अपने-अपने क्षेत्रों के फ़ोटो-चित्र बड़े ही निश्चित नियमों के अनुसार
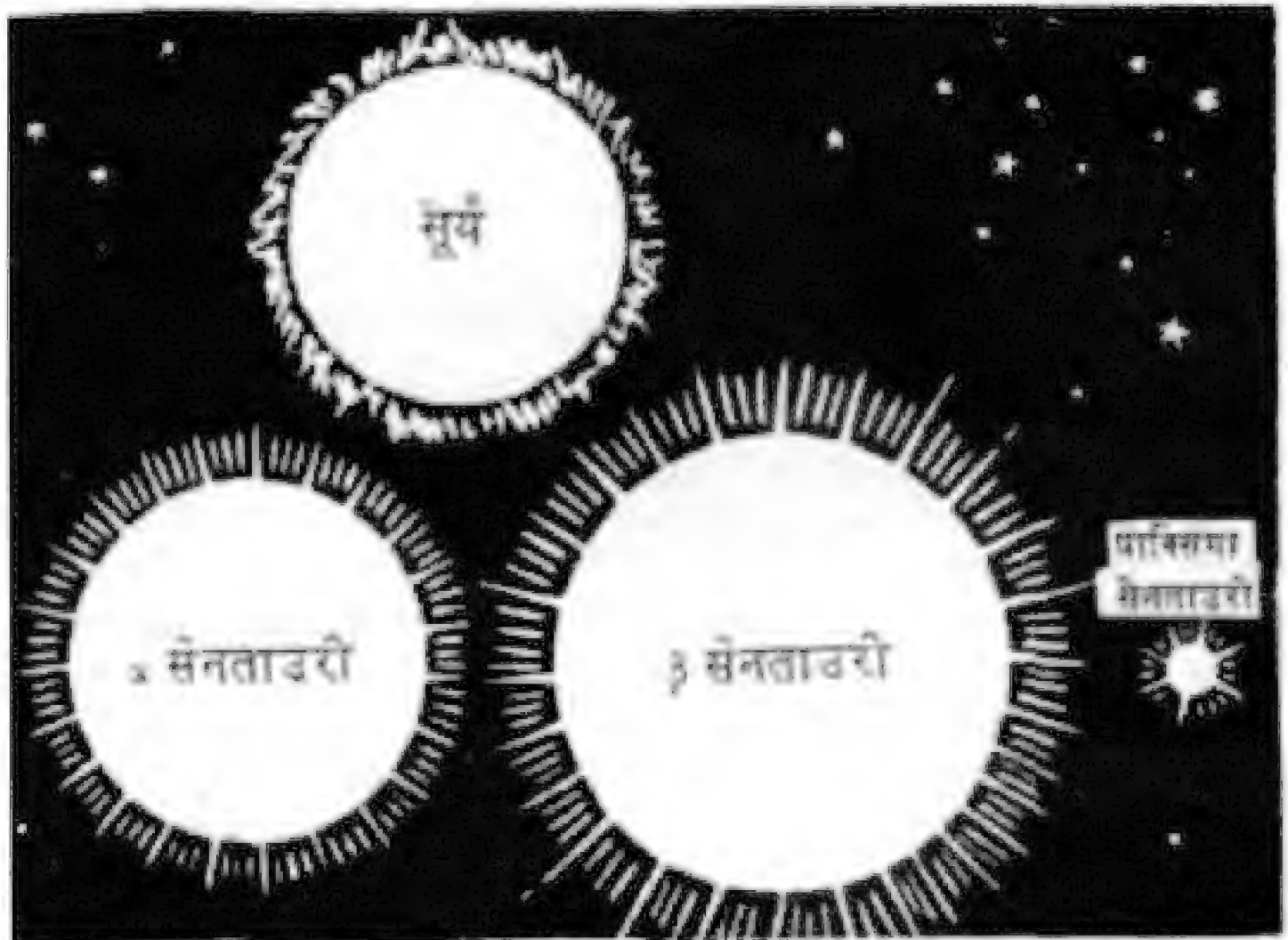
सूर्य और कुछ तारों का तुलनात्मक आकारमान

और सदा एक ही नाप की फ़ोटो-प्लेटों पर लेते हैं। यदि यह सन्देह उठ खड़ा होता है कि आकाश के किसी क्षेत्र में नया तारा निकला या लुप्त हो गया है, तो इसकी जाँच करने के लिए इस क्षेत्र का फिर से चित्र लेना और इस प्राप्त हुए निगेटिव की पहले लिए हुए निगेटिव से तुलना करना ही पर्याप्त होता है।

यहाँ यह बताना उपयुक्त होगा कि तारों का अध्ययन करने के लिए फ़ोटोग्राफ़ी का ज्ञान बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है।

प्राचीन काल में एक भयानक यन्त्रणा थी – मनुष्य के हाथ पर एक के बाद एक पानी की बूँदें गिरायी जाती थीं। तुम शायद सोचोगे कि यह क्या यन्त्रणा है? सच है कि पहली कुछ बूँदों तक यन्त्रणाभोगी कुछ महसूस न करता था, किन्तु कुछ समय बाद हथेली का चमड़ा फूल जाता था, फट जाता था और फिर हर नयी बूँद हाथ पर गिरते ही असहनीय पीड़ा होती थी। यह कहावत अकारण थोड़े ही प्रचलित हुई है – "लगातार गिरती पानी की बूँदें पत्थर में भी छेद कर देती हैं।"

फ़ोटो-प्लेट पर प्रकाश की किरण भी यही कार्य करती है। प्रारम्भ में तो बड़े क्षीण तारे की किरण मानो फ़ोटो-प्लेट पर कोई कार्य नहीं करती है। परन्तु जैसे-जैसे मिनट के बाद मिनट और घण्टे के बाद घण्टे बीतते जाते हैं, प्लेट पर तारे का चित्र उभरता आता है। किरण जैसे कि प्लेट पर अपने ही तारे का चित्र खोद डाली है। परन्तु मनुष्य की आँखें यदि पहले ही क्षण में क्षीण तारे को टेलीस्कोप में नहीं देखती हैं, तो फिर वे उसे कभी न देख सकेंगी, चाहे 10 घण्टे तक लगातार क्यों न देखा जाये – वह तो केवल आँखें थकाने वाली बात होगी।

पृष्ठ 173 के चित्रों को देखो।

बायीं ओर के चित्र में अल्फ़ा सिग्नी नामक तारे के इर्द-गिर्द के आकाश के भाग का चित्र दिया गया है जैसा कि वह खाली आँखों को दिखायी देता है। दाहिनी ओर का फ़ोटो-चित्र भी उसी क्षेत्र का है। यह फ़ोटो 13 घण्टों का एक्सपोज़र देकर खींचा गया है।

फ़ोटो-चित्र में तारा रेखा के रूप में नहीं, बल्कि बिन्दु के रूप में प्रकट हो, इसके लिए यह आवश्यक है कि टेलीस्कोप उसे हर समय दृक्पथ में प्लेट के एक ही स्थान पर रखे। इसके हेतु टेलीस्कोप को तारे के ही साथ-साथ घड़ी-यन्त्र की सहायता से घुमाया जाना चाहिए।

तारों की सूची में आकाश में केवल उनकी स्थिति ही नहीं, किन्तु उनकी उज्ज्वलता भी लिखी जाती है। यह इस कारण कि तारे एक-दूसरे से अपनी उज्ज्वलता में भिन्न हैं – उनमें कुछ अधिक उज्ज्वल हैं और दूसरे बहुत ही क्षीण प्रकाश वाले हैं।

पूर्ण चन्द्रमा आकाश में ख़ाली आँखों द्वारा दिखायी पड़ने वाले सभी तारों की तुलना में 3,000 गुना अधिक प्रकाश देता है। दूसरे शब्दों में सभी तारों की जगह यदि आकाश में एक और भी छोटा-सा चन्द्रमा – पहले वाले से लगभग एक सौ गुना छोटा – होता तो वह इन सभी तारों की अपेक्षा अधिक तेज़ चमकता।

टेलीस्कोप में तारे एक गहरे नीले आकाश में चमकते हुए अनन्त सूक्ष्म बिन्दु जैसे मालूम पड़ते हैं। टेलीस्कोप तारों को बड़ा करके नहीं दिखाता है, उन्हें ग्रहों की भाँति छोटे गोले या डिस्क के रूप

में हमारे सामने नहीं लाता है। वह उन्हें जैसे हमारी ओर कुछ घसीट-सा लेता है; किन्तु ऐसा होते हुए भी वे हमसे कहीं दूर हैं और हम उनका व्यास देखने में असमर्थ रहते हैं। चूँकि टेलीस्कोप तारों को हमारी ओर खींच लाता है, अतएव वे तारे भी दिखायी पड़ने लगते हैं, जिन्हें खाली आँखों से देखना असम्भव है। टेलीस्कोप तारों के आकार को बड़ा न करके दीख पड़ने वाले तारों की संख्या तथा उनकी उज्ज्वलता में वृद्धि कर देता है।

तारे भिन्न-भिन्न रंगों के होते हैं। सीरियस सफ़ेद, कैपेला पीला, अर्कतूर नारंगी और अल्दीबरान लाल। यहाँ कुछ तारों के नाम दिये गये हैं, ये नाम बहुत ही प्राचीन हैं। परन्तु स्पष्ट है कि अपना स्वयं नाम केवल कुछ ही तारों का है -- उन तारों का जो आकाश में सबसे उज्ज्वल हैं।

अति प्राचीन काल से ही लोगों ने देख लिया कि कुछ उज्ज्वल तारे, जो एक दूसरे से बहुत दूर नहीं हैं मिलकर भिन्न-भिन्न आकृतियाँ बनाते हैं। तारों की इन आकृतियों को लोगों ने प्राचीन काल से ही नक्षत्र कहा। उत्तरी तथा दक्षिणी आकाश के सबसे विख्यात नक्षत्रों के विषय में 'चार दिशायें' वाले अध्याय में कहा ही जा चुका है।

भिन्न-भिन्न देशों के खगोलविज्ञानी नक्षत्रों को भिन्न-भिन्न परम्परागत नामों से पुकारते हैं। यूरोप के खगोलविज्ञानी उन्हें उन नामों द्वारा पुकारते हैं, जो उन्हें प्राचीन यूनान-निवासियों द्वारा दिये गये थे। परन्तु बाद में खगोलविज्ञानियों ने आकाश में और भी बहुत-से नक्षत्रों का पता लगाया और उन्हें भी नाम दिये, किन्तु ये नाम यूनानी नामों की तरह काल्पनिक देवी-देवताओं के नाम पर न होकर सीधे-सादे नाम थे। आकाश में घड़ी, माइक्रोस्कोप, पम्प और परकार भी निकल आये!

उत्तरी आकाश के मुख्य नक्षत्रों का दृश्य

अब तो आकाश में अठासी नक्षत्र हैं।

खगोलविज्ञानियों को नक्षत्रों की भला क्या आवश्यकता है?

खगोलविज्ञानी भलीभाँति जानते हैं कि हरेक नक्षत्र आकाश में दीख पड़ता हुआ उज्ज्वल तारों का केवल समूह है। इस किताब
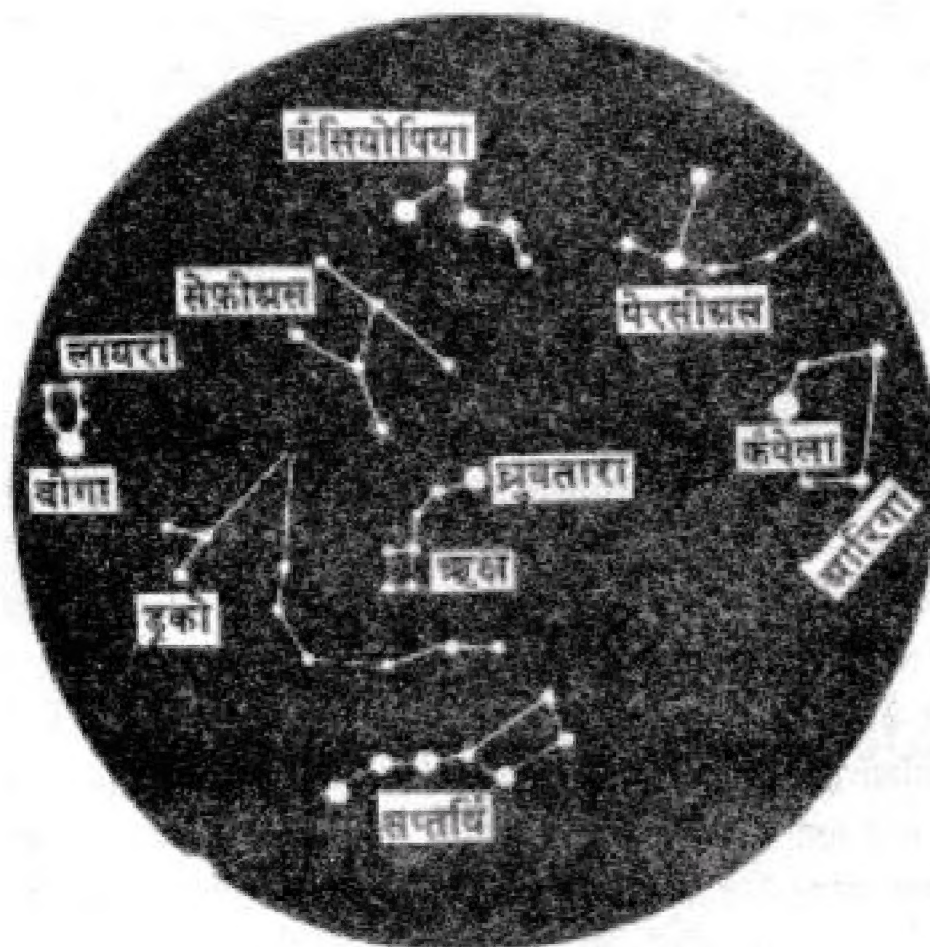
में कहा ही जा चुका है कि तारों को स्थिर कहना उचित नहीं है। वे बहुत ही तेज़ गति से चलते हैं, किन्तु हमसे बहुत ही दूर हैं; लोग केवल सैकड़ों और हज़ारों वर्षों बाद ही देख सकते हैं कि कोई न कोई तारा किसी एक स्थान से थोड़ा खिसक गया है। नक्षत्र अपनी आकृति को अप्रत्यक्ष रूप से किन्तु लगातार बदलते रहते हैं।

नक्षत्रों को नाम देने का वही उद्देश्य है जो नगरों व गाँवों की सड़कों और मैदानों को नाम देने का होता है। नक्षत्रों द्वारा तारों का 'पता' बताना बहुत ही सरल है। पहले ही कहा जा चुका है कि केवल कुछ ही तारों के अपने निजी नाम हैं, और बाक़ी तारों को बस ऐसे ही सम्बोधित किया जाता है।

मान लें कि किसी नक्षत्र में कुछ उज्ज्वल तारे हैं और कहीं अधिक संख्या में छोटे तारे। अधिक उज्ज्वल तारों को यूरोप के खगोलविज्ञानी ग्रीक वर्णमाला के अक्षरों द्वारा नाम देते हैं : α सेनताउरी (पढ़ा जाता है अल्फ़ा सेनताउरी); β हर्क्यूलीस (बीटा हर्क्यूलीस)। क्षीण तारों को अंकों के क्रमानुसार नाम दिये जाते हैं, जैसे 61 सिग्नी (सिग्नी नक्षत्र का 61वाँ तारा)।

जहाज़ियों, यात्रियों, उड़ाकों, भूगर्भविज्ञानियों आदि के लिए मुख्य नक्षत्रों की जानकारी आवश्यक है। नक्षत्र रात को नये और अनजाने स्थानों में सही रास्ता मालूम करने में सहायता करते हैं।

तुम्हारे लिए भी मुख्य नक्षत्रों को जानना लाभकर होगा। सम्भव है कि कभी तुम्हें भी तारों के सहारे अपना मार्ग ढूँढ़ना पड़ेगा।

आकाशीय दृश्य में एक बहुत ही विशेष बात है। इसके विषय में हम बहुधा बिल्कुल सोचते ही नहीं हैं।

हमारी आँखों के सामने आकाश का असली दृश्य नहीं आता है। हर तारा एक सूर्य है, और वह अपनी सूचना अपने प्रकाश से देता है। प्रकाश तीन लाख किलोमीटर प्रति सेकण्ड की गति से फैलता है। हम पृथ्वी के मनुष्यों को यह गति अपरिमेय मालूम पड़ती है, परन्तु हमें मालूम ही है कि सबसे समीप के तारे से भी प्रकाश हमारे पास तक चार वर्षों से अधिक समय में आता है। ऐसे भी तारे हैं, जिनका प्रकाश हमारे पास हज़ारों और लाखों वर्षों बाद पहुँचता है।

हम हर एक तारे को ऐसा नहीं देखते, जैसा वह इस समय है, बल्कि ऐसा देखते हैं, जैसा वह अतीत में था।

आओ, ज़रा एक असम्भव-सी कल्पना करें – आकाश में सभी तारे एकाएक बुझ जाते हैं। क्या आकाश एकाएक अँधेरा और शून्य हो जायेगा? बिल्कुल नहीं। केवल चार वर्षों बाद ही प्रथम तारा प्राक्सिमा लुप्त होगा; वह टेलीस्कोपों वाले खगोलविज्ञानियों के लिए ही लुप्त हो जायेगा क्योंकि ख़ाली आँखों से तो वह दिखायी ही नहीं पड़ता। बाक़ी तारे पहले की ही भाँति चमकेंगे। तीन-चार वर्षों बाद और दो या तीन तुच्छ तारे आकाश से लुप्त हो जायेंगे। दुर्घटना के नौ वर्षों बाद, उज्ज्वल लुब्धक (सीरियस) भी लुप्त हो जायेगा, परन्तु इसके कारण आकाश का चित्र लगभग अपरिवर्तित रहेगा।

सैकड़ों और हज़ारों वर्ष बीत जायेंगे, लेकिन तारों भरा आकाश पृथ्वी के ऊपर पहले ही की भाँति आलीशान रूप में जगमगाता रहेगा। केवल करोड़ों वर्षों बाद ही पृथ्वी से अपने शक्तिशाली टेलीस्कोपों द्वारा

पर्यवेक्षण करने वालों के लिए (यदि पृथ्वी पर तब तक मनुष्य रहेंगे, तो) आकाश अपने सभी तारों से वंचित होगा।

आओ, एक अन्य उदाहरण लें। खगोलविज्ञानियों ने देखा कि कहीं आकाश में कोई तारा एकाएक भड़क उठा है (ऐसी घटनाएँ होती हैं)। यह कब हुआ? आज? नहीं, सम्भव है सौ या हज़ार वर्ष पहले, लेकिन केवल आज ही उसकी किरणें विश्व में इस घटना की सूचना हम तक लायीं। और उस तारे को, जो आज चमक उठा है वैज्ञानिक केवल कई सदियों या हज़ारों वर्ष बाद देखेंगे।

तारे की किरण दूर की दुनिया की एकाकी सन्देशवाहिका है। क्या वह हमें बहुत सूचना देती है? क्या केवल यही कि विश्व-अन्तरिक्ष में कहीं तारा स्थित है? नहीं। लोगों ने ऐसे कुशल यन्त्रों का आविष्कार किया है कि इस किरण के प्रकाश द्वारा वे बहुत कुछ जान लेते हैं : हमसे तारा कितनी दूरी पर है; अन्तरिक्ष में वह किधर तथा किस रफ़्तार से चलता है; वह किन पदार्थों से बना है। वैज्ञानिक कभी-कभी यह भी मालूम कर लेते हैं कि तारे की आयु, उसका घनफल, उसका भार क्या है और यहाँ तक कि तारा अपनी धुरी पर घूमता है अथवा नहीं (परन्तु अभी तक यह कुछ तारों के विषय में कहा जा सकता है) और उसके समीप ग्रह हैं या नहीं।

खगोलविज्ञान ने अद्भुत प्रगति की है! यदि प्राचीन काल के खगोलविज्ञानियों को यह बतलाया गया होता कि भविष्य में उनके वंशज तारों के विषय में कितना अधिक जान जायेंगे, तो शायद उन्होंने कहा होता :

"यह कोरी कल्पना ही है!"

परन्तु जो बात लोगों को कल असम्भव मालूम देती थी, आज वही सम्भव हो गयी है। मनुष्य की बुद्धि विश्व के रहस्यों की और भी अधिक गहराई तक पहुँचती जा रही है।

• • •

इतिहास और विज्ञान
के पन्नों से गुज़रते हुए
धरती और आकाश
के रहस्यों की खोज
की दिलचस्प कहानी
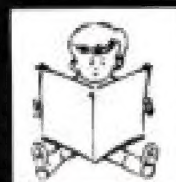
अनुराग ट्रस्ट
लखनऊ
ISBN 978-81-89719-01-2
मूल्य: रु. 120.00